# जैनागम नवनीत
# आगम निबंध माला

[ भाग- ५ ]

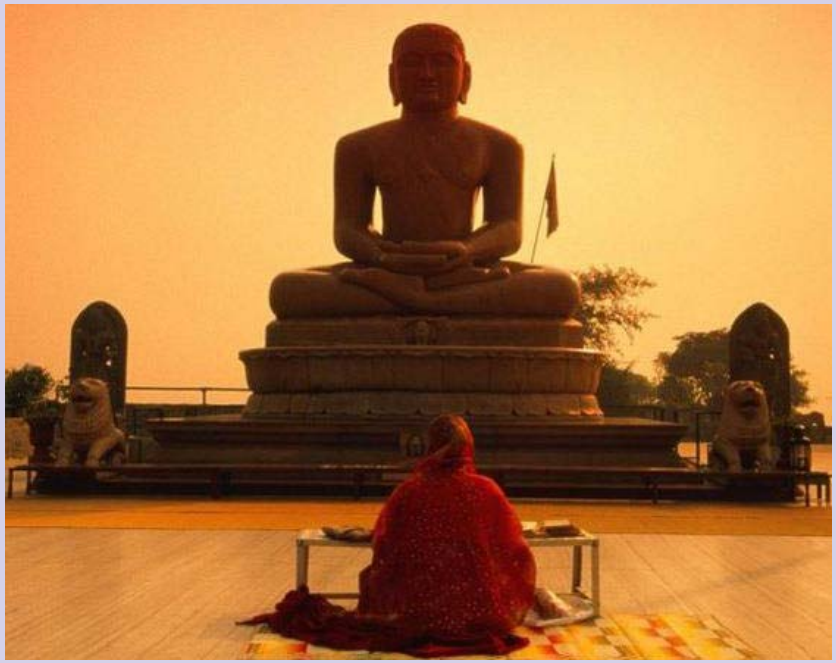





## साहित्य सूचि

**[इन्टरनेट पर उपलब्ध-जैन ई लाइब्रेरी तथा आगम मनीषी]**

### हिन्दी साहित्य :-

| | |
|---|---|
| १ से ३२ | आगम सारांश हिंदी ३२ भागों में । |
| ३३ से ४० | जैनागम नवनीत सजिल्द भाग १ से ८ । |
| ४१ से ५० | (१) गुणस्थान स्वरूप (२) ध्यान स्वरूप (३) संवत्सरी विचारणा (४) जैनागम विरूद्ध मूर्तिपूजा (५) चौद नियम (६) १२ व्रत (७) सामायिक सूत्र सामान्य प्रश्नोत्तर युक्त (८) सामायिक प्रतिक्रमण के विशिष्ट प्रश्नोत्तर (९) हिन्दी में श्रमण प्रतिक्रमण (१०) श्रावक सविधि प्रतिक्रमण |
| ५१ से ६० | जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-१ से १० |
| ६१-६२ | जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर विविध दो भागों में |
| ६३-६४ | आचारांग प्रश्नोत्तर दो भागों में |
| ६५ | ज्ञानगच्छ में.....प्रकाशगुरु का शासन..... |
| ६६ | स्था. मान्य ३२ जैनागम परिचय एवं साहित्य समीक्षा |
| ६७ से ७१ तक | जैनागम नवनीत निबंधमाला भाग-१ से ५ |

### गुजराती साहित्य :-

| | |
|---|---|
| १ से ९ | जैनागम सुत्तागमे गुजराती लिपि में- ९ भागों में |
| १० | जैन श्रमणों की गोचरी, श्रावक के घर का विवेक |
| ११ | जैनागम ज्योतिष गणित एवं विज्ञान |
| १२ से १९ | जैनागम नवनीत-मीठी मीठी लागे छे महावीरनी देशना(८) |
| २०-२९ | जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-१ से १० |
| ३०-३१ | (१) १४ नियम, (२) १२ व्रत |
| ३२ | जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर विविध भाग-१ |
| ३३-३४ | आचारांग प्रश्नोत्तर दो भागों में |
| ३५(१०५) | स्था. मान्य ३२ आगम परिचय एवं साहित्य समीक्षा (प्रेस में) |

**(योग-७१ + ३५ = १०६)**

जय महावीर

जय गुरु समरथ

जय गुरु चम्पक

# जैनागम नवनीत

# आगम निबंध माला

## [ भाग–५ ]

आगम मनीषी

**श्री त्रिलोकचन्द जी जैन**

राजकोट





**प्रकाशक** : श्री जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति, राजकोट

**[पुष्पांक–१०५]**

**सम्पादक** : आगम मनीषी श्री त्रिलोकचन्दजी जैन

**प्रकाशन समय :** ३०–१–२०१५

**प्रथम आवृत्ति :** प्रत : १०००

**मूल्य** : **50-00** **पाँच पुस्तकों का सेट : 250-00**

**ऐच्छिक उदारता**–पुस्तक मिलने पर आप पुस्तक की कीमत ५०/– अथवा एक साथ पाँच भागों की रकम २५०/– अथवा कोई भी सहयोग राशि भेजना चाहें तो सूचित खाते में भेज सकेंगे । मनीओर्डर भी स्वीकार्य होगा परंतु मनीओर्डर में प्राप्तकर्ता का नाम–गोविंदभाइ पटेल लिखेंगे । एड्रेस और A/c No निम्नोक्त रहेगा ।

**A/c No.** : **18800100011422 Tilokchand Golchha**
**Bank Of Baroda, Rajkot (Raiya Road)**

**प्राप्तिस्थान** : **श्री त्रिलोकचन्द जैन**
ओम सिद्धि मकान
६, वैशालीनगर, रैया रोड,
**राजकोट**–360 007 (गुजरात)
**Mo.** 98982 39961 / 98980 37996

**EMAIL** : **agammanishi@org**
**www.agammanishi.org / jainlibrary.e.org**

| | | |
|---|---|---|
| **कोम्प्युटराईज–** | डी. एल. रामानुज, | मो.९८९८० ३७९९६ |
| **फोरकलर डिजाइन–** | हरीशभाई टीलवा, | मो.९८२५० ८८३६१ |
| **प्रिन्टिंग प्रेस–** | किताबघर प्रिन्टरी | मो.९८२४२ १४०५५ |
| **बाईन्डर–** | हबीबभाई, राजकोट | मो.९८२४२ १८७४७ |

# प्रकाशकीय-संपादकीय

मानव जीवन अनेक उतार-चढावों का पिटारा है । जो इसमें संभल संभलकर चले वही श्रेष्ठ लक्ष्य को पा सकता है अन्यथा कभी भी भटक सकता है । वैसी स्थिति में आगमज्ञान प्रकाश ही जीवन का सही मार्गदर्शक बन सकता है ।

इस ज्ञान श्रृंखला में पाठकों को ३२ आगम सारांश एवं ३२ आगम प्रश्नोत्तर के बाद अब नया अवसर आगमिक निबंधों का संग्रह-निबंध निचय अनेक भागों के रूप में हस्तगत कराया जायेगा । जिसमें आगम सारांश और आगम प्रश्नोत्तर की पुस्तकों में से ही विषयों को उट्टंकित कर निबंध की शैली में प्रस्तुत किया जायेगा।

ये निबंध पाठकों, लेखकों, मासिकपत्र प्रकाशकों एवं जीवन सुधारक जिज्ञासुओं को उपयोगी, अति उपयोगी हो सकेंगे । इसी शुभ भावना से आगम ज्ञान सागर को इस तीसरी निबंध श्रेणी में तैयार किया गया है ।

(१) स्वाध्याय संघों के सुझाव से----- आगम सारांश
(२) आचार्यश्री देवेन्द्रमुनिजी की प्रेरणा से---- आगम प्रश्नोत्तर
(३) नूतनपत्रिका संपादक से प्रेरणा पाकर--- आगम निबंध

आशा है, आगम जिज्ञासु इस तीसरे आगम उपक्रम से जरूर लाभान्वित होंगे ।इस निबंध माला के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ भाग प्रकाशित हो चुके हैं । अब यह पाँचवाँ भाग पाठकों के करकमलों में पहुँचाया जा रहा है । इसमें ऐतिहासिक संवाद, निबंध तथा अनेक गंभीर चर्चा के विषय एवं सामायिक प्रतिक्रमणके विशेष प्रश्नोत्तरों का संकलन किया गया है ।

इसमें पाठकों को अनेक प्रकार की सामाजिक एवं चर्चागत विषयों की जानकारी प्राप्त हो सकेगी । जिनके अध्ययन में पाठक पूर्ण गंभीरता रखेगें ऐसा निवेदन हैं ।

***आगम मनीषी तिलोकचंद जैन***





# अनुक्रमणिका


| निबंध | विषय | पृष्टांक |
|---|---|---|
| १ | आगम संख्या परिज्ञान नंदी से | ९ |
| २ | व्याख्या ग्रंथ परिज्ञान | १० |
| ३ | पट्टावली-स्थविरावली प्राचीनता परिज्ञान | ११ |
| ४ | अन्य ग्रंथ, कथाग्रंथ, आगमदर्जा परिज्ञान | १२ |
| ५ | आगमों में प्रक्षेप परिज्ञान(मांस, नमोत्थुणं,दशा०) | १३ |
| ६ | प्रमाणिक अप्रमाणिक स्वतः परतः परिज्ञान | १५ |
| ७ | शास्त्रों के लिये विवेक बुद्धि परिज्ञान | १८ |
| ८ | निर्युक्ति रचना और भद्रबाहु परिज्ञान | १९ |
| ९ | महावविदेह से चूलिका लाने का परिज्ञान | २१ |
| १० | शास्त्रों मे संशोधन परिवर्तन : दूषित परिवर्तन | २२ |
| ११ | पूर्वाचार्यो की आशातना अनाशातना परिज्ञान | २४ |
| १२ | आर्यरक्षित संबंधी परिज्ञान | २४ |
| १३ | निशीथ रचना एवं रचनाकार परिज्ञान | २६ |
| १४ | प्रश्नव्याकरण सूत्र परिवर्तन परिज्ञान | २६ |
| १५ | नंदी सूत्र की ५० गाथा परिज्ञान | २९ |
| १६ | दशवैकालिक सूत्र-मनक सयंभवाचार्य परिज्ञान | ३० |
| १७ | ग्रन्थों का वांचन करने संबंधी परिज्ञान | ३२ |
| १८ | जैन दिगम्बर धर्म परिज्ञान | ३३ |
| १९ | श्वेतांबर मूर्तिपूजक धर्म परिज्ञान | ३८ |
| २० | मुखवस्त्रिका बांधने संबंधी परिज्ञान | ४७ |
| २१ | मंदिर मूर्ति पूजा विरूद्ध आगम प्रमाण | ५३ |
| २२ | शास्त्र पाठों में चोरियों का परिज्ञान | ६१ |

| | | |
|---|---|---|
| २३ | बावीस अभक्ष्यों का परिज्ञान | ६३ |
| २४ | अनंतकाय के १२ लक्षण परिज्ञान | ६५ |
| २५ | वासक्षेप प्रथा का परिज्ञान | ६६ |
| २६ | कयवलि कम्मा परिज्ञान | ६७ |
| २७ | तेरापंथ धर्म परिज्ञान : दया-दान परिज्ञान | ६८ |
| २८ | स्थानकवासी धर्म परिज्ञान | ७१ |
| २९ | महात्मा लोकाशाह का जीवन | ७३ |
| ३० | शिथिलाचार प्रवृतियों का परिज्ञान | ७७ |
| ३१ | उपकरण परिमाण परिज्ञान | ७९ |
| ३२ | श्रावक को आगम अध्ययन परिज्ञान | ८० |
| ३३ | मुखवस्त्रिका लघु संवाद | ८१ |
| ३४ | मासिक धर्म के समय धर्माराधन : संवाद | ८४ |
| ३५ | ग्रंथों में मनघडंत कल्पनाओं का परिज्ञान | ८८ |
| ३६ | निशीथ सूत्र का ऐतिहासिक परामर्श | ९० |
| ३७ | निर्युक्तियों के कर्ता द्वितीय भद्रबाहू | ९६ |
| ३८ | निर्युक्ति ग्रन्थ और संख्याता निर्युक्तियाँ | १०३ |
| ३९ | महानिशीथ सूत्र एक परिचय | १०५ |
| ४० | कल्प सूत्र की रचना सम्बन्धी परिज्ञान | १११ |
| ४१ | मुनि दर्शन विजय पट्टावली भाग-१, पेरा-१ समीक्षा | ११३ |
| ४२ | मध्यकालीन इतिहास एवं आगम साहित्य | ११६ |
| ४३ | ऐतिहासिक गंभीर उलझनों का समाधान | १२० |
| ४४ | तीन आगमों में णमोत्थुणं का पाठ समीक्षा | १२५ |
| ४५ | मध्यकाल का चित्रण एवं ऐतिहासिक रहस्य | १२६ |
| ४६ | साधु का वसतिवास-वनवास आगम समीक्षा | १३० |
| ४७ | आगमों की रचना में बारंबार परिवर्तन समीक्षा | १३५ |
| ४८ | अक्षय तृतीया पारणा परिज्ञान | १४० |







| | | |
|---|---|---|
| ४९ | आचारांग निशीथ धारक परिज्ञान | १४२ |
| ५० | द्रव्य पूजा भाव पूजा परिज्ञान | १४३ |
| ५१ | पदार्थों के परठने सम्बन्धी परिज्ञान | १४५ |
| ५२ | दशाश्रुतस्कंध की आठवीं दशा मूलपाठ परिज्ञान | १४७ |
| ५३ | ऐतिहासिक प्रमुख घटनाओं का समय | १४९ |
| ५४ | विशिष्ट प्रसिद्ध प्राचीन श्रमण परिज्ञान | १५० |
| ५५ | चुनिंदा संकलन एवं समीक्षा | १५३ |
| ५६ | ऐतिहासिक महत्व के प्रश्न विद्वानों से | १७३ |
| ५७ | सांवत्सरिक विचारणा संवाद | १८० |
| ५८ | मासिक धर्म में अस्वाध्याय और विवेक | १९५ |
| ५९ | अस्वाध्याय का मर्म एव  विवेक | १९६ |
| ६० | चैत्य शब्द का अर्थ | १९८ |
| ६१ | जैनधर्म का नकशा | १९९ |
| ६२ | आत्म निरक्षणीय समाचारिक आगम आज्ञाऐं | २०३ |
| ६३ | एक चर्या : एकल विहार से मुक्ति | २१२ |
| ६४ | विनय धर्म में स्याद्वाद | २२९ |
| ६५ | भिक्षु की स्वतंत्र गोचरी | २३१ |
| ६६ | सामायिक प्रतिक्रमण के विशेष प्रश्नोत्तर | २३५ |
| - | अपनी बात | २६४ |
| - | दीक्षा-संथारा तारीख का रहस्य | २६५ |
| - | सूचना संदेश | २७१ |

**निबंध-१**

## आगम संख्या परिज्ञान नंदी से

**जिज्ञेश-** शास्त्र कब बने, किसने बनाये ?

**ज्ञानचन्द्र-** जिन शासन में तीर्थंकर भगवंतों से प्राप्त ज्ञान के द्वारा उनके प्रमुख शिष्य गणधर भगवंत १२ अंग शास्त्र की एवं आवश्यक सूत्र की रचना करते हैं ।

**जिज्ञेश-** इसके अतिरिक्त शास्त्र कब और किसने बनाये ?

**ज्ञानचन्द्र-** इनके अतिरिक्त अर्थात् अंग बाह्य शास्त्र की रचना सभी गणधरों के निर्वाण पधार जाने के बाद जब कभी भी आवश्यकता लगी तब बहुश्रुत गीतार्थ श्रमणों ने उन शास्त्रों के ज्ञान के आधार से उपशास्त्रों की रचना की ।

**जिज्ञेश-** ऐसे कुल कितने शास्त्र हुए ?

**ज्ञानचन्द्र-** नंदी सूत्र में ऐसे कुल ७२ सूत्र के नाम उपलब्ध है जो वास्तव में ५९ ही है ।

**जिज्ञेश-** ५९ में से गणधर कृत कितने है और अन्य श्रमण कृत कितने है?

**ज्ञानचन्द्र-** १२ अंग + १ आवश्यक = १३ गणधर कृत है शेष ५९-१३ = ४६ आगम अन्य श्रमण कृत है ।

**जिज्ञेश-** अन्य श्रमण कृत ४६ आगमों के कर्ता का नाम क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र-** १. दशवैकलिक सूत्र के कर्ता - शय्यंभवाचार्य २. नंदी सूत्र के कर्ता - देवर्धिगणि क्षमाश्रमण (देववाचक) ३. अनुयोगद्वार सूत्र के कर्ता-आर्यरक्षित ४. प्रज्ञापना सूत्र के कर्ता- श्यामाचार्य । (५ से ७) दशा श्रुतस्कंध सूत्र, बृहत्कल्प सूत्र, व्यवहार सूत्र इन तीनों सूत्र के कर्ता-प्रथम भद्रबाहु स्वामी है । ८-९ आतुर प्रत्याख्यान एवं देवन्द्रस्तव के कर्ता- वीरभद्र आचार्य है । इसके अतिरिक्त ३७ आगमों के कर्ता अज्ञात है ।

**जिज्ञेश-** नंदी सूत्र में नाम आये आगम ७२ को वास्तव में ५९ कहने का क्या तात्पर्य है ?

**ज्ञानचन्द्र-** स्थानांग सूत्र में संक्षेपिकदशा सूत्र के दस अध्ययन कहे है, वे ही दस अध्ययन नंदी में दस सूत्र रूप में अलग अलग लिख दिये गये





हैं । इसी प्रकार निरियावलिका सूत्र में उसके पाँच वर्ग कहे हैं वे ही पाँच नाम यहाँ पाँच सूत्र रूप में लिखे मिलते हैं । इस प्रकार आगमाधार से ही ७२ में लिपि दोष आदि मान कर ५९ कहे गये हैं।

**जिज्ञेश-** आजकल आगमों की संख्या ३२ या ४५ मानी जाती है जो नंदी सूत्र की इस संख्या से भिन्न है ऐसा क्यों ?

**ज्ञानचन्द्र-** भिन्न भिन्न समय में अपेक्षा विशेष से ४५ या ३२ आगम की कल्पना प्रचलित हुई है । वास्तव में दोनों मान्यताएँ कसौटी पर खरी नहीं उतरती है । अत: दोनों ही अशुद्ध मान्यताएँ है। इस विषयक चर्चा प्रमाण सहित जानकारी के लिये सारांश पुष्पों में पुष्प ११ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड १ का ध्यान पूर्वक अध्ययन करना चाहिए ।

**निबंध-२**

## व्याख्या ग्रंथ परिज्ञान

**जिज्ञेश-** इन सूत्रों पर व्याख्याएँ कब बनी एवं कब लिखी गई ?

**ज्ञानचन्द्र-** सूत्रों के अर्थ परमार्थ व्याख्याएँ भी परम्परा से मौखिक रूप में उन उन सूत्रों के साथ प्रारंभ से ही चलती आ रही है । आगमों का जब व्यवस्थित लेखन देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के समय हो गया । उसके बाद निकट काल में ही व्याख्याओं की लिखित रचनाएँ पुस्तकारूढ होने लगी अर्थात् वीर निर्माण दसवीं शताब्दि के अंत में आगम लिपिबद्ध हुए और वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि के पूर्वार्द्ध में द्वितीय भद्रबाहु के द्वारा कुछ सूत्रों की निर्युक्ति नामक व्याख्या लिखित रूप में रचना करके पुस्तकारुढ की गई । फिर क्रमश: कुछ सूत्रों के भाष्य लिखित बने । तदनंतर चूर्णियाँ आदि व्याख्याएं भी लिखित रूप में तैयार हुई । अर्थात् सभी सूत्रों की व्याख्यायें एक साथ नहीं होकर कुछ-कुछ सूत्रों की व्याख्याएँ अलग-अलग समय में भिन्न-भिन्न आचार्यों अथवा बहुश्रुतों द्वारा हुई । जो विक्रम की १२-१३ वीं शताब्दि अर्थात् वीर निर्वाण की सोलहवीं सतरहवीं शताब्दी में जाकर मलय गिरि आचार्य के समय पूर्ण हुई । किन्तु तब तक ७२ में से कितने ही आगम अनुपलब्ध हो चुके थे। इस प्रकार किसी सूत्र पर एक एवं किसी पर अनेक आचार्यों की व्याख्याएँ लिखित उपलब्ध होने लगी ।

**निबंध-३**

## पट्टावली-स्थविरावली प्राचीनता परिज्ञान

**जिज्ञेश-** इतिहास और पट्टावलियाँ आदि कब बने ?

**ज्ञानचन्द्र-** आगमों में एवं व्याख्याओं में विकीर्ण(बिखरी हुई) इतिहास सामग्री यत्र-तत्र रही हुई है अर्थात् उनमें जो भी घटनाएँ चारित्र आदि है उन्हीं में से बहुत सारा इतिहास तत्त्व उभर जाता है । फिर भी ऐतिहासिक स्वतंत्र ग्रन्थ एवं पट्टावलिया १२वीं १३वीं शताब्दि में एवं उसके बाद लिखित रूप से रची जाने लगी ।

**जिज्ञेश-** नंदी एवं कल्प सूत्र में तो बहुत पहले से ही थी न ?

**ज्ञानचन्द्र-** कल्पसूत्र का यह प्रारुप भी इसी १२वीं तेरहवी विक्रम शताब्दि में तैयार किया गया है अत: इसमें उपलब्ध पट्टावली भी इसी युग की संकलना है यह स्पष्ट है । इस संबंधी चर्चा की जानकारी के लिये सारांश पुष्प-८ का प्रथम परिशिष्ट देखे । नंदी सूत्र में पट्टावली नही हैं । केवल प्रसिद्ध या स्मृति प्राप्त अनुयोगधरों का गुण कीर्तन है । इस संबंधी विस्तृत चर्चा अगले परिशिष्ट खंड २ विषय नं. २२ में देखे।

**जिज्ञेश-** हिमवंत स्थविरावली कब की रचना है, इसके कर्ता कौन है?

**ज्ञानचन्द्र-** इतिहास वेत्ता श्वे. मूर्तिपूजक विद्वान कल्पसूत्र एवं नंदी सूत्र के बाद तीसरे नंबर में युग प्रधान पट्टावली **'दुस्समकाल समण संघत्थवं'** को कहते है जो विक्रम की १३वीं सदी की रचना है जिसके रचनाकार धर्मघोष सूरि है ।

हिमवंत स्थविरावली का नम्बर प्राचीनता में तीसरा नहीं माना गया है अत: **दुस्समकाल समण संघत्थवं** के बाद की रचना है यह सुस्पष्ट है । जिससे इसका रचनाकाल तेरहवी सदी के पूर्व का तो है ही नहीं, यह भी निश्चित कहा जा सकता है ।

वास्तविक भी यह है कि पट्टावलियों आदि के रचना का युग भी तेरहवीं सदी में प्रारंभ हुआ है । इसके पूर्व ऐसी रचनाओं का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था ।

**जिज्ञेश-** कल्प सूत्र स्थविरावली तो वीर निर्वाण की तीसरी सदी की रचना कही जाती है ?





**ज्ञानचन्द्र -** यह कथन तो स्वत: ही असत्य सिद्ध हो जाता है कारण कि कल्पसूत्र स्थविराली में वीर निर्वाण दसवीं सदी तक के महापुरुषों का वंदन गुणग्राम युक्त नाम है ।

स्वयं कल्प सूत्र भी प्रसिद्ध टीकाकार श्री मलयगिरि आचार्य के बाद की रचना है । वास्तव में यह इधर-उधर से जोड़ा जोड़ाया कल्पित सूत्र है । फिर भी इसकी महत्ता बताने के लिये झूठी प्राचीनता कल्पित की गई है । क्योंकि ३२ या ४५ अथवा ७२ या ८४ किसी भी आगम गणना में इस कल्प सूत्र की गिनती नहीं की गई है । इस कल्प सूत्र का स्वतंत्र नाम किसी भी निर्युक्ति, चूर्णी, टीका एवं मलयगिरि आचार्य के पूर्व रचित किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता । अत: इस कल्प सूत्र में वर्णित स्थविरावली को वीर निर्वाण के तीसरी सदी की कहना और मानना केवल अंध श्रद्धा ही समझनी चाहिये।

**निबंध-४**

## अन्य ग्रंथ, कथाग्रंथ, आगमदर्जा परिज्ञान

**जिज्ञेश-** अन्य जैन साहित्य एवं ग्रन्थों की रचना कब हुई ?

**ज्ञानचन्द्र-** निर्युक्ति रचना के बाद भाष्य रचना काल में प्रारंभ होकर आज तक अनेक ग्रन्थ एवं साहित्य की रचनाएँ हुई है एवं हो रही है ।

**जिज्ञेश-** तीर्थंकर के समय में या देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण पर्यन्त कोई भी श्रमण कुछ भी नहीं लिखता था ?

**ज्ञानचन्द्र-** व्यक्तिगत अपेक्षा से कोई भी श्रमण अपने पास नोट्स रूप में कुछ भी लिख सकता था । इसमें वह अपने लिए या शिष्यों के लिये आवश्यक किसी भी विषय तत्त्व या चिंतन का संकलन कर सकता था। इसी कारण अपेक्षा से नंदी सूत्र में कहा गया है कि जितने श्रमण हों उतने ही प्रकीर्णक हो सकते हैं फिर भी आजकल जितने लेखन की आवश्यकता है उतनी उस समय नहीं थी । व्यापारी लोग भी आज की अपेक्षा प्राचीन समय में एवं अभी से सौ-पचास वर्ष पूर्व भी लेखन कार्य बहुत ही कम करते थे । आगमों का व्यवस्थित क्रम बद्ध लेखन एक साथ देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के समय हुआ, जो आज तक प्राप्त हो रहा है ।

**जिज्ञेश-** कथा ग्रन्थ कब बने ?

**ज्ञानचन्द्र-** सूत्रों एवं व्याख्याओं में भी अनेक कथाएँ बिखरी हुई है । इसके

अतिरिक्त स्वतंत्र कथा ग्रन्थ 'प्रबंध' के नाम से आगम लेखन के बाद ग्रन्थ रचनाओं के साथ ही लिखे जाने लगे ।

**जिज्ञेश-** ये कथा ग्रन्थ या अन्य ग्रन्थ एवं व्याख्या ग्रन्थ आगम के समान मान्य करने चाहिए ?

**ज्ञानचन्द्र-** आगमों का दर्जा सर्वोच्च है यह स्वत: प्रमाणित है । जिनका कि नाम नंदी सूत्र में अंकित है । उसके अतिरिक्त रचनाएँ परत: प्रमाणित है अर्थात् आगम कथित तत्त्व एवं सिद्धांतों को पुष्ट करने वाले तथा आगम अविरूद्ध तत्त्व ही प्रमाणभूत है आगम विरूद्ध तत्व अप्रमाणित होते हैं ।

**जिज्ञेश-** नंदी सूत्र कथित आगमों में कथित सभी तत्व पूर्ण प्रमाणिक है? सभी तत्त्व अविरूद्ध है ?

**ज्ञानचन्द्र-** लिपि दोष, परंपरा दोष एवं विवक्षा भेद तो, इन सूत्रों में भी हो सकते हैं उन्हें परस्पर सूत्रों एवं सिद्धांतों से समन्वय करके समझा जाता है ।

**लिपिदोष-** एक सूत्र की अनेक प्रतियाँ देखने पर अनुभव हो जाता है एवं उसकी व्याख्याओं को देखने से सहज अनुभव हो जाता है । कहीं कहीं तो जिस पाठ की चूर्णी टीकाकार ने व्याख्या की है वैसा पाठ किसी भी प्रति में नहीं मिलता है । अर्थात् टीकाकार आदि के सामने जो पाठ (शब्द) रहा था वह अब नहीं रहा एवं दूसरा ही बन गया ।

**परम्परा दोष-** कई सूत्रों में पाठांतर लिखे रहते है जैसे **'एगे एवं आहंसु एगे पुण एवं'** अन्ने भणंति 'अन्ने पढंति, पाठांतरं' इत्यादि शब्दों का प्रयोग आगमों में मिलता है ।

**विवक्षा भेद-** किसी सूत्र में अणाहारक दो समय का कहा है कहीं तीन समय का कहा है । आचार प्रकल्प कहीं पाँच कहे है, कहीं २८ कहे हैं। ऐसे अनेक दृष्टांत है अत: विवेक एवं समन्वय बुद्धि रखना तो सर्वत्र आवश्यक है । एवं अहिंसा आदि मौलिक सिद्धांतों की कसोटी भी सर्वत्र आवश्यक है ।

**निबंध-५**

## आगमों में प्रक्षेप परिज्ञान(मांस, नमोत्थुणं,दशा०)

**जिज्ञेश-** इसके अतिरिक्त शास्त्रों में कुछ पक्षेप परिवर्तन भी हुए है?





**ज्ञानचन्द्र-** लेखन काल में कहीं कहीं असद्बुद्धि से लहियों द्वारा एवं स्वार्थ वश कहीं कहीं श्रमणों द्वारा भी प्रक्षेप एवं परिवर्तन हुए हैं। **यथा-** आचारांग आदि शास्त्रों में मांस मत्स्य आदि आमिष भोजन सम्बंन्धी पाठ, राजप्रश्नीय सूत्र में मूर्तियों एवं चार तीर्थंकरों के नाम सम्बन्धी पाठ, ज्ञाता सूत्र आदि में णमोत्थुणं का पाठ, दशाश्रुतस्कंध सूत्र की आठवीं दशा समाचारी वर्णन में अन्य वर्णन मिला कर एवं उस समाचारी को बढाकर किया गया कल्पसूत्र आदि कई उदाहरण है । महाशिनीथ सूत्र भी ऐसे ही दोषों का भंडार है ।

**मांस प्रक्षेप वार्ता-**

**जिज्ञेश-** मांसपरक शब्दों के तो अन्य अर्थ हो जाते है ?

**ज्ञानचन्द्र-** यह एक भ्रमित प्रवाह है । गणधरों एवं बहुश्रुतों ने भी सूत्रों में मांस और मत्स्य शब्द का आमिष अर्थ में आगमों में प्रयोग किया। मांस के आहार को नरक का कारण बताया है वहाँ भी 'मांस' का ही प्रयोग किया है । ऐसे स्पष्ट एवं प्रचलित अर्थ वाले मांस शब्द का प्रयोग आचार शास्त्रों में साधु के भिक्षा लेने के प्रसंग में गणधर प्रभु करे, यह संभव भी नहीं कहा जा सकता । क्या उस वनस्पति के लिए उन्हें दूसरा शब्द नहीं मिलता था ? जिससे आचारांग में उन्हें ऐसा पाठ देना पडा कि- **मच्छगं मंसगं भोच्चा अट्ठियाइं कंटए य गहाय ।**

**अर्थ-** मत्स्य और मांस को खाकर उसमें रहे कांटे और हड्डी को लेजाकर साधु एकांत में परठ दें । ऐसे भ्रामक और प्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग गणधर कृत मानना कोई समझदारी नहीं है ।

यदि आगम रचना काल में मांस और मत्स्य वनस्पति रूप में ही प्रयुक्त होते और आमिष भोजन अर्थ में प्रयुक्त न होते हो तब तो देश काल में प्रचलित शब्द प्रयोग होना माना भी जा सकता है । किन्तु ऐसा नही था, यह बात आगम से ही स्पष्ट है । क्योंकि इन्हीं आगमों में 'मंस-मच्छ' शब्द मांस और मछली के लिए प्रयुक्त हुए हैं । अत: ऐसे पाठ कभी विरोधी मानस वालों के द्वारा प्रक्षिप्त होकर प्रचारित होना ही मानना चाहिये ।

**मूर्ति णमोत्थुणं प्रक्षेप वार्ता-**

**जिज्ञेश -** मूर्ति, मूर्तिनाम एवं णमोत्थुणं प्रक्षेप कथन का क्या भाव है ?

**ज्ञानचन्द्र-** राजप्रश्नीय सूत्र में १०८ शाश्वत मूर्तियों का पाठ यथास्थान है । उनमें किसी भी व्यक्ति का नाम नहीं कहा गया है । किन्तु स्तूप वर्णन के बाद उसके चौतरफा मूर्तियों का कथन एवं उनका मुख स्तूप की तरफ बताना अर्थात् दक्षिण और पश्चिम में भी मूर्ति का मुख बताना और उनके ऋषभ तथा वर्धमान आदि नाम भी कह देना यह सब स्पष्ट ही प्रक्षिप्त है । क्योंकि शास्वत मूर्तियाँ किसी व्यक्ति या तीर्थंकर की नहीं होती है । मूर्ति का मुख पूर्व या उत्तर में ही होता है ।

दुराग्रह बुद्धि से तीर्थंकरों की मूर्ति सिद्ध करने के लिए णमोत्थुणं का पाठ भी हठात् रख दिया गया है । क्योंकि जब शाश्वत मूर्ति, किसी गुणवान की या व्यक्ति विशेष की होती ही नहीं है फिर उसका तीर्थंकरों के गुणों से स्तुति करना कोई प्रयोजन नहीं रखता है । ज्ञाता सूत्र की प्राचीन प्रति में वहाँ णमोत्थुणं का पाठ मिलता भी नहीं है । वास्तव में तो णमोत्थुणं के गुण वाली वे शास्वत १०८ मूर्तियाँ होती भी नहीं है ।

**दशाश्रुतस्कंध प्रक्षेप वार्ता-**

**जिज्ञेश-** दशाश्रुतस्कंध एवं महानिशीथ सूत्र के सम्बन्ध में क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र-** दशाश्रुतस्कंध सूत्र एक छेद सूत्र है । जिसमें छोटे छोटे अध्ययन (दशा) है, ऐसा स्वयं निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामी ने कहा है । फिर भी १२०० श्लोक जितना बडा कल्प सूत्र बनाकर कह दिया गया कि यह दशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन ही है और मौका देखकर किसी हस्त प्रति में किसी साधु ने आठवीं दशा में वह पूरा सूत्र लिख दिया । लेकिन इस सूत्र पर भाष्य निर्युक्त चूर्णि उपस्थित है । उसमें वैसे पाठों की व्याख्या नहीं की गई है । अनेक प्रतियों में वैसा पाठ मिलता ही नहीं है । महानिशीथ सूत्र में भी किसी ने मनगढत उटपटांग कई बातें भर कर उस सूत्र को हंसी का पात्र बना दिया है ।

**निबंध-६**

## प्रमाणिक अप्रमाणिक स्वतः परतः परिज्ञान

**जिज्ञेश-** तब क्या हिमवंत स्थविरावली को एकांत अप्रमाणिक माना जाय अथवा प्रामाणिक ?

**ज्ञानचन्द्र-** गणधर एवं चौदहपूर्वी या १० पूर्वी की रचना के अतिरिक्त किसी की भी कोई भी रचना हो, उसे पूर्ण एकांत प्रमाणिक नहीं कह





सकते । यही बात नंदी में इस प्रकार कही है **'भिन्नेसु भयणा'** १० पूर्व से कम ज्ञान वालों की रचना भजना से प्रामाणिक है एकांत से नहीं, अर्थात् उसमें कथित तत्त्व सम्यक-असम्यक दोनों प्रकार के हो सकते हैं। अतः पूर्ण रूप से अथवा एकांत रूप से अप्रामाणिक तो किसी भी जैन साहित्य को नहीं कहा जा सकता । वर्तमान युग के आचार्य, उपाध्याय, श्रमण आदि सामान्य ज्ञानी पुरुषों की रचना या वक्तव्य को भी एकांत या पूर्ण अप्रामाणिक नहीं कहा जा सकता ।

एकान्त और पूर्ण प्रामाणिकता सर्वज्ञों के एवं १४ या १० पूर्वी के अमिश्रित वचनों में हो सकती है और सर्वज्ञों के वचनों में श्रद्धा और अपेक्षा रखने वाले किसी भी छद्मस्थ के वचन पूर्ण अप्रामाणिक या पूर्ण हेय नहीं होते है वे परतः प्रामाणिक होते है चाहे कोई निबंध ग्रन्थ रूप हो या व्याख्यान रूप हो ।

अतः १० पूर्व से कम ज्ञानी छद्मस्थों की रचना में अंध श्रद्धा की आग्रह बुद्धि न रख कर विवेक बुद्धि रखना ही उचित है । अन्य आगमों में भी मिश्रण दोष, प्रक्षेप दोष, परिवर्तन दोष, परंपरा दोष एवं लिपि दोष आदि संभव होने से विचारणा एवं विवेक की आवश्यकता उनमें भी रही हुई है ।

**जिज्ञेश-** क्या सभी आगम अप्रमाणिक और कसोटी करने योग्य संदेहशील हो गये हैं ?

**ज्ञानचन्द्र-** 'सभी आगम संदेह युक्त और सर्वथा अप्रमाणिक हो गये अथवा उनमें कथित सभी तत्त्व संदेह शील हो गये' ऐसा नहीं समझना परंतु उपलब्ध आगमों को उपलब्ध अन्य आगमों से समन्वय करते हुए एवं मौलिक सिद्धांतों से समन्वय करते हुए विवेक बुद्धि से समझने की कोशिश करना तटस्थ बुद्धि ही है । किसी भी व्याख्या ग्रंन्थ या विवेचन, भाषांतर, निबंध, इतिहास ग्रन्थों पर राग द्वेष न करते हुए आदर के भाव रखना, यथावसर पढना समझना, स्वविवेक अनुसार चिंतन करना, अन्य आगम ज्ञान, सिद्धांत ज्ञान के अनुभव में तोल कर सोचकर, नवनीत प्राप्त करना ज्ञान की आराधना का ही अंग है । ऐसा करने को किसी भी पूर्वाचार्य या गुरु के प्रति अश्रद्धा-अभक्ति कहना शास्त्र ज्ञान की अनभिज्ञता का सूचन है ।

क्योंकि शास्त्र बृहत्कल्प सूत्र में कहा गया है कि गीतार्थ गुरु आचार्य से दिया गया प्रायश्चित्त भी यदि आगमोक्त हो तो ग्रहण करना चाहिये । और आगमोक्त न हो तो ग्रहण नहीं करना चाहिये ।

व्यवहार सूत्र में कहा है कि काल करते समय आचार्य ने कह दिया हो कि मेरे स्थान पर अमुक साधु को आचार्य बनाना । फिर भी उनके काल कर जाने के बाद वह साधु योग्य हो तो उसे बनाना, योग्य न हो और अन्य योग्य हो तो उसे (आचार्योक्त को) न बनाकर अन्य को आचार्य बनाना । इस प्रकार इन छेद सूत्रों में गुरु एवं आचार्य की आज्ञा में भी विवेक बुद्धि को प्रमुखता दी गई है ।

सार यही है कि सभी छद्मस्थों के वाक्य एवं रचनाएँ, विचारणा या चिंतन को स्थान रखती है । उक्त दोनों आगम प्रमाणों से शास्त्राज्ञा भी ऐसी ही स्पष्ट है । अत: ऐसा करने में किसी की आशातना होने की कल्पना करना भी अयुक्त है । जिज्ञासा एवं सत्य खोज की दृष्टि से और न्याय बुद्धि से कोई अपराध नहीं है । सर्वज्ञों का परिचय न हो सकने पर निर्णय करने के लिये उनकी भी परीक्षा करने वाले भगवती सूत्र वर्णित गांगेय अणगार आदि आराधक बने हैं ।

वर्तमान में उपलब्ध मान्य आगमों में भी लिपि दोष, प्रेस दोष, परंपरा दोष, प्रक्षेप दोष, मिश्रण दोष, ह्रास दोष आदि अनेक छोटे बड़े दोष क्षम्य दोष है, यह सर्व विदित एवं सर्वमान्य तत्त्व है। अत: विद्वानों के लिये सत्य खोजना, विवेक पूर्ण तटस्थ वृति से आगम के मूल पाठों का, अर्थों का, परंपराओं का निर्णय करना अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता ।

जिस प्रकार छाना हुआ पानी एवं शुद्ध भोजन भी खाने या पीने के समय देखकर खाना या पीना एवं कोई भी अशुद्धि हो तो अलग कर देना विवेक है और उसमें मक्खी या जहरीले जन्तु का अंश हो तो छोड देना विवेक ही है चाहे बनाने वाला कैसा भी होशियार हो । इसी तरह आगम व्याख्याएँ, ग्रन्थ, साहित्य सभी में उक्त दोष सम्भव होने से विवेक रखना श्रेयस्कर है ।

एक बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उक्त संपूर्ण विवेक वृत्ति शास्त्रों का गहन अध्ययन एवं अनुभव रखने वाले बहुश्रुत विद्वानों के





लिये है किन्तु सामान्य अध्येताओं के लिये नहीं । उन्हें तो गीतार्थों बहुश्रुतों के निर्देश एवं आज्ञानुसार करना ही उपयुक्त होता है ।

**निबंध-७**

## शास्त्रों के लिये विवेक बुद्धि परिज्ञान

**जिज्ञेश-** शास्त्रों के लिये विवेक बुद्धि का कथन अन्य किसी ने भी कभी कहीं किया है ? या आपने ही सारी आगम सत्ता अपने और विद्वानों के हाथ में ले ली है ?

**ज्ञानचन्द्र** - जी हा ! श्वे. मूर्ति पूजक विद्वान श्री पुण्यविजय जी ने इन उक्त विचारों वाले ही भाव एक जगह लिखे हैं देखें -

"अहीं एक बात खास ध्यान मा राखवा जेवी छे के आजना जैन आगमों मां मौलिक अंशो घणां घणां छे एमा शंका नथी । परन्तु जेटलो अने जे कांई छे ए बधुं य मौलिक ज छे एम मानवा मनावववा नु प्रयत्न करवो ए सर्वज्ञ भगवंतो ने दूषित ज करवा जेवी वस्तु छे ।

आज ना जैन आगमों मां एवा घणां घणां अंशो छे जे जैन आगमों ने पुस्तकारुढ करवा मां आव्या त्यारे, के ते आसपास उमेराएला, के पूर्ति कराएला छे । केटलाक अंशो एवा छे जे **जैनेत्तर शास्त्रों ने आधारे** उमेरायेला कोई जैन दृष्टि थी दूर पण जाय छे । इत्यादि अनेक बाबतो जैन आगम ना अभ्यासी गीतार्थ गंभीर जैन मुनि गणे विवेक थी ध्यान मां राखवा जेवी छे ।"- ***वृहत्कल्प भाष्य भाग ६, प्रस्तावनांश ।***

इस प्रकार मूर्ति पूजक प्रसिद्ध शास्त्रोद्धारक पद विभूषित पूज्य श्री पुण्य विजय जी म.सा. ने मौलिक आगमों में भी गीतार्थ मुनियों को विवेक बुद्धि रखने का निर्देश किया है । इस स्थिति में आगमातिरिक्त ग्रन्थों व्याख्याओं एवं कल्पित भ्रमित कथाग्रन्थों इतिहास ग्रन्थों और कल्प सूत्र या महानिशीथ अथवा पट्टावलियों के लिए अंध बुद्धि का आग्रह और विवेक बुद्धि का निषेध, किसी के द्वारा करना कदापि उचित नहीं हो सकता है ।

इसीलिये अनुभव एवं चिंतन पूर्वक ही आगमों के लिये लिपि दोष, दृष्टि दोष, परंपरा दोष, प्रक्षेप दोष, परिवर्तन दोष संभवित होने

का कहा गया है एवं इन्हीं मुख्य कारणों को ध्यान में रख कर ही विवेक बुद्धि रखने का संकेत किया गया है । जो अन्य आगम मनीषियों द्वारा सम्मत होने से एक निराबाध सत्य संकेत है । इसका आशय समझे बिना उपेक्षा एवं आक्षेप करना समझदारी नहीं है ।

**निबंध-८**

## निर्युक्ति रचना और भद्रबाहु परिज्ञान

**जिज्ञेश-** वीर निर्माण दसवीं शताब्दि के बाद निर्युक्ति भाष्य आदि बने यह कथन कैसे उपयुक्त है क्योंकि निर्युक्तियों की रचना तो भद्रबाहु स्वामी ने वीर निर्माण तीसरी सदी में ही करदी थी ।

**ज्ञानचन्द्र-** नाम साम्यता के कारण उत्पन्न हुआ यह भ्रम है । पूर्व काल में प्रसिद्ध दो भद्रबाहु स्वामी हुए हैं । दीर्घकाल के अंतर के कारण दोनों के जीवन सम्बन्धी कई वर्णन मिश्रित हो गये हैं । वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु स्वामी वीर निर्वाण की ग्यारहवीं सदी में हुए है और १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी वीर निर्वाण की तीसरी सदी में हुए हैं। निर्युक्तियों की रचना और भद्रबाहु सहिता की रचना वराहमिहिर के भाई दूसरे भद्रबाहु की है और तीन छेद सूत्र की रचना प्रथम भद्र बाहु स्वामी की है। क्योंकि वराहमिहिर ने वराही सहिता बनाई है उसमें जो रचना काल उपलब्ध है वह ग्यारहवीं सदी का ही है एवं निर्युक्ति के प्रारम्भ की मंगल गाथा में तीन छेद सूत्रों के रचना करने वाले प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को वंदन किया गया है । इस विषय में सप्रमाण विस्तृत चर्चा मंदिरमार्गी विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी ने सभाष्य बृहत्कल्प सूत्र के छट्ठे भाग की प्रस्तावना में की गई है । उक्त मंतव्य उन्हीं की चर्चा का निचोड़ है । जानकारी के लिये ऐतिहासिक परिशिष्ट खंड २ पुष्प २२ में वह संकलन ज्यों का त्यों दिया गया है अतः वहीं देखना चाहिये ।

**प्राचीन भद्रबाहु वार्ता-**

**जिज्ञेश-** प्राचीन भद्रबाहु स्वामी ने महाप्राण साधना की थी ? यह साधना क्या है ? किस सूत्र में है ?

**ज्ञानचन्द्र-** यह भी एक कल्पित कथा, कल्पित इतिहास है । श्रावको एवं श्रमणों की अनेक साधनाए, अभिग्रह एवं जिनकल्प या पडिमाओं





का वर्णन आगमों में हैं । महाप्राणसाधना नाम की कोई चीज आगमों में नहीं है । गच्छ मु+ भिक्षु पडिमाएँ भी अल्प समय के लिए होती है जिनकल्प आदि गच्छ मुक्त साधनाएं भी १४ पूर्वी को धारण करने की आवश्यकता नहीं होती है । परिहार विशुद्ध चारित्र भी १४ पूर्वी को धारण करने की आवश्यकता नहीं होती है। वे गच्छ में रहते हुए ही विशिष्ट निर्जरा कर लेते हैं ।

जिन शासन की आवश्यक सेवा छोडकर १४ पूर्वी के द्वारा १२ वर्ष की एकलविहार वाली साधना करना, ऐसे उत्कष्ट बहुश्रुत ज्ञानी विचक्षण महान श्रमण के द्वारा संघ की आज्ञा की अवहेलना उपेक्षा करवाना, छांटकर योग्य ५०० साधुओं को भेजना, उसमें से भी ४९९ का बीच में ही छोड कर आ जाना, बारह वर्ष का दुष्काल होना, इत्यादि अनेक अनघड कल्पित बातें हैं । इसमें निम्न हेतु विचारणीय है । (१) चौदह पूर्व ज्ञानी वे भद्रबाहु स्वामी खुद नहीं समझ सकते कि जिनशासन में ज्ञान देना मुझे आवश्यक है (२) ऐसी महाप्राण साधना का वर्णन किसी आगम में तप के भेदों में नहीं है (३) ५०० योग्य साधु छांटने वाले भी मूर्ख थे क्या (४) उनकी ऐसी कौन सी योग्यता थी जो वहाँ रुके भी नहीं छोड कर आ गये (५) उपालंभ देकर उन्हे पुनः क्यों नहीं भेजा (६) क्या वापिस आने वाले आज्ञा मान कर फिर नहीं जा सकते ? (७) तो उनको ही ४९९ को आज्ञा बाहर क्यों नहीं किया । (८) बारह वर्ष के दुष्काल के पहले ही भद्रबाहु की महाप्राण साधना पूर्ण हो जानी चाहिये थी, यदि दुष्काल के बाद गये तो यह उनको महान अविवेकी बताना है। क्योंकि इतनी दुष्काल की संकट पूर्ण संघ की स्थिति में उनका अकेले जाना ही विचारणीय है उन्होंने किसकी आज्ञा ली, ऐसे समय में किसने आज्ञा दी ? (१०) बारह वर्ष के दुष्कालों की कल्पना ऐसे कथानकों से क्यों जोड़ी जाती है (११) भद्रबाहु स्वामी की कथा के लिये, स्कंधिलाचार्य के समय और देवर्धि के आगम लेखन के लिये १२ वर्ष के दुष्काल की कल्पना मात्र है ऐसे दुष्काल इन जगह फिट किये गये हैं । वास्तव में सोचा जाय तो अज्ञात सुदूर उन वीर निर्वाण के १००० वर्ष में कितने ही १२ वर्षी दुष्काल हो गये तो फिर अब १५०० वर्षों में क्यों नहीं ? इसका कारण स्पष्ट है कि इस १५०० वर्ष में लेखन युग चल गया था जिसके

लिये ऐसे व्यापक विषय की कल्पाएँ चलना संभव नहीं रहा और उन १००० वर्षों के लिये जिसके जो मन भाया कल्पित कर दिया तो भी चल जाता है।

वास्तव में २-४ वर्ष के या एक वर्ष के भी महा दुष्काल पडने से त्राही-त्राही मच जाती है तो १२ वर्षी दुष्काल और वे भी बार-बार होना इत्यादि कथन युक्त नहीं है । यह तो उन-उन घटनाओं एवं कल्पनाओं को जमाने के लिए की गई एक कल्पना मात्र है । वास्तविकता यही है कि किसी भी विशेष घटना को सिद्ध करने समझाने के लिये १२ वर्ष के दुष्काल को बताने का एक प्रवाह सा बन गया था । यथा- १. स्थूलिभद्र की विशेषता कहनी है तो १२ वर्ष का दुष्काल जोड़ दिया २. दिगंबर श्वेताम्बर भेद बताने है तो १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया ३. मूर्तियों की स्थापना बतानी है तो १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया ४. स्कंधिलाचार्य के समय शास्त्रोद्धार बताना है तो १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया ५. देवर्द्धिगणी के समय शास्त्र लेखन होना है तो फिर १२ वर्षी दुष्काल जोड दिया इस प्रकार इतिहासकारों में कई प्रवाह चल जाते हैं। सुदूरवर्ती काल अंतर होने से उसकी खोज भी कौन कर सकता ? अत: वह प्रवाह चल जाता है ।

**निबंध-९**

## महावविदेह से चूलिका लाने का परिज्ञान

**जिज्ञेश**- क्या स्थूलिभद्र की बहिन महाविदेह क्षेत्र से चूलिका लाई?

**ज्ञानचन्द्र**- चूलिका की सूत्र के साथ ही रचना की जाती है । **यथा**- बारहवा अंग दृष्टिवाद है उसमें चूलिका भी एक विभाग है । जेसे मेरु पर्वत की चूला उसके साथ है उसी प्रकार कई आगमों में उसके साथ ही चूलिका की रचना हो जाती है ।

कई कल्पित कथाएँ समय समय पर किसी एकांगी दृष्टिकोण से रच दी जाती है । पहले किसी ग्रन्थ में दो चूलिका लाने की बात की गई है उसके बाद के ग्रन्थों में चार चूला लाना कह दिया गया । ये सब ग्रन्थ कथाएँ बहुत बाद के बने हुए एवं विकृतियों से परिपूर्ण है। दशवैकालिक सूत्र की चूर्णि के कर्ता आचार्य श्री अगस्त्यसिंह सूरि के समय तक ऐसी कल्पनाएँ उठी ही नहीं थी इसीलिये उन्होने चूलिका की व्याख्या करते





समय स्पष्ट कहा कि शय्यंभवाचार्य ने प्रथम चूला में इस विषय का कथन किया है । अर्थात् उनकी दृष्टि में दशवैकालिक के और दोनों चूलिका के कर्ता शय्यंभवाचार्य ही थे ।

महाविदेह से चूलिका लाने सम्बन्धी कल्पित कथा दशवैकालिक चूर्णि से बहुत बाद के ग्रन्थ में उल्लिखित है अत: ऐसी असत्कल्पनाएँ किसी किसी युग में उठती रहती है । किन्तु वे जानने योग्य ही है । अत: उनका आग्रह रखना अविवेक है ।

**निबंध-१०**

## शास्त्रों मे संशोधन परिवर्तन : दूषित परिवर्तन

**जिज्ञेश**- यह संपादन का अधिकार कब तक रहा ? और अब भी है?

**ज्ञानचन्द्र** - शास्त्र लिपिबद्ध करने के समय आवश्यक संपादन पूर्वधरों की साक्षी से कर दिया गया । उसके बाद यह अधिकार किसी को भी नहीं रहा एवं पूर्व ज्ञान का भी विच्छेद हो गया । उसके बाद लिपि दोष, प्रक्षेप दोष आदि दोषों को विवेक पूर्वक सुधारने का अधिकार तो आगमों के गहन अभ्यासी विवेकवान बहुश्रुतों को है ही, इसमें किंचित भी संदेह नहीं करना चाहिए । किन्तु स्वछंद मति से व्यक्तिगत या बहुमत से आगम में हीनाधिक करना या परिवर्तन करना अथवा प्रक्षेप करने का अधिकार किसी को भी नहीं है ।

**दूषित परिवर्तन इतिहास:-**

**जिज्ञेश**- लेखनकाल (देवर्धिगणी) के संपादन के बाद आगमों में किसी ने कोई परिवर्तन प्रक्षेप या हीनाधिक करने के कर्तव्य नहीं किये है ?

**ज्ञानचन्द्र**- अधिकार नहीं होते हुए भी स्वार्थ से या स्वछंद मति के आग्रह से समय समय पर जैन विद्वानों ने आगमों में हस्तक्षेप किये है । कुछेक दुर्मानस वाले लहियों-शास्त्र लेखको आदि ने भी विकृत प्रक्षेप या हीनाधिक किये है । साथ ही कुछ लिपि दोष, दृष्टि दोष एवं भूल से भी परिवर्तन हुऐ है **यथा**- १. कई जगह सूत्रों में मद्यमांस सेवन के कथानक या आचार विधान करने वाले शब्दों का प्रक्षेप हुआ है । २. कहीं मूर्तियों के पाठ डाले गये हैं । ३. कहीं णमोत्थुणं का पाठ का प्रक्षेप किया गया है ४. कहीं डोरे सहित मुहपत्ति का वाक्यांश जोड दिया गया

है ५. कहीं मैल-परीषह या मोय-समाचरण सम्बन्धी पाठ ही निकाल दिये गये है ६. दशाश्रुत स्कंध में आठवीं दशा में समाचारी के पाठों को हीनाधिक एवं विकृत कर दिया गया है । भगवान के मुख से किसी अध्ययन को बार बार परिषद में कहलाने का उपसंहार पाठ भी जोड दिया गया है । पर्यूषण सम्बन्धी पाठ को भी मनघडंत उटपटांग बनाकर रख दिया गया है । ७. चुल्लकल्प और महाकल्प सूत्र और व्यक्तिगत समाचारियों पट्टावलियों को जोड कर नया ही कल्पसूत्र बनाकर उसे आठवीं दशा के नाम से प्रसिद्ध कर दिया है । उस १२०० श्लोक प्रमाण कल्प सूत्र को भद्रबाहु स्वामी से गुंथन करना और भगवान महावीर स्वामी से बारंबार परिषद में सुनाना भी लिख दिया है । और किसी ने तो हिम्मत करके आठवीं दशा में ही उसे पूरा लिख दिया है । वह हस्तलिखित प्रति अहमदाबाद एल.डी. इनस्टीट्यूट में उपलब्ध है ८. किसी ने खंडित महानिशीथ को उपपटांग बातों से परिपूर्ण करके रख दिया है । ९. आवश्यक सूत्र के विषय में तो मानों सभी ने अपने अपने हाथ में परिवर्तन परिवर्धन का पूरा अधिकार ले रखा है । ये सब आगम की चोरिया है । एवं अनधिकार के कर्तव्य है । निशीथ सूत्र के अंत में किसी दिगम्बराचार्य की सूत्र कर्ता के रूप में छाप भी लगादी गई है । १०. किसी ने पर्वतों के कूटों के साथ एक सिद्धायतन के कूट भी लगा दिये है कहीं मालिक देवों के भवनों को अन्यत्र करके उसकी जगह सिद्धायतन लगा दिये है तथा मेरु पर्वत के मालिक देव के भवन को सिद्धायतन बना कर उस मालिक देव को आकाश में लटका रख दिया है अर्थात् उसका निवास स्थान ही गायब कर दिया है जिसे आजतक किसी ने दया करके उसे व्यवस्थित स्थान में नहीं बिठाया है ।

इस प्रकार चोर्य वृत्ति से किये गये परिवर्तन अथवा लिपि दोष या मूल दोष से हुए परिवर्तनों को विवेक एवं अन्वेषण पूर्वक सुधार कर सही संपादित करने का अधिकार तो आगमों के गहन अभ्यासी गीतार्थ मुनियों को अभी भी है ही, ऐसा समझना चाहिये। ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे तो **मक्षिका स्थाने मक्षिका पात्रं** वाली उक्ति चरितार्थ होगी । अत: लकीर के फकीर भी नहीं बनना है, एकांत रूप से परंपराओं का आग्रहवाद भी नहीं रखना है साथ ही नकल में विवेक युक्त अक्ल भी रखना आवश्यक है ।





**निबंध-११**

## पूर्वाचार्यो की आशातना अनाशातना परिज्ञान

**जिज्ञेश-** पूर्वाचार्यों के बनाये ग्रन्थों और सूत्र व्याख्याओं को पढना भी और मानना भी, एवं अपने को नहीं जचे तो उसे गलत भी कह देना । यह तो सर्व सत्ता अपने हाथ में रखना हो गया और उन पूर्वाचार्यो को अपने से अल्पज्ञ समझना हो गया ?

**ज्ञानचन्द्र-** पहली बात तो यह है कि यह आगम सम्बन्धी विवेक एवं निर्णय का अधिकार गहन अभ्यासी, अन्वेषक विद्वानों को है, यह भी आगमों की एवं सिद्धांतो की अपेक्षा रखते हुए है । आगम निरपेक्ष, सिद्धान्त विपरीत सुधार, संपादन का अधिकार तो किसी को भी है नहीं। क्योंकि वह तो चौर्यवृत्ति में है ।

पूर्वाचार्यो को अल्पज्ञ समझने की कल्पना करना भी अज्ञान दशा है । क्योंकि यह पहले बताया जा चुका है कि जिन्दगी भर गुरु की सभी आज्ञा का पालन करना अति आवश्यक श्रमण धर्म एवं विनय धर्म है । फिर भी गुरु या आचार्य प्रदत्त कोई भी प्रायश्चित्त शास्त्रानुकूल नहीं है तो उस प्रायश्चित्त को लेने से इन्कार करने का अधिकार भी शास्त्रज्ञ शिष्य को है ऐसा स्पष्ट शास्त्रपाठ है । ऐसी ही अन्य अनेक शास्त्राज्ञाओं से स्पष्ट हो जाता है कि आगम सापेक्ष न्याय युक्त निर्णय लेने में उसके विपक्ष में रहे किसी भी बडे विद्वान या आचार्य अथवा गुरु की या साहित्यकार की आशातना होना आगमकार नहीं मानते है ।

**निबंध-१२**

## आर्यरक्षित संबंधी परिज्ञान

**जिज्ञेश-** क्या आर्य रक्षित ने छेद सूत्र साध्वियों को पढाने का निषेध किया ? आगम अनुयोग का विच्छेद किया ? मात्रक रखने की छूट दी?

**ज्ञानचन्द्र-** (१) नंदी सूत्र के अनुसार आर्य रक्षित ने अनुयोग की रक्षा की है किन्तु विच्छेद करने का वहाँ नहीं बताया गया । उल्टा यह कहा गया कि आर्य रक्षित के बाद भी अनेक अनुयोग के धारक एवं प्रवर्तक श्रमण हुए । नंदी कर्ता ने एक गाथा में यह भी कहा है कि आज भी अर्द्ध भरत क्षेत्र में अनुयोग का प्रवर्तन चालू है ।

अतः आर्य रक्षित ने अनुयोग का विच्छेद नहीं किया था किन्तु अर्थ एवं व्याख्यान के कथन की जो पद्धति थी उसे अनुयोग द्वार सूत्र की रचना करके सुरक्षित कर दिया था । इस प्रकार आर्यरक्षित ने अनुयोग की रक्षा सुरक्षा की किन्तु विच्छेद नहीं किया । विशेष जानकारी के लिये आगम सारांश पुष्प-२३ में अनुयोग द्वार सूत्र का संपादकीय देखें ।

(२) साध्वी संबंधी छेद सूत्र और मात्रक-पात्र सम्बन्धी कल्पना असत्य है एवं व्यर्थ ही आर्य रक्षित के नाम से प्रचारित की गई है । इसका कारण यह है कि आर्य रक्षित से पहले उपलब्ध आगमों में अनेक पात्र रखने के एवं मात्रक रखने के स्पष्ट विधान है, इस विषयक विशेष जानकारी के लिये आगम सारांश पुष्प-१२ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड-२ देखना चाहिये।

इसी प्रकार साध्वी को आवश्यक रूप से छेद सूत्र (निशीथ सूत्र कंठस्थ करने एवं धारण करने का विधान भी आर्यरक्षित से पूर्व (पहले के) रचित आगमों में आज भी उपलब्ध है । इसकी चर्चा भी पुष्प ११ छेद सूत्र परिशिष्ट खंड १ में की गई है वहाँ से अध्ययन करके विशेष जानकारी करनी चाहिये ।

आर्य रक्षित के नाम से ऐसी मन कल्पित कई बातें इतिहास के पन्नों में चला रखी है । जो कि स्पष्ट आगम विरूद्ध प्ररूपणाएँ है । फिर भी अंधश्रद्धा और भेड चाल वृत्ति वाले लोग उन्हें चलाते ही रहते हैं ।

कहीं यह भी कहा गया है कि आचार्य भद्रबाहु द्वारा रचित शास्त्र में साध्वी को छेद सूत्र पढाने का विधान था, इसलिये उसके विपरीत विधान आगम में वे आर्यरक्षित आचार्य नहीं बना सके । किन्तु मौखिक रूप से परंपरा में तो उन्होंने चालू कर ही दिया जो आज तक चल रहा है । ऐसी असंगत बातों को मानने और चलाने वाले विद्वान भी वास्तव में विवेक रूप नैत्र से विहीन ही है । क्योंकि ऐसे कर्तव्यों से आर्य रक्षित जैसे महान आचार्य की भी प्रतिष्ठा को हानि होती है।

पात्र के लिए भी ऐसा लिख दिया गया है कि पहले एक पात्र ही साधु रखते थे, उसी में खाते और उसी को अन्य कार्य में लेते । फिर आर्य रक्षित ने मात्रक रखने की मौखिक छूट दी, किन्तु बिना कारण उसको उपयोग में लेने की मना भी करदी थी । जबकि व्यवहार सूत्र में साधु के अनेक प्रकार के पात्रों के होने का और उनमें तथा हाथ में भी खाने पीने





का स्पष्ट विधान आज भी उपलब्ध है । इस प्रकार आर्य रक्षित के नाम से कई बेतुकी बातें चलाई गई और अभी तक भी चल रही है जो कि मानों बुद्धिमानों के द्वारा बुद्धि को गिरवी रख कर की जाने योग्य आश्चर्यकारी प्ररुपणाएँ एवं प्रवृत्तिएँ है ।

**निबंध-१३**

## निशीथ रचना एवं रचनाकार परिज्ञान

**जिज्ञेश-** निशीथ सूत्र की कब किसने रचना की ?

**ज्ञानचन्द्र-** आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने तीन छेद सूत्रों की रचना की थी, यह दशाश्रुत स्कंध की निर्युक्ति की प्रथम गाथा से स्पष्ट है । निशीथ सूत्र आचारांग सूत्र का ही एक अध्ययन है । उसी से पृथक किया गया यह सूत्र है । इसका प्रारंभिक नाम, आचारांग से पृथक किया होने से 'आचार प्रकल्प' रहा । बाद में इसके मौलिक निशीथ अध्ययन रूप नाम से इसकी निशीथ सूत्र यह संज्ञा निश्चित की गई अर्थात् आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने जब तीन छेद सूत्रों की रचना की, तब यह आचार प्रकल्प के नाम से ही कहा जाता था । उसके बाद नंदी रचना के समय तक इसका निशीथ सूत्र यह नामकरण स्थिर हो गया । इसीलिये तीन छेद सूत्र में इसका निशीथ नाम नहीं है और नंदी में इसका आचार प्रकल्प नाम नहीं है । इस विषयक विकल्पों एवं मान्यताओं की विस्तृत जानकारी के लिये इसी पुस्तक में आगे निबंध नं. ३६ देखें ।

**निबंध-१४**

## प्रश्नव्याकरण सूत्र परिवर्तन परिज्ञान

**जिज्ञेश-** उपलब्ध प्रश्न व्याकरण सूत्र क्या गणधर रचित है ?

**ज्ञानचन्द्र-** नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र में प्रश्नव्याकरण सूत्र के विषय वस्तु का परिचय दिया है एवं ठाणांग सूत्र में उसके दस अध्ययन होने का कथन किया गया है । जिसमें तीसरे अध्ययन का नाम ऋषि भाषित है चौथा आचार्य भाषित एवं पाँचवां अध्ययन महावीर भाषित है । अगले पाँच अध्ययन विभिन्न प्रश्न विद्या सम्बन्धी बताये हैं । उन्हीं पिछले अध्ययनों के कारण प्रश्न व्याकरण सूत्र का मूलतः परिवर्तन कर दिया गया है, ऐसा माना जाता है । ऋषि भाषित अध्ययन के नाम से अलग

सूत्र बन गया है । नंदी सूत्र में इन दोनों सूत्रों का उल्लेख सूत्र सूचि में किया गया है । किन्तु प्रश्न व्याकरण सूत्र के उपलब्ध आश्रव एवं संवर वर्णन का किंचित भी निर्देश नंदी सूत्र में नहीं किया गया है । तब यह एक असमाधित प्रश्न रह जाता है कि नंदी कर्ता के समक्ष यदि प्रश्न व्याकरण का वर्तमान उपलब्ध रूप था तो उस सूत्र के विषय परिचय में आश्रव संवर के वर्णन का कथन भी तो करना चाहिये था । यदि आश्रव संवर वर्णन नहीं था और नंदी कथित विषय वर्णन था तो ऋषिभाषित और उत्तराध्ययन का नाम नंदी में कैसे आ गया ?

इसका समाधान यह है कि नंदी सूत्र का रचना काल और आगम लेखन काल में कुछ ही समय का अंतर रहा है । अर्थात् देवर्द्धि ने वाचक पद अवस्था में नंदी की रचना कर दी थी । एवं कालांतर से गणी एवं क्षमाश्रमण पद विभूषित होने पर आगम लेखन कार्य में सक्रिय भाग लिया था । लेखन प्रसंग में चमत्कारिक वर्णनों के हटाने की आवश्यकता प्रतीत होना बुद्धिगम्य भी है । अतः आगम लेखन प्रसंग में ही आचारांग के सातवें अध्ययन को लिपिबद्ध नहीं किया एवं प्रश्न व्याकरण सूत्र में बहुत ज्यादा चमत्कारिक वर्णन होने से संपूर्ण विषय ही नया बना दिया गया । जिससे १० अध्ययन के पुनः १० अध्ययन रह गये । प्राचीन प्रश्नव्याकरण सूत्र के पाँच अध्ययन तो उपदेशी विषयों से भरे हुए थे उनको दो सूत्रों में विभक्त कर दिया गया १. उत्तराध्ययन सूत्र एवं २. ऋषिभाषित सूत्र ।

ये दोनों नूतन सूत्र बने । इसलिये इनका नाम नंदी सूत्र में लिख दिया गया था किन्तु प्रश्नव्याकरण सूत्र के परिचय में परिवर्तन नहीं किया गया तथा आचारांग सूत्र के परिचय में भी २५ अध्ययन के स्थान पर २४ अध्ययन नहीं किये गये थे ।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के इस परिवर्तन सम्बन्धी एवं आचारांग सूत्र के सातवें अध्ययन के विच्छेद सम्बन्धी जानकारी इन सूत्रों के टीकाकारों ने भी नहीं दी है । इसी कारण इस विषयक निर्णय उलझन पूर्ण रहा है । फिर भी यहाँ पर यथा शक्य किंचित चिंतन सार प्रस्तुत किया गया है ।

इस स्थिति से यह भी निष्कर्ष निकलता है कि वीर निर्वाण की उन सदियों में ऐतिहासिक जानकारियाँ लिखने का क्रम नहीं चला था।





जिससे ही कई ऐतिहासिक तत्व उलझन पूर्ण एवं कल्पित और विकृत बन कर प्रचारित हुए है ।

## जयपाहुड : प्रश्नव्याकरण :-

**जिज्ञेश-** उत्तराध्ययन सूत्र और ऋषि भाषित सूत्र के अतिरिक्त अन्य भी कोई सूत्र प्राचीन प्रश्न व्याकरण सूत्र के विभाग रूप में उपलब्ध है ?

**ज्ञानचन्द्र-** देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के समय या बाद में जब कभी प्राचीन प्रश्नव्याकरण से प्रश्न विद्याओं को हटाया गया तो भी कई श्रमणों को कंठस्थ परंपरा में थोड़ा बहुत चला ही होगा । कालांतर से किसी श्रमण ने अपनी स्मृति अनुसार यथावशेष उस प्रश्न व्याकरण सूत्र के विभाग को लिपिबद्ध किया होगा । जो स्वतंत्र ग्रन्थ रूप में लिपिबद्ध होते-होते परंपरा से भंडारो में सुरक्षित रहा होगा ।

इसी के फलस्वरूप आज भंडारो में उस ग्रंथ की प्रतियाँ उपलब्ध होती है । जैसलमेर के खरतरगच्छ के आचार्य शाखा के भंडार में **जय-पाहुड प्रश्नव्याकरण** नामक ग्रन्थ की एक ताडपत्रीय प्रति थी जो संवत १३३६ की चेत वदी एकम की लिखी हुई थी । मुनि श्री जिनविजय जी ने उसे संशोधित संपादित कर संवत २०१५ में "सिंघी जैन ग्रन्थमाला के ग्रंथाक ४३ के रूप में प्रकाशित करवाया। उसकी प्रस्तावना में उन्होंने ये भाव लिखे हैं -

"प्रस्तुत ग्रन्थ अज्ञात तत्व और भावों का ज्ञान प्राप्त करने-कराने का विशेष रहस्यमय शास्त्र है । यह शास्त्र जिस मनीषी या विद्वान को अच्छी तरह से अवगत हो तो वह उसके आधार से किसी भी प्रश्नकर्ता के लाभ-अलाभ, शुभ-अशुभ, सुख-दुःख एवं जीवन मरण आदि बातों के सम्बन्ध में बहुत निश्चित एवं तथ्यपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है ।"

मूल ग्रन्थाकार ने तो इस ग्रन्थ नाम **जय पाहुड** दिया है और अंत में उन्होंने **प्रश्नव्याकरण समाप्तम्** लिखा है । व्याख्याकार ने प्रारंभ में इस तरह लिखा है -***महावीराख्यं शिरसा प्रणम्य प्रश्नव्याकरण शास्त्रं व्याख्यामि ॥*** व्याख्या के अंत में लिखा है-***इति जिनेन्द्र कथितं प्रश्न-चूडामणि सार शास्त्रं समाप्तम् ॥***

"जिन रत्नकोष" के पृ. १३३ में भी इस नाम वाली प्रति का

उल्लेख है तथा वहाँ यह भी सूचित किया है कि खंभात के शांतिनाथ भंडार में इस (जयपाहुड-प्रश्नव्याकरण) शास्त्र की कई प्रतियाँ हैं ।

इन सब उल्लेखों एवं विचारणाओं से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्राचीन प्रश्न व्याकरण शास्त्र भिन्न-भिन्न विभागों में बंट गया और पृथक-पृथक नाम वाले ग्रन्थ(शास्त्र) बन गये । आज का उपलब्ध प्रश्न व्याकरण सूत्र भी उसी का ही एक विभाग हो यह भी संभव है । इस प्रकार प्राचीन प्रश्नव्याकरण शास्त्र के स्थान पर आज चार शास्त्र अवशेष है(मुद्रित भी है)-(१) आश्रव संवर मय प्रश्नव्याकरण सूत्र (२) उत्तराध्ययन सूत्र (३) ऋषिभाषित सूत्र (४) जयपाहुड-प्रश्न व्याकरण । प्रश्नोतरमय रचनाओं के नाम साम्य से भी प्रश्नव्याकरण का भ्रम होना और संबंध जुड जाना भी संभव है। वास्तव में गणधर रचित प्रश्नव्याकरण एक अन्य ही कृति रही होगी जो धर्मकथामय विषयों से परिपूर्ण थी अन्य विषयों से उसका कोई संबंध नहीं होगा । इस मंतव्य के लिये देखें आगम सारांश पुष्प-१८ प्रश्नव्याकरण सूत्र की प्रस्तावना ।

**निबंध-१५**

## नंदी सूत्र की ५० गाथा परिज्ञान

**जिज्ञेश-** नंदी सूत्र की ५० गाथाएँ किसने बनाई है ?

**ज्ञानचन्द्र-** उन गाथाओं में जो अंतिम पचासवीं गाथा है उमसें स्पष्ट उल्लेख हैं कि यह मैं कालिक श्रुत के अनुयोगधरों को नमस्कार करके अब ज्ञान की प्ररुपणा करूँगा । इस वाक्य से यह फलित होता है कि नंदी सूत्र के ज्ञान विषय के गुंथन करने वाले श्रुतधर ही इन ५० गाथाओं के रचनाकार है । क्योंकि पच्चासवीं गाथा का इस प्रकार का गुंथन अन्य कोई भी नहीं कर सकता । अत: ये ५० गाथा भी मौलिक नंदी सूत्र का ही अंग है ऐसा समझना चाहिये ।

**जिज्ञेश-** अकाल में और अस्वाध्याय के समय में भी नंदी की इन ५० गाथाओं का एवं दशवैकालिक की दोनों चूलिकाओं का स्वाध्याय किया जाता है, यह उचित है ?

**ज्ञानचन्द्र-** इस विषय में यह माना जाता है कि ये उक्त गाथाएँ और चूलिकाएँ मौलिक नहीं है रचनाकार के सिवाय किसी के द्वारा बनाकर





यहाँ जोड दी गई है । किन्तु यह मान्यता भ्रान्त एवं अनुचित है । नंदी सूत्र एवं ५० गाथा के कर्ता दूष्यगणि के शिष्य देववाचक श्री देवर्धिगणी क्षमाश्रमण है और दशवैकालिक सूत्र एवं दोनों चूलिका के कर्ता अचार्य शय्यंभव है ऐसा दशवैकालिक चूर्णि कर्ता श्री अगस्त्यसिंह सूरि ने मान्य किया है । किन्तु महाविदेह से लाने सम्बन्धी कल्पना का स्पर्श मात्र भी नहीं किया है । बाद के ग्रंथ- परिशिष्ट पर्व और आवश्यक चूर्णि आदि में महाविदेह से चूलिका २ अथवा ४ लाने का उल्लेख है जो कि उक्त अगस्त्य चूर्णी के प्रमाण से स्पष्ट ही कल्पित सिध्ध होते हैं ।

अत: मौलिक सूत्र का अंग होने से स्वाध्याय के नियम गाथाओं और चूलिकाओं के लिये समान ही है । इसलिये अस्वाध्याय या अकाल में इनका- नंदी सूत्रोक्त ५० गाथाओं का और दशवैकालिक चूलिका का स्वाध्याय करना तो सर्वथा अनुचित ही है और ऐसा करने से निशीथ उ. ११ के अनुसार प्रायश्चित्त आता है । प्रमाण के लिये देखें ***-अगस्त्य चूर्णि पृ. २६५ चूलिका-२, गाथा-१४, १५ ।***

**निबंध-१६**

## दशवैकालिक सूत्र-मनक सयंभवाचार्य परिज्ञान

**जिज्ञेश-** दशवैकालिक सूत्र की रचना शय्यंभव स्वामी ने अपने पुत्र "मनक" के लिये की थी ?

**ज्ञानचन्द्र-** कहा जाता है कि "अपने पुत्र की छ: महिने की अल्प आयुष्य जान कर शय्यंभवाचार्य ने दशवैकालिक सूत्र की रचना की और फिर उसके दिवंगत हो जाने के बाद पुन: उस सूत्र को विलीन करने का संकल्प किया । तब संघ का अत्याग्रह हुआ कि इसे आप स्वतंत्र सूत्र रहने दें, विलीन नहीं करे । संघ के उस आग्रह को स्वीकार करने के फलस्वरूप यह दशवैकालिक सूत्र आज उपलब्ध हो रहा है।

इस कथित घटनाक्रम में भी ऐतिहासिक कल्पित कल्पनाओं का प्रभाव ही अधिक लगता है । सूत्र बनाना और मिटाना यह तो एक बच्चों वाला खेल रूप बन जाता है । रथनेमि राजीमति की घटना युक्त विषय, मद्य सेवन करने वाले कपटी साधुओं का विस्तृत कथन, आदि वर्णनों का मनक के लिये होना अप्रासंगिक सा ही लगता है।

अतः यह मनक सम्बन्धी कथानक एवं स्थूलिभद्र की बहिन का महाविदेह में जाने, चूलिका लाने सम्बन्धी कथानक इत्यादि ये सैकडों वर्ष बाद इतिहास की कल्पनाएँ करने वाले विद्वानों की उपज ही अधिक संभव लगती है ।

दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र का जो स्वरूप और महत्त्व आज उपलब्ध है, वह निर्युक्ति भाष्यकार के समय भी था । उन व्याख्या ग्रन्थों में जहाँ साधु के अध्ययन क्रम सम्बन्धी कथन किया गया है वहाँ बताया है कि आचारांग निशीथ के अध्ययन के पूर्व दशवैकालिक और उत्तराध्ययन सूत्र के अध्ययन का क्रम है और उससे पूर्व आवश्यक सूत्र का । अतः यह स्पष्ट है कि ये दोनों सूत्र नवदीक्षित या दीक्षार्थी के प्रारंभिक अध्ययन के उपयोगी सूत्र है और व्याख्याकारों ने इन्हें अध्ययन क्रम में नियुक्त भी किया है ।

भद्रबाहु स्वामी द्वारा व्यवहार सूत्र में जो अध्ययन क्रम कहा गया है उसमें इन उपयोगी या अति उपयोगी सूत्रों का कथन नहीं किया गया है । इसका कारण यही हो सकता है कि ये दोनों सूत्र व्यवहार सूत्र की रचना के पूर्व नहीं बने होंगे । इसमें उत्तराध्ययन के नहीं बनने की बात तो समझ में आ चुकी है कि इसके लिये किसी सूत्रकर्ता आचार्य का नाम निर्देश इतिहास में है भी नहीं । किन्तु दशवैकालिक सूत्र के रचनाकार के रूप में शय्यंभवाचार्य का नाम मिलता है जो कि भद्रबाहु स्वामी के बहुत पहले हो चुके हैं । उस उपलब्ध वर्णन धारणा के अनुसार दशवैकालिक सूत्र भद्रबाहु के समय उपलब्ध था । फिर भी इतने उपयोगी एवं प्रचलित सूत्र का उन्होंने अध्ययन क्रम में उल्लेख नहीं किया, जबकि खुद के बनाये दशाश्रुत स्कंध, बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र को अध्ययन क्रम में रख दिया, तब अपने से पूर्व में अपने ही पूर्वज प्रामाण्य पुरुषों द्वारा रचित इस महत्त्वशील उपयोगी एवं प्रचलित दशवैकालिक सूत्र को अध्ययन क्रम में नियुक्त नहीं किया यह एक अत्यंत विचारणीय प्रश्न है ।

इसकी विचारणा से ही यह फलित होता है कि उत्तराध्ययन सूत्र के समान ही दशवैकालिक सूत्र भी भद्रबाहु स्वामी द्वारा व्यवहार सूत्र की रचना करने के बाद ही किसी ने बनाया होगा । किन्तु कथाओं में कभी किसी के द्वारा शय्यंभवाचार्य से सम्बन्ध जोड दिया गया हो । अथवा





तो भद्रबाहु के बाद शय्यंभव नामक अन्य कोई श्रमण-आचार्य हुए हों उन्होंने दशवैकालिक की रचना की हो और वही बात भद्रबाहु से पूर्व हुए प्रसिद्ध शय्यंभवाचार्य से जुड गई हो।

ऐसा होना असंभव भी नहीं है क्योंकि वीर निर्वाण ग्यारहवीं सदी में रची गई निर्युक्तियाँ और उस सदी में होने वाले वराहमिहिर और भद्रबाहु की कथा वीर निर्माण की तीसरी सदी में हुए भद्रबाहु के वर्णन से मिश्रित होकर प्रचारित हो गई और दुराग्रह में भी पड गई । जिसे आगमोद्धारक धुरंधर विद्वान श्री पुण्यविजयजी मंदिर मार्गी अन्वेषक श्रमण ने अपनी बृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना में स्वीकार किया है कि इस तरह नाम साम्यता से इधर के उधर कथानक वर्णन घटनाएँ मिश्रित हो गई है । वास्तव में प्रथम भद्रबाहु स्वामी तीन छेद सूत्रों के कर्ता अलग हैं, वे १४ पूर्वी थे । और वराहमिहिर के भाई निर्युक्ति कर्ता एवं भद्रबाहु संहिता बनाने वाले ज्योतिष वेत्ता भद्रबाहु अलग हैं ये वीर निर्वाण ग्यारहवीं सदी में हुए है।

अतः ऐतिहासिक कई कथाएँ कल्पित है, कई भ्रमित हैं एवं कई काल दोष तथा नाम साम्यता के कारण विकृत बनी हुई है । अतः उनके सम्बन्ध में चिंतन अनुप्रेक्षण को सदा स्थान रखना चाहिए । किन्तु किसी भी ग्रंथ में प्राप्त घटना के विषय में अत्यंत आग्रह या दुराग्रह नहीं रखना चाहिये ।

सार यह है कि उत्तराध्ययन सूत्र एवं दशवैकालिक सूत्र १४ पूर्वी प्राचीन भद्रबाहु के समय एवं व्यवहार सूत्र की रचना के समय उपलब्ध नहीं थे, बाद में ही इनकी रचना हुई है, यही अधिक संगत लगता है ।

**निबंध-१७**

## ग्रन्थों का वांचन करने संबंधी परिज्ञान

**जिज्ञेश-** ग्रन्थों में तथा इतिहासों में अमान्य या असत्य तत्त्व आते हैं, अतः उनका अध्ययन करना ही नहीं चाहिये और उनकी किसी भी बात को स्वीकार नहीं करना चाहिये । केवल आगम ही पढना और उन्हीं में आए तत्त्व ही मानना चाहिए । तब तो देवर्धिगणि के सांनिध्य में शास्त्रों का व्यवस्थित लेखन कराया गया यह भी नहीं मानना चाहिए क्योंकि यह भी इतिहास ग्रन्थों का वर्णन है ।

**ज्ञानचन्द्र-** सामान्य साधु को प्रत्येक अध्ययन गुरु आज्ञा एवं गुरु निश्रा से होता है । विशिष्ट प्रज्ञावान विचक्षण बुद्धि वाले श्रमण प्रत्येक आगम, ग्रन्थ, व्याख्या, निबन्ध, इतिहास आदि के अध्ययन से ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । किसी व्यक्ति के सभी वचन सभी रचनाएँ पूर्ण अप्रमाणिक नहीं हो जाते और किसी ग्रन्थ के सभी वाक्य सभी तत्व असत्य नहीं हो जाते । पूर्ण प्रामाणिक तो सर्वज्ञों की वाणी ही है तो भी छद्मस्थों की संगति, सेवा, प्रवचन, श्रवण एवं धर्म लाभ अपने क्षयोपशम अनुसार लेने का निषेध नहीं किया जा सकता कि ये तो पूर्ण प्रामाणिक पुरुष नहीं है ऐसे छद्मस्थों की संगति ही नहीं करना । क्यों कि ऐसा मानने पर तो तीर्थंकर का शासन कभी का व्यवछिन्न हो जाता है किंतु ऐसा नहीं होता है । अत: किसी भी जैन साहित्य से ज्ञान प्राप्त करना, छद्मस्थ श्रमणों से ज्ञान उपदेश प्राप्त करना और अन्य विशेष प्रामाणिक आगमों के आधार से उनका चिंतन करना, सत्य तत्व को स्वीकार करना आदि कभी भी अनुचित नहीं हो सकता है । ऐसी कुतर्क मय प्रेरणा करना भी एक दुराग्रह एवं अविवेक युक्त बुद्धि का ही परिणाम है ।

अत: जो भी पूर्वाचार्यों का संकलन, संग्रह, इतिहास, किसी भी आगम सिद्धांत तर्क या व्यवहार आदि से विरुद्ध न हो तो उसे स्वीकार करने की अर्थात् नहीं मानने की प्रेरणा करना उचित नहीं है ।

इसलिए देवर्द्धिगणि के सानिध्य में आगमों का व्यवस्थित लेखन हुआ । इस संगत एवं अविरुद्ध तत्व को नहीं मानने का कोई भी हेतु नहीं है । ऐसी व्यर्थ की कुतर्क नहीं करनी चाहिये ।

**निबंध-१८**

## जैन दिगम्बर धर्म परिज्ञान

**जिज्ञेश-** दिगम्बर जैन धर्म और श्वेतांबर जैन धर्म में सत्य और प्राचीन कौन सा धर्म है ?

**ज्ञानचन्द्र-** हमारे आगमों में श्वेतांबर(वस्त्रधारी) और दिगम्बर निर्वस्त्र (वस्त्र रहित)यों दोनों ही प्रकार के श्रमणों के होने का स्पष्ट वर्णन कई जगह आता है । अत: हमारे श्वे॰ आगमों के अनुसार तो दोनों प्रकार का धर्म एवं श्रमण जीवन तीर्थंकर प्रभु की आज्ञा में है । किन्तु वर्तमान में





दिगम्बर कहे जाने वालों के कई एकांतिक आग्रह अनुचित है और वे कसौटी पर सही नहीं उतरते हैं । एकांतिक आग्रह कुछ ये है- (१) वस्त्र सहित का मोक्ष नहीं होता, यहाँ तक कि सूत का एक तार भी किसी के पास हो तो मुक्ति नहीं । (२) आगम सब विच्छेद हो गये (३) भोजन सम्बन्धी कई प्रकार के शुची धर्मीपन के आग्रह । (४) स्त्री को संयम या मोक्ष नहीं हो सकता ।

(१) दिगम्बरों के मान्य ग्रन्थ में १५ भेदे सिद्ध में **स्त्रीलिंगसिद्धा** मान्य किया है । वह स्त्रीलिंग तभी होगा कि या तो स्त्री का शरीर हो अथवा स्त्री वेश के कपड़े पहने हो । ये दोनों अवस्था में सिद्ध होने पर उनके उक्त आग्रह नं.१ और ४ का स्वत: खंडन हो जाता है । इस प्रकार नये आगम बना करके भी वे अपने दुराग्रह की रक्षा नहीं कर सके । यही तो छद्म दोष का परिणाम है ।

(२) भगवती सूत्र में एक हजार वर्ष तक पूर्वज्ञान एवं इक्कीस हजार वर्ष तक अन्य आगम ज्ञान का रहना बताया गया है अत: शास्त्र विच्छेद की बात भी असंगत है ।

**तर्क-** उपलब्ध भगवती आदि सभी आगम नये बनाये है गणधर रचित तो सब नष्ट हो गये, अत: इनमें कही बात की प्रामाणिकता क्या ?

**समाधान -** प्रथम तो कंठस्थ परंपरा में इतना जल्दी सभी आगम ज्ञान का नष्ट होना संभव ही नहीं है फिर भी जिस समय सभी आगम नष्ट हो गये थे तो क्या बचा था ? कुछ नहीं । तो क्या उस समय के सभी श्रमण श्रमणी अज्ञानी बन गये थे । क्या ग्यारह अंग या दृष्टिवाद कुछ नहीं बचा था ? तो उस समय जिसने भी दिगम्बर होने का आग्रह चलाया या दिगम्बर के नये शास्त्र बनाये वह श्रमण क्या आगम ज्ञान रहित अज्ञानी था, उस अज्ञानी के बनाये ग्रन्थ या चलाये धर्म का ही क्या विश्वास ?

यदि कहें कि उन संत को पूर्वों का ज्ञान था, तो यह भी असंगत कथन है क्योंकि आचारांग आदि सभी अंग शास्त्र ज्ञान का विच्छेद हो जाय तो पूर्वज्ञान के रहने का सवाल ही नहीं होता है । पहले पूर्वों ज्ञान ही नष्ट होता है फिर अंगों का ज्ञान बहुत समय तब चलता है ।

दिगम्बर धर्म का एकांतिक आग्रह करने वालों ने नये शास्त्र बनाये यह तो निश्चित ही है अत: वे ज्ञानी तो थे ही । इसलिये संपूर्ण

आगम ज्ञान के विच्छेद का कथन तो निरर्थक ही रहता है । जिससे भगवती आचारांग आदि आगमोक्त तत्व प्रामाणिक ही रहे ।

**शंका-** अब तुलना यह करनी चाहिये कि श्वेतांबर आगम वस्त्र के आग्रह में पडने से बने है या दिगम्बर आगम और किसके आगम पहले से चले आये हुए हैं ?

**समाधान-** यह एक स्वाभाविक तथ्य है कि जो व्यक्ति अपने एकांतिक दुराग्रहों से किसी शास्त्र या ग्रन्थ की रचना करेगा तो उसमें (१) वह प्रतिपक्ष का मंडन नहीं करेगा (२) प्रतिपक्ष का खंडन अवश्य करेगा । ये दोनों ही दूषण श्वेतांबर मान्य आगमों में नहीं मिलेंगे ।

श्वेताम्बर आगम आचारांग आदि में साधु के वस्त्र रहित रहने का कहीं भी खंडन या निषेध नहीं मिलेगा । इसके विपरीत इन आगमों में अनेक जगह अचेल निर्वस्त्र रहने की प्रेरणा मिलती है या निर्वस्त्र रहना श्रेष्ठ है ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है । इससे कोई भी सामान्य सी बुद्धि या विवेक रखने वाला भी समझ सकता है कि ये श्वेतांबर मान्य आगम दिगम्बर-श्वेताम्बर रूप भेद होने पर दिगम्बरों के विरोध में या श्वेताम्बर होने के आग्रह में बने हुए नहीं है ।

इन आगमों का अंतरनिरीक्षण करने से यह स्पष्ट समझ में आ सकता है ये आगम दिगम्बर से श्वेताम्बर बने साधओं ने अपने दुराग्रह से नहीं बनाये है किन्तु दोनों प्रकार के धर्म मान्य स्यादवाद मय अवस्था में बने हुए है, अर्थात् वीतराग प्ररुपित गणधर रचित ही ये आगम है । इन श्वेतांबर आगमों में अचेल निर्वस्त्र रहने की बहुत प्रशंसा की गई है, उसके महान लाभ बताये गये हैं, इन आगमों में सचेलकत्व और अचेलकत्व का खुलमखुला मिश्रित वर्णन है उसे देखने से यह सहज अनुमान होता है कि ये आगम निष्पक्ष अनाग्रह अवस्था में बने हैं । इसमें पक्ष विपक्ष के अवस्था की कोई किंचित गंध भी नहीं है । अत: श्वेतांबर धर्म के आग्रह में पडने वाले व्यक्ति ऐसे निष्पक्ष आगमों की रचना कदापि नहीं कर सकते, वे यह नहीं कह सकते कि **अचेले लाघवियं आगममाणे पसत्थे भवइ** अर्थात् निर्वस्त्र रहने से द्रव्य भाव से लघुता की उपलब्धि होती है अत: निर्वस्त्र होना उत्तम है, श्रेष्ठ है ।

इस प्रकार विचारणा, समीक्षा, तुलना करने से यह सिद्ध होता है कि ये श्वेतांबर आगम नये कल्पित बनाये हुए नहीं है अपितु पूर्व गणधर





परंपरा से प्राप्त आगम ही है । अत: भगवती सूत्रोक्त तथ्य सही है कि २१ हजार वर्ष तक आगमज्ञान और जिनशासन चलेगा और एक हजार वर्ष तक पूर्व ज्ञान चला था । जबकि दिगंबर तो वीर निर्वाण के थोडे समय बाद ही संपूर्ण आगम का विच्छेद हो जाना कह देते हैं ।

दिगम्बर आगमों में स्त्री मुक्ति का निषेध एवं खंडन मिलेगा। वस्त्र रखने का निषेध मिलेगा । वस्त्र से और स्त्रीत्व से मुक्ति नहीं हो सकती, संयम भी नहीं आ सकता, ऐसे आग्रह भरे तत्व मिलेंगे। जिससे यह स्पष्ट समझ में आ सकता है कि वास्तव में उनके आगम ऐसे ही किन्हीं दुराग्रह में पडने से अपने दुराग्रह को पुष्ट करने के लक्ष्य से बनाये गये हैं ।

**(३)** दिगम्बर साधुओंने अपने आहार में दिखाऊ अभिग्रह के ऐसे ढंग अपना रखे हैं और शुचि धर्मीपन के कायदे भी ऐसे पकड रखे हैं जिसमें उन्हें महान आरंभ, समारंभ, हिंसा के प्रेरक, अनुमोदक बनना पडता है। एषणा समिति के मौलिक सैद्धान्तिक नियमों का तो उनके यहाँ खात्मा हो जाता है । इस प्रकार उनका आहारमय जीवन भगवदाज्ञा से, अहिंसा सिद्धान्त से और प्रथम महाव्रत से कोसों दूर भाग जाता है एवं उनका वह आहार लोग दिखाऊ अनेक मन घडंत कष्टप्रद नियमों से संकलित हो गया है, जिससे कि भक्त लोग उस कष्टप्रद कठिनता के चक्कर से प्रभावित बने हुए मौलिक दोष एवं संयम समिति से विपरीत, सिद्धान्त से विपरीत एवं भगवदाज्ञा से विपरीत, आचरण को समझ ही नहीं पाते कि ये हमारे साधु तीन करण तीन योग के अहिंसा महाव्रत से कितने पतित हो रहे है ? और हम भी अज्ञान एवं मोह दशा में पडकर इन्हें कितना पतित करते जा रहे हैं ।

वास्तव में देखा जाय तो इन दिगम्बर साधुओं के लिये कहीं ए क ही घर में और कहीं ५-१० घरों में अग्नि पानी वनस्पति का विविध प्रकार से पाप किया जाता है तब कहीं जाकर किसी घर में इनका खाना होता है । इन साधुओं के लिये ही कुए आदि से पानी लाना, आटा पीसना, सभी बर्तन उपकरण धोना, स्वतंत्र चूल्हा जलाना, दूध आदि सामान इनके लिये ही स्पेशल लाना, फ्रूट्स लाना, इनके लिये ही काटना, इनके नियमों के योग्य औरतें ही वहाँ स्नानादि करके हाजिर

रहना, मकान की जगह धोकर स्वच्छ रखना इत्यादि अनेक पाप रूप प्रवृत्ति प्रक्रियाएँ की जाती है । वैसी प्रक्रिया अनेकों घरों में करके तैयार रहना पड़ता है । फिर इनके अभिग्रह के लिये ही चलाकर ग्रहस्थ लोग कई प्रकार के ढोंग करते है, याने पानी से भरा कलश लावों, उसमें गुलाब का फूल डालों, श्रीफल लावो और न मालूम क्या क्या ढोंग करे, जब इनका अभिग्रह पूर्ण होता है । ऐसे अभिग्रहों का करना और लोगों में प्रचार करना और लोग उस अभिग्रह पूर्ति के लिये इतनी प्रवृतियाँ करें, यह कोई जिज्ञाना नहीं है । अभिग्रह तो निर्वद्य हो और स्वाभाविक ही वैसे संयोग मिले, तभी भगवदाज्ञा रूप होते हैं ।

इस विकृति का कारण भी इनकी एकांतिक दुराग्रह वृत्ति ही है अर्थात् इन्होंने शुचिमूलकता का आग्रह विशेष रूप से नया ही पकडा है और कई अनावश्यक मनघडंत नियम अभिग्रह कायम कर दिए हैं ।

इन कारणों से दिगम्बरों की कष्टमय साधना भी सफलीभूत नहीं हो सकती । क्योंकि अनेक सैद्धान्तिक दूषण उसमें घुस चुके हैं और वे दुराग्रह में पड चुके हैं । इसीलिये उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि-

कोई मास-मासखमण की विकट तपस्या करे, पारणे में कण मात्र ही आहार करे, इतनी कष्टमय साधना करे फिर भी जिनोक्त धर्म रूप पूनम के सामने अमावश के बराबर भी नहीं है । अतः केवल कठिनता ही कल्याण मार्ग नहीं बन सकती किन्तु उसके साथ सैद्धान्तिक तत्व अहिंसा और एषणा समिति भी प्रमुख अंगो में है। जिसका कि अत्यधिक विनाश इन दिगंबर संतों की आहार विधि में होता है । अतः इनके आहार सम्बन्धी कठिन नियम और शुचि धर्मीपना, भगवदाज्ञा से बाहर है जबकि इन्हें तो उसी में भगवदाज्ञा होने का भ्रम हो रहा है ।

***इन विचारणाओं से पाठक स्वयं समझने का प्रयत्न करे कि दिगम्बर और श्वेतांबर धर्म में प्राचीन और समीचीन (सत्य) धर्म कौन सा है ?***

**जिज्ञेश**- यह दिगम्बर धर्म किसने और क्यों चलाया ?

**ज्ञानचन्द्र**- यों तो भगवान के शासन में वस्त्रयुक्त और वस्त्र रहित दोनों प्रकार के साधक होते ही थे, किंतु एक बार एक श्रमण 'शिवभूति' को राजा की प्रसन्नता से एक रत्नकम्बल मिली । श्रमण का उसमें अत्यधिक मोह-आसक्ति हो जाने पर उसे निवारण करने के लिये गुरु ने कभी





उसकी अनुपस्थिति में उस कंबल के अनेक टुकड़े करके साधुओं को बाँट दिये । यह हाल जब शिवमूति को ज्ञात हुआ तो उसकी अशांति भडक उठी, उसने स्पष्ट निर्णय सुना दिया कि "वस्त्र है तभी आसक्ति है अतः साधु को वस्त्र रखना ही नहीं ।" यों कह कर उसने सारे वस्त्र वहीं डालकर नग्न होकर चल दिया और एकांत नग्नत्व धर्म की प्ररूपणा प्रारम्भ करदी । उसकी बहिन साध्वी भी उसके पक्ष में होकर नग्न रहने लगी किन्तु वह लम्बे समय तक निर्वस्त्र न रही सकी । इसी कारण उसने (शिवभूति ने) दो प्ररुपणा प्रारंभ की **१.** वस्त्र सहित से मुक्ति नहीं **२.** स्त्री को संयम और मोक्ष नहीं मिल सकता । और जब देवर्द्धि द्वारा लिपिबद्ध कराये आगमों से इन सिद्धान्तों का खंडन होने लगा, अपना आग्रह अप्रमाणिक होने लगा, तब इन शास्त्रों को ही खोटे कल्पित बताकर नये ही ग्रंथों की अपनी इच्छानुसार रचना कर दी । इस प्रकार दिगम्बर धर्म का प्रचलन हुआ और उनके द्वारा अपने इच्छित ग्रंथों की रचना और लेखन, देवर्द्धि के आगम लेखन के बाद हुआ और उसकी प्रामाणिकता सिद्धि के लिये महाविदेह से ज्ञान लाने की बाते बनाई गई।

**निबंध-१९**

## श्वेतांबर मूर्तिपूजक धर्म परिज्ञान

**जिज्ञेश**- जैन धर्म में मंदिर और मूर्तिपूजा कितनी प्राचीन है ? क्या तीर्थंकरों के समय भी उनके मंदिर और उनकी पूजा की जाती थी ?

**ज्ञानचन्द्र**- किसी भी व्यक्ति के माता पिता जीवित है और परस्पर बहुत प्रेम भक्ति है तो भी पुत्र पिता की मूर्ति बनाकर रोज उसकी पूजा नहीं करता, न ही उसका पिता उसे कहेगा कि रोज उठकर पहले मेरी मूर्ति की पूजा किया कर ! वास्तव में ऐसा संभव नहीं है। इसलिए भगवान की उपस्थिति में तो उनका मंदिर और उनकी पूजा नहीं थी अर्थात् अमूर्तिपूजक धर्म ही तब था ।

आगमों में कोणिक की भगवान महावीर के प्रति अत्यधिक भक्ति का वर्णन है उसके कई संदेश बाहक थे जो भगवान की नित्य खबरें (समाचार) पहुँचाया करते थे । इस भक्ति वर्णन के साथ कहीं भी यह वर्णन नहीं है कि वह नित्य भगवान की मूर्ति की पूजा करता था । कोणिक का भगवान को घर बैठे वंदन का वर्णन भी है किन्तु यहाँ भी

मूर्ति का नामोनिशान नहीं है । कोणिक की अपार राज्य ऋद्धि संपदा का विस्तृत वर्णन आगम में है किन्तु कहीं भी यह वर्णन नहीं है कि उसके ए क भी मंदिर था या उसने इतने सैंकड़ो जिन मंदिर बनवाये ।

उपासक दशा सूत्र में दस श्रावकों की विस्तृत गृह-संपदा का वर्णन है । श्रावक के अनेक गुणों कर्तव्यों क्रिया कलापों का वर्णन है, नियम व्रतों का वर्णन है, उसकी व्यक्ति गत पौषधशाला का वर्णन है, किन्तु कहीं भी उसमें मूर्ति पूजन का नियम लिया या मूर्ति पूजा रोज करता था या उसके इतने मंदिर पूर्वजों के थे और इतने मंदिर उसने अपने जीवन में बनाये या जीर्णोद्धार किया, इत्यादि रंच मात्र भी मंदिर मूर्ति से सम्बन्धित वर्णन नहीं है ।

अन्य आगमों में भी अनेक श्रावकों और भगवान के उपासकों का वर्णन है । उनमें भी कहीं भी तीर्थंकरों की मूर्ति या मूर्ति पूजन का वर्णन नहीं है । किन्तु जब इन मूर्तिपूजकों को किसी भी आगम वर्णित श्रावक जीवन में ऐसा वर्णन नहीं मिल पाता तब ये भोग का नियाणा की हुई और उस नियाणो से अभिभूत बनी मिथ्या दृष्टि द्रौपदी द्वारा शादी के प्रसंग से कामदेव की पूर्ति पूजा करने के पाठ को आग करके संतोष करते है । किन्तु किसी संपत्तिशाली श्रावक के या जैनी राजा के मंदिर मूर्तियों का ढेर ये आगमों में नहीं बता सकते ।

भगवान के या गौतम स्वामी के उपदेशों से इतने गावों में इतने जैन मंदिर बने, इतने जीर्णोद्धार हुए, ऐसी एक लकीर भी आगमों में जब इन्हें नहीं मिल सकती, तो ये बिचारे मूर्तिपूजक लोग शास्वत स्थानों पर्वतों और देवलोक के वर्णन को आगे करके संतोष करते हैं । जबकि शाश्वत मूर्तिया किसी व्यक्ति विशेष की तो हो ही नहीं सकती । क्योंकि व्यक्ति अशाश्वत है और वे मूर्तियाँ शाश्वत है । व्यक्ति की मूर्ति कभी भी बनाई जाती है और शाश्वत स्थानों की मूर्तियां किसी की बनाई हुई नहीं है । जब वे शाश्वत मूर्तियाँ किसी ने बनाई नहीं, किसी भी व्यक्ति की नहीं, तब तीर्थंकर की मूर्ति तो वे है ही नहीं । जब तीर्थंकर की मूर्ति नहीं है तो उसके और उसकी पूजा के होने से जैन धर्म का कोई सम्बन्ध ही नहीं हो सकता है और जब तीर्थंकर और जैन धर्म से उसका सम्बन्ध नहीं हो सकता तो वहाँ तीर्थंकरो के गुण वाले णमोत्थुण के पाठ का क्या





लेना देना अर्थात् उन शाश्वत अनादि मूर्तियों का तीर्थंकर और तीर्थंकर धर्म एवं णमोत्थुणं से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता । अतः उन मूर्तियों का जन्म समय में पूजन करना देवों का अपना जीताचार-लौकिक कृत्य ही है । उस लौकिक कृत्य में वे देव उन शाश्वत मूर्तियों के अलावा देवलोक के सभी स्थानों, दिवालों, दरवाजों बावडियों आदि की भी पूजन विधि करते हैं । चाहे सम्यग् दृष्टि हो या मिथ्यादृष्टि । लौकिक कृत्य करने में वे स्वतंत्र होते हैं। जब तब कि वे लोक व्यवहार में रहते हैं । यथा-

अरणक श्रावक की धर्म श्रद्धा को देव भी विचलित नहीं कर सका था फिर भी लौकिक कृत्य के स्थान पर उस अरणक श्रावक ने भी यात्रा के पूर्व अपने जहाज की पूजन विधि की थी, ऐसा ज्ञातासूत्र में वर्णन है ।

इस प्रकार आगमों में श्रावकों के ढेर सारे वर्णनों में कहीं भी मंदिर बनवाना और तीर्थंकर की मूर्ति की पूजा करना आदि वर्णन नहीं मिलने पर इन मूर्तिपूजकों को मिथ्यादृष्टी द्रौपदी और देवों के जीताचार का पाठ ही हाथ लगता है मानो फिर क्या चाहिये- **मिल गया चाबुक का तोडा, घटे फिर लगाम और घोड़ा ।**

मूर्तिपूजाधर्म जैन सिद्धान्तों से विपरीत धर्म है । इसमें अनावश्यक हिंसाकृत्यों की धर्म के नाम से प्रेरणा मिलती है । पर्यूषण और संवत्सरी सरीखे, महान धार्मिक, अहिंसक, पर्व दिनों में भी हजारों लाखों फूलों से अनंत जीवो की घात व्यर्थ ही धर्म के नाम से होती है । सेंकडो हजारों बल्ब दीपक जलाकर अग्नि काय की एवं मच्छरों की पतंगो की हिंसा की जाती है । हजारों लाखों घडे पानी ढोलकर भी धर्म माना जाता है । साथ ही नाचना बजाना गाना इन्द्रियों के पोषण और जीव जन्तुओं का घमासान करके धर्म माना जाता है । फिर भी उनके वहाँ पर अहिंसा परमोधर्म की जय बोली जाती है ।

मूर्तिपूजक साधु भी उस पाप कार्य के प्रेरक एवं अनुमोदक होते ही है, तब सोचे कि उनका जीवन तीन करण तीन योग का पहला महाव्रत भी कैसे रह सकता है ? ये लोग अतिशयोक्ति करने लिखनें में भी ऐसे बेभान हो जाते हैं और ऐसा भी कह देते है कि-

***एक मंदिर बनाने वाला या एक मंदिर की नीव में ईंट डालने वाला या अमुक पर्वत पर चढने वाला एक भव करके ही मोक्ष में चला जाता है ।***

ऐसी प्ररूपणा करने वालों से पूछा जाय कि इतना सस्ता मोक्ष मिलता है और पैसों के बल से ही मोक्ष मिल सकता है, तो राजा महाराजा लोग और आप लोग इतना कष्ट साध्य संयम क्यों लेते हैं ? राजा लोग तो मंदिर बना कर मोक्ष चले जाय और गरीब लोग एक ईट मंदिर के नीव में डाल कर मोक्ष चले जाय, फिर इतने क्रियाकांडों तथा नियमों, व्रतों की एवं उस निमित्तक होने वाले कष्टों की जरूरत क्या रहेगी ? किन्तु ऐसा संभव नहीं है यह तो केवल भोले लोगों को भ्रमित करने की खोटी पध्धति है । गधे का पूँछडा पकड लिया तो अब करना क्या ? कुछ न कुछ उटपटांग बातें जमाकर ही संतोष करना पड़ता है ।

सार यह है कि आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन में यह स्पष्ट कह दिया गया है कि इस संसार में कई लोग धर्म और मोक्ष के लिये भी छः काया के जीवों की हिंसा करते रहते हैं किन्तु वह हिंसा उनके लिये अहितकारक होती है और बोधि प्राप्ति की दुर्लभता के लिये होती है अर्थात् किसी प्रकार से किसी भी उद्देश्य से की गई हिंसा अहित कारक तो होती ही है परन्तु धर्म और मोक्ष होने की बुद्धि से जो हिंसा की प्रवृतियों की वृद्धि करते है उन्हें भविष्य में धर्म की प्राप्ति होना भी दुर्लभ होता है । ऐसा कथन अनेक बार अलग अलग प्रसंगों से आचारांग सूत्र के एक ही अध्ययन में किया गया है।

इस प्रकार जैन धर्म में मंदिर-मूर्ति पूजा का धर्म प्राचीन आगम कालीन या आगम सम्मत नहीं है, किन्तु आगम विरूद्ध और संयम विरूद्ध तथा अहिंसा सिद्धांत के विरूद्ध है, साथ ही साधुओं के अहिंसा महाव्रत का नाशक है ।

**जिज्ञेश-** उपाश्रय या स्थानक बनाने में भी पाप तो होता ही है साधुओं के गमनागमन आदि क्रियाओं में भी पाप तो होता ही है ?

**ज्ञानचन्द्र-** उपाश्रय और स्थानक बनाने में होने वाले पाप को पाप ही समझा जाता है उससे मोक्ष होना नहीं कहा जाता । और उपाश्रय का वर्णन तो आगमोक्त श्रावकों के जीवन के साथ आगमों में भी लगा हुआ है । वे आदर्श श्रावक अपनी पौषधशाला में जाकर पौषध किया करते थे । अनेक श्रावकों के व्यक्तिगत पौषधशाला का वर्णन शास्त्रोक्त है। यह तो उनके अपने मकान के समान रहने का आवश्यक अंग माना गया





है । किन्तु उन आदर्श श्रावकों के पौषध या धर्म करने का मंदिर था और वहाँ जाकर वे पूजा करते इत्यादि वर्णन किसी भी शास्त्र में नहीं है । अतः पौषधशाला कहो या उपाश्रय अथवा स्थानक सभी, एकार्थक शब्द है । मंदिर से इसकी तुलना करना कोई भी महत्त्व नहीं रख सकता ।

साधुओं की गमनागमन आदि क्रिया भी जब तक जीवन है तब तक ये उसकी आवश्यक क्रियाएँ है । इसका आगम में एकांत निषेध नहीं है अपितु पाप कर्मों का बंध नहीं करता है ऐसा स्पष्टीकरण दशवैकालिक में किया गया है । इससे स्पष्ट सिद्ध है कि गमनागमन आदि क्रियाएँ साधु को यतना पूर्वक करना भगवदाज्ञा में है । उनके अत्यावश्यक पाप के समकक्ष जोडना समझदारी नहीं है किन्तु बुद्धि का दिवाला निकालने के समान है ।

इस प्रकार आगमों से और सिद्धान्तों से मूर्तिपूजा और मंदिर धर्म की सत्यता और प्राचीनता सिद्ध नहीं हो सकती है । ऐसी स्थिति में अपने अभिनिवेष को पुष्ट करने के लिये कई कल्पित कथाएँ जोडी जाने लगी, इतिहास के बहाने से अनघड मनघडंत मंदिर और मूर्तियों को जोड़-जोड़ कर लिखना शुरु किया गया । उस जोडने में सत्य महाव्रत का भी दिलावा निकालना पडा अर्थात् जिन श्रेणिक राजा आदि कई व्यक्तियों के शास्त्र वर्णन में उनके जीवन के साथ मंदिर मूर्ति का नामोनिशान भी नहीं है, वहाँ अनगिनत मंदिर मूर्तिए जोड दी गई है । कई खोटे शिलालेख बनाने के पाप भी करने पडे और उन्हें गाड गाड कर कहीं से खुदाई में निकलना बताकर अपने मन को झूठे इतिहासों से संतुष्ट करने लगे ।

**जिज्ञेश-** ऐसा खोटा जैन धर्म कब चला किसने चलाया ?

**ज्ञानचन्द्र-** उपरोक्त दिगम्बर धर्म के समान किसी व्यक्ति ने किसी आग्रह से यह धर्म नहीं चलाया है । किंतु धीरे धीरे देखा देखी गाडरिया प्रवाह से विकृति में अंकुरित होकर वृद्धि को पाया हुआ यह ढर्रा है । फिर व्यापक बन कर साधु साध्वियों में और श्रावक श्राविकाओं में व्याप्त हो गया है ।

**जिज्ञेश-** खोटा होते हुए भी इतना अधिक व्यापक कैसे बन गया है?

**ज्ञानचन्द्र-** इन मंदिर मार्गियों ने इधर उधर से जोड मोड कर एक कल्प सूत्र बनाया है । उसमें एक जगह लिखा है कि भगवान के निर्वाण

पधारते समय उनके भस्मग्रह का संयोग था जिसके कारण भगवान का शासन २००० वर्ष तक अत्यधिक अवनति पर चलेगा, फिर पुनः उन्नति होगी । इसी कारण इनके खुद के शास्त्र से ही ये लोग खोटे अवनत धर्म के भागी बने हैं । बराबर जब २००० वर्ष भगवान के शासन के बीते तभी स्थानकवासी धर्म रूप जैन धर्म का पुनरुत्थान हुआ । अतः उक्त सारा ढर्रा उस भस्मग्रह के प्रताप से हुआ ऐसा उन्ही मंदिरमार्गी लोगों के उस कल्प सूत्र से सिद्ध होता है इसी भस्मग्रह के प्रभाव के कारण यदि मध्यकाल में कोई प्रतिपक्षी विचारों के साधु होते भी सही किन्तु उनकी ज्यादा चलती नहीं । वे उस समय भी मंदिर के कार्य को पापकारी समझते थे ।

**जिज्ञेश-** ऐसा कोई उदाहरण है कि स्थानकवासियों के लोकाशाह के पूर्व भी कोई साधु मंदिर मूर्ति धर्म को नहीं चाहते थे ?

**ज्ञानचन्द्र-** इन मंदिर मार्गी लोगों ने जो ४५ आगम मान रखे हैं उसमें विचित्र उटपटांग तत्वों से भरा एक शास्त्र है उसका नाम है **महानिशीथ सूत्र ।** जिसका कुछ दिग्दर्शन इसी पुस्तक में निबंध नं. ३९में किया हैं। इस महानिशीथ सूत्र के अध्ययन-५, सूत्र-१२९ में इस प्रकार कथन है-

एक समय आचार्य कुवलयप्रभ विहार करते हुए चैत्यवासियों-मंदिर वासियों के क्षेत्र में पहुँचे । मंदिर वासियों ने वंदन कर सत्कार कर ठहराया । एवं यथासमय निवेदन किया कि "आप यहीं वर्षावास करे, आपके उपदेश से सुंदर चैत्य-मंदिर बन जायेगा और बहुत लाभ होगा" तब उन आचार्य ने इस प्रकार जवाब दिया कि "हे प्रियवंद्! यद्यपि जिन मंदिर का काम है फिर भी यह पापाकारी कृत्य है, अतः मैं इसके लिये एक शब्द भी नहीं बोल सकता । इस प्रकार यथायोग्य सार पूर्ण सिद्धांतिक वचन निडरतापूर्वक उन मिथ्यादृष्टि कुलिंगी, साधु के लिंग मात्र के वेष के धारण करने वाले साधुओं के सामने कहा । ऐसा हिम्मत के साथ सत्य सिद्धांत कहने के कारण उन आचार्य कुवलप्रभ ने उस समय के उन शुद्ध श्रेष्ठ परिणामों से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कर लिया और संसार को परित्त कर एकाभवतारी बन गये अर्थात् एक भव देव का और एक भव मनुष्य का करके वे कुवलयप्रभ आचार्य मोक्षगामी बन जायेंगे ।" इस पिछले अंश का मूल पाठ इस प्रकार है-





***ताहे भणियं तेण महाणुभागेण गोयमा ! जहा- भो भो पियंवए! जइ वि जिणालये तहा वि सावज्जमिणं, णाहं वायामित्तेण एवं आयरिज्जा, एवं च समय-सारयरं तत्तं जहाट्ठियं, अविविरीयं, णीस्संकं भणमाणेणं तेसिं मिच्छदिट्ठी कुलिंगीणं साहुवेसधारीणं मज्झे गोयमा ! आसंकलियं तित्थयर नाम-कम्म-गोयं तेणं कुवलयपमेणं आयरिएणं, एगभवावसेसीकओ भवोयहि ।-महानिशीथ सूत्र अध्ययन ५ सूत्र १२९ ।***

यह सूत्र संभवतः हरिभद्रसूरी के समकाल में बना है क्योंकि इस सूत्र के अंदर हरिभद्रसूरि का नामोल्लेख भी है । इस सूत्र को मंदिर मार्गी अपना आगम मानते हैं स्थानकवासी अपने ३२ आगम में इस सूत्र को नहीं मानते है । अतः मंदिरमार्गियों का यह व्यक्तिगत मान्य सूत्र है जो स्थानकवासियों के लोकाशाह के सैकडों वर्ष पहले ही बन गया था । जब मंदिरमार्गी धर्म भस्मग्रह के कारण व्यापक बना हुआ था तब भी ऐसे शास्त्र के पाठ बने हैं और ऐसे निर्भीक बोलने वाले आचार्य भी हुए हैं । जिनकी ये मंदिरमार्गी आचार्य ही अपने सूत्र में प्रशंसा, गुण कीर्तन करके उन्हें तीर्थंकर गौत्र बंध कराकर एक भव में मोक्ष जाना बता देते हैं । इसी कारण उपर यह कथन किया कि "देखादेखी गाडरिया प्रवाह से अंकुरित होकर वृद्धि पाया हुआ यह ढर्रा रूप मंदिर मार्गी धर्म है ।"

**इस महानिशीथ सूत्र में एक महत्त्वपूर्ण बात और है यथा-**

प्रश्न- हे भगवन् ! कुगुरु कब होगे ?

उत्तर - हे गौतम ! साढे बारह सौ वर्ष बीतने पर कुगुरु प्रगट होंगे । इस प्रश्नोत्तर में भगवान ने यह बताया था कि मेरे शासन के १२५० वर्ष बीतने पर इस शासन में कुगुरु खोटे साधु पैदा होंगे अर्थात् वे खोटा धर्म और खोटा आचरण चलायेंगे ।

अब पाठक सोचें कि स्थानकवासी और वीर लोकशाह तो वीर निर्माण के २००० हजार वर्ष बीतने पर हुए है अतः कुगुरु और उनका कुधर्म तो पहले ही प्रगट हो गया था । कल्प सूत्र के अनुसार भस्मग्रह के प्रभाव से अवनति वाला धर्म तो इस मंदिरमार्गियो के व्यक्तिगत इन दो शास्त्रों (कल्पसूत्र और महानिशीध सूत्र) से ही इनका धर्म खोटा और जिन धर्म की अवनति वाला सिद्ध हो गया है और इनके साधु ही कुगुरु की संज्ञा से उपलक्षित किये गये हैं इनके ही इन शास्त्रों में ।

अत: बहुमत या व्यापकता के चक्कर में नहीं आकर गहरे आगम अनुभव से धर्म का मूल्यांकन करना चाहिये ।

मंदिर मार्गियों के इन दो सूत्रों के अतिरिक्त और भी ऐसे ग्रन्थ है जिसमें ऐसी अनेक शिक्षा की और महत्त्व की बातें कही गई है यथा- धर्मदासगणि की **उपदेशमाला** एवं हरिभद्रसूरि के कई ग्रन्थ, इत्यादि ।

**जिज्ञेश- चैत्य** शब्द तो शास्त्र में कई जगह आता है उसका अर्थ तो मूर्ति मंदिर ही होता है न ?

**ज्ञानचन्द्र-** एक शब्द के अनेक अर्थ भी होते है यथा- **सैंधव** का अर्थ घोड़ा भी होता है और नमक भी । इसी प्रकार चैत्य शब्द के भी सौ से अधिक अर्थ कोषों में बताये गये हैं और जैनागमों में भी अनेक अर्थो में चैत्य शब्द प्रयुक्त है । यथा- सभी तीर्थंकरो के चैत्यवृक्ष होते वे ज्ञान उत्पत्ति होने के वृक्ष है । तीर्थंकरों को तिक्खुतो के पाठ से वंदन किया गया है वहाँ गुणग्राम करते हुए कहा गया कि आप चैत्यवान है-ज्ञानवान या संयमवान है । यह ज्ञान अथवा संयम अर्थ में चैत्य शब्द का प्रयोग हुआ है, कहीं बगीचे के लिए भी शास्त्र में चैत्य शब्द आया है ।

उपासकदशा में तीर्थंकरों के साधुओं के लिये चैत्य शब्द का उपयोग हुआ है । वहाँ कहा गया है कि आनंद श्रावक प्रतिज्ञा करता है कि अन्य तीथियों के धर्म को अंगीकार कर लेने वाले भूतपूर्व जैन साधुओं को भी मैं आदर सत्कार वंदन नमस्कार नहीं करूँगा; उनके साथ आलाप-संलाप वार्तालाप भी नहीं करूँगा । इस प्रकार **चैत्य** शब्द अनेक अर्थों में शास्त्रों में प्रयुक्त हुआ है और अनेक जगह स्वार्थवश ढरें धर्म वालों ने कुछ कुछ प्रक्षिप्त करके भी चैत्य शब्द वाले पाठों को विकृत बना दिया है । पुरानी प्रतियों से मिलान करने पर कई जगह उनके वैसे कुकृत्यों का भंडाफोड भी हो जाता है ।

फिर भी ये लोग बडी शान से यह घोष करते है कि शास्त्र में ए क अक्षर भी घटाना बढाना महापाप और अनंत संसार बढाने वाला है। किन्तु यह घोष केवल दूसरों को शिक्षा देने के लिये है । वह भी इसलिये कि उनके विकृत किये हुए उन पाठों को कोई सुधार न दे अर्थात् जैसा शास्त्र पाठ है वैसा रहने दो उसका एक अक्षर भी हीनाधिक मत करो । उनका यह कथन मानो चोरों का सच्चा बनने का और अपनी चोरी को





सुरक्षित रखने का अच्छा उपाय है कि चोरी को महान अपराध कहते जाना, चोरी नहीं करने का उपदेश भी देते जाना और खुद यथेच्छ चोरियां करते जाना।

**जिज्ञेश-** राजप्रश्नीय सूत्र के सूर्याभ वर्णन में देवलोक में भगवान महावीर और ऋषभदेव की मूर्तियाँ है न ?

**ज्ञानचन्द्र-** यह भी उक्त चोरियों के कर्तव्य का एक ज्वलंत प्रमाण है । उपर बताया जा चुका है कि देवलोक की मूर्तियाँ अनादि है कभी किसी के द्वारा बनाई हुई नहीं होती है और वह किसी भी व्यक्ति या तीर्थंकर की नहीं हो सकती । ऋषभ और महावीर तो अब हुए हैं जबकि देवलोक और वहाँ की मूर्तियाँ तो अनंता अनंत उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालचक्र से शाश्वत बनी हुई है उसमें भगवान महावीर और ऋषभ कैसे प्रविष्ट हो सकते हैं । वास्तव में यह मूर्खों को उल्लू बनाने वाली बात है ।

राजप्रश्नीय सूत्र में १०८ मूर्तियों का वर्णन है वहाँ उनका कोई नाम नहीं कहा गया है । किंतु वहीं पर एक स्तूप के चौतरफ की चार मूर्तियों का जो प्रश्नगत पाठ है वह ऐसी उक्त चोरियों के प्रताप का है और उसी में वर्तमान चार तीर्थंकरों के नाम घुसायें गये हैं । इस बात का स्पष्टीकरण निबंधमाला भाग-२ पृष्ठ १४५ पोइन्ट नं. १३ में देखें।

**जिज्ञेश-** देवलोक के इन मूर्तियों स्थानों को जिनालय क्यों कहा है ?

**ज्ञानचन्द्र-** जिस तरह चैत्य शब्द के विविध अर्थ होते हैं वैसे ही जिन शब्द के भी अनेक अर्थ होते हैं जिससे 'जिन' शब्द में अनेक जाति के देवताओं का भी ग्रहण हो जाता है ।

प्रमुख बात तो समझने की यह है कि इन शास्वत स्थानों को जिनालय कहो या सिद्धायतन कहो ये किसी भी विशिष्ट व्यक्ति के नहीं होते, या कभी किसी के द्वारा बनाये नहीं जाते, अत: इन्हें किसी भी संसार से मुक्तिगामी तीर्थंकर आदि से जोड़ना तो अज्ञानता का ही सूचक है ।

**जिज्ञेश- जिन** शब्द के अनेक अर्थ है किन्तु **सिद्ध** शब्द के तो अनेक अर्थ नहीं किए जा सकते । तो उन अनेक शास्वत स्थानों में सिद्धायतनों का वर्णन क्यों आता है ? जैसे कि देवलोकों में, पर्वतों पर, कूटों पर एवं तिर्छालोक में अनेक जगह ?

**ज्ञानचन्द्र-** जो सम्पूर्ण कर्म क्षय कर के मुक्त हो गये है, उन्हें सिद्ध कहते हैं । ऐसे सभी सिद्ध सादि अनंत होते है । प्रत्येक सिद्ध की आदि होती है । जबकि सिद्धायतनों में वर्णित मूर्तियाँ तो अनादि है । अत: वे किसी भी सिद्ध होने वाले व्यक्ति की नहीं है यह निश्चित है ।

अत: शाश्वत स्थानों में मूर्ति या सिद्धायतन का होना भी असंगत है । अर्थात् शास्वत स्थानों में किसी भी व्यक्ति की मूर्ति और उसका मंदिर तो हो ही नहीं सकता । क्योंकि कोई भी प्रसिद्ध व्यक्ति अनादि नहीं होता है । जबकि मूर्तियाँ और सिद्धायतन अनादि है । अत: बिना व्यक्ति की मूर्ति और सिद्धायतन कुछ भी अर्थ नहीं रखता है वह तो आकाश कुसुमवत ही होता है ।

वास्तव में शास्वत स्थानों और सिद्धायतनों का आपसी कोई तालमेल ही नहीं जमता । अत: ये सारे सिद्धायतन और उनका दिखावा, आडंबर, पूजा आदि वर्णन कभी भी मध्य काल में सूत्रों में प्रक्षिप्त किये गये हैं । विशेष ज्ञान हेतु देखें पुष्प २७ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र का सारांश परिशिष्ट-१ ।

**निबंध-२०**

## मुखवस्त्रिका बांधने संबंधी परिज्ञान

**जिज्ञेश-** मुखवस्त्रिका को बांधना और हाथ में रखना इस विषय में आगम आशय क्या है एवं वास्तव में प्राचीन पद्धति क्या थी ?

**ज्ञानचन्द्र-** इस विषय के वर्णन संबंधी मुख्य तत्व ये है-

**(१)** खुल्ले मुँह बोलना, मुखवस्त्रिका से मुख को ढके बिना बोलना, सावद्य भाषा है । इस प्रकार बोलना किसी भी साधु साध्वी को नहीं कल्पता है । इस तत्व में मंदिरमार्गी और स्थानकवासी एक मत है ।

**(२)** मुखवस्त्रिका यह साधु का आवश्यक उपकरण है इसका प्रयोजन जीव रक्षा का प्रमुख है और मुनि लिंग का भी इसे आवश्यक अंग गिना गया है । अचेल वस्त्र रहित रहने वाले साधुओं के भी मुखवस्त्रिका मुनिलिंग के रूप में स्पष्ट उपयोग में आती है और मुनिलिंग रूप में दिखती भी है ।

किन्तु मुख पर नहीं बांध कर हाथ में रखने वालों के वह रूमाल





रूप में दिखती है या चोलपट्टक में लटका दी जाने से कई बार दिखती भी नहीं है और अनेकों बार तो साधुओं को खोजने पर भी अपने पास मुँहपत्ति नहीं मिलती है तब वे चद्दर के पल्ले को मुखवस्त्रिका बना लेते हैं और मंदिरमार्गियों की साध्वियाँ भी अधिकतर चद्दर के पल्ले को हल मुखवस्त्रिका के स्थान पर मुख के सामने करके बोलती है यह स्पष्ट ही मुनिलिंग की उपेक्षा का कर्तव्य मुखवस्त्रिका मुँह पर नहीं बांधने से हो रहा है ।

**(३)** जीव रक्षा का और खुल्ले मुँह नहीं बोलने का जो भगवती सूत्र का सर्वमान्य एक मत सिद्धांत है उसका पालन भी मुखवस्त्रिका हाथ में रखने से नहीं हो सकता है । प्रमाण के लिये यह सत्य बात है कि आज ८००० करीब मुख पर मुँहपति नहीं बांध कर हाथ में रखने वाले साधु साध्वी है, इनमें से एक भी ऐसा उदाहरण रूप साधु या साध्वी नहीं है कि जिसने पूरे दीक्षा काल में कभी भी खुले मुँह नहीं बोला हो और भगवती के उस सर्वमान्य सिद्धांत का उल्लंघन नहीं किया हो । बस यह रिजल्ट ही साक्षीदार है कि मुखवस्त्रिका मुँह पर बांधने से ही सिद्धांत की सही रक्षा संभव है । अत: मुखवस्त्रिका को मुँह पर बांधना ही आगम सम्मत एवं आगम आज्ञा पोषक पद्धति है । और हाथ में रखना आगम आज्ञा भंजक प्रवृत्ति है यह उक्त रिजल्ट से स्वत: सिद्ध है ।

आज भी सेंकडों मंदिरमार्गी साधु और कई आचार्य **"खुले मुँह नहीं बोलना"** इसे स्वीकार करते है और इसका पालन नहीं हो सकने को अपनी कमजोरी स्वीकर करते हैं । फिर भी कई ढीठ तर्कबाज लोग यह भी कह देते हैं कि खुल्ले मुँह बोल गये इसमें पाप हो गया तो दिन भर खुल्ले नाक से श्वास ले रहे हैं न उसे कैसे रोकेंगे ?

यह केवल कुतर्क है क्योंकि विषय है खुले मुँह नहीं बोलने का, जिसे कि प्राचीन मंदिरमार्गी आचार्य अनेक ग्रन्थों में स्वीकार करते हैं और आज भी प्रत्यक्ष सैकड़ों साधु स्वीकार करते हैं ।

**(४)** मुखवस्त्रिका बांधने से समुर्च्छिम जीवों की हिंसा का कथन भी असंगत है । क्योंकि ये मंदिरमार्गी लोग थूक और पसीने में समुर्च्छिम जीव की उत्पत्ति होना अपने मन से ही मानते हैं । फिर भी उनसे जब यह पूछा जाता है कि ४-५ घंटे के गर्मी के विहार में तुम्हारे शरीर के पसीने

से चद्दर चोलपट्टे आदि वस्त्र तरबतर हो जाते हैं उनमें उन पाँच घंटों तक समुच्छिम जीव पैदा नहीं होते ? उत्तर में ये कहते हैं कि ये वस्त्र शरीर पर रहने के कारण शरीर की उष्मा में संलग्न रहते हैं इस कारण शरीर पर से हटाकर जब अलग रखेंगे, उसके एक मुहूर्त बाद ही समुच्छिम जीव उत्पन्न हो सकते हैं, किन्तु शरीर पर रहते हुए नहीं होते । इस पर उनसे कहा गया कि देखिये हमारी मुँहपति तो तुम्हारे चद्दर चोलपट्टे आदि वस्त्रों की अपेक्षा भी शरीर के ज्यादा निकट रहती है तो इसके लगने वाले थूक में शरीर की उष्मा के कारण जीव उत्पत्ति होगी क्या ? तो उत्तर मिलता है कि नहीं खोलकर रखने पर समुच्छिम जीव उत्पन्न होंगे एक मुहूर्त के बाद । तब उन्हें समझाया जाता है कि हमारे मुहपति बांधने से आगम सिद्धांत का पालन भी हो जाता है कि खुले मुँह नहीं बोलना और समुच्छिम जीव भी पैदा नहीं हुए । क्योंकि मुँह पर ही तो बंधी रहती है। शरीर की उष्मा से चद्दर चोलपट्टे के पसीने में जीवोत्पति नहीं होना मानने से यह भी मानना आवश्यक हो गया । किन्तु हाथ में रखने में समुच्छिम जीवों के उत्पन्न होने का भय भी निरर्थक ही रहा और बेधडक खुले मुँह बोलते जाने से जिनाज्ञा का भंग होना भी स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा । अत: आप मुँहपति नहीं बांधकर नुकशान में ही तो रहे, फायदा तो कुछ भी नहीं हुआ । उल्टा बार-बार हाथ को ऊंचा-नीचा करके कष्ट देना हुआ । जिसमें हाथ हिलाने की व्यर्थ की अयतना बढी और खुले मुँह नहीं बोलने की यतना भी पूरी नहीं हुई ।

**(५)** इसका मुखवस्त्रिका या मुहपति यह नाम ही स्पष्ट कह रहा है कि मुख पर रहने वाला वस्त्र ।

**(६)** यद्यपि मुखवस्त्रिका हाथ में रखना या मुँह पर बाँधना ऐसा एक भी स्पष्ट उल्लेख किसी भी आगम में नहीं है फिर भी इस लिंग के उपकरण के उपयोग की प्राचीन पद्धति मुँह पर बांधने की ही थी यह प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध है और शास्त्राज्ञा पालन के रिजल्ट से भी सिद्ध है । शास्त्राज्ञा पालन के रिजल्ट से सिद्ध होना तो उपर बताया जा चुका है । अब प्राचीन प्रमाणों से सिद्ध होना इस प्रकार है-

**१.** आवश्यक सूत्र पर हरिभद्रसूरि की २२ हजार श्लोक प्रमाण ठीका है उसमें लिखा है कि **"लिंग वास्ते मृत साधु के नई मुहपत्ति मुख पर**





**बांधना"** पाठक सोचे कि मरा हुआ साधु तो न बोलता है न मुँह खोलता है न श्वास लेता है फिर भी मुखवस्त्रिका बांधना मंदिरमार्गी धुरंधर आचार्य हरिभद्रसूरि ने कहा है ।

**२.** योग शास्त्र पृ. २६० में लिखा है कि मुख की उष्ण हवा से वायुकाय जीवों की विराधना होती है उसकी रक्षा के वास्ते मुहपति है । यह महान आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्य का बनाया ग्रन्थ है ।

**३.** ऐशिया टक सोसायटी कलकता के नेता मिस्टर बर्नल साहिब उपासक दशासूत्र की अंग्रेजी टीका करते हुए गौतम स्वामी की मुखवस्त्रिका के वर्णन पर ऐसा लिखते हैं-

A small piece of cloth suspended over the mouth to protect against entrance of any living thing.

**हिन्दी अनुवाद** – एक छोटा सा कपड़े का टुकडा जो मुँह पर लटकाया जाता था कोई सचित्त (संजीव) वस्तु मुँह में प्रवेश न कर सके, इस रक्षा के वास्ते ।

**४.** मंदिरमार्गी देव सूरी जी अपने समाचारी प्रकरण ग्रंथ में लिखते हैं-

**मुखवस्त्रिका प्रतिलेख्य मुखे बंध्वा प्रतिलेखयति रजोहरणं ।**

**अर्थ** – मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना करके मुँह पर बांध कर फिर रजोहरण की प्रतिलेखना करें ।

**५.** मंदिरमार्गी विजयसेनसूरी अपनी "हित शिक्षा शास्त्र" पृ. ३८ पर लिखते हैं –

**मुख बांधे ते मुखपति, हेठे पाटो धार ।**
**अति हेठे दाढी थई, जोतर गले निवार ।१।**
**"एक काने" ध्वज सम कही, खांधे पछेवडी धार।**
**केडे खोसी कोथली, न आवे पुण्य के काम ।२।**

इसका सार यहीं है कि मुहपति मुँह पर ही बांधनी चाहिये बाकी तो सभी विविध दूषित प्रकार है उसमें कोई पुण्य अर्थात् धर्म नहीं है ।

**६.** मंदिरमार्गी आचार्य श्री लब्धिविजयजी "हरीबलमच्छी के रास" पृ. ७३ में लिखते हैं कि-

**सुलभ बोधि जीवडा, मांडे निज षट कर्म**
**साधु जन मुख मुहपत्ति, बांधी कहे जिन धर्म ।१।**

यहां पर भी मुँह पर मुँहपत्ति बांधकर जिन धर्म का कथन करने वालों को साधु कहा है ।

**७. साधु विधि प्रकाश** में कहा है कि साधु प्रतिलेखना करते समय मुहपत्ति बांध ले ।

**८.** मंदिर मार्गी प्रभसूरि कृत **यतिदिनचर्या सटीक** में कहा है कि साधु शौच आदि जाते समय भी मुँहपत्ति बाँध ले ।

**९.** हेमचन्द्राचार्य कृत **योग शास्त्र** की टीका में कहा कि पढने के समय और प्रश्न पूछने के समय मुहपति बांधकर प्रश्नादि पूछे या पढावे ।

**१०.** मंदिर मार्गी द्वारा बनाये गये **शतपदी** ग्रन्थ में कहा है उपदेश देते समय भी साधु मुहपति को मुँह पर बांधे ।

**११. आचार दिनकर** मंदिर मार्गियों के बनाये ग्रन्थ में लिखा है कि मकान का प्रमार्जन करते समय और वाचना आदि कार्यो में भी मुँह पर मुहपति बांधे ।

**१२.** मंदिरमार्गी आचार्यों के बनाये **बृहत्कल्प भाष्य** में कहा है कि गणधर महाराज भी व्याख्यान वांचते समय मुँहपति बाँधते थे ।

**१३.** मंदिरमार्गियों के द्वारा बनाई **निशीथ चूर्णी** में लिखा है कि किसी के साथ वार्तालाप भी करे तो मुँहपत्ति बाँध लेनी चाहिए ।

**१४.** प्रतिक्रमण करते समय मुहपति बाँधना तो कई मंदिरमार्गी आचार्यों ने **प्रतिक्रमण के विविध ग्रन्थों के** प्रारम्भ में ही लिखा है ।

**१५.** मंदिर मार्गियों के द्वारा बनाये **प्रवचन सारोद्धार** ग्रन्थ में लिखा है कि मुहपति संपातिम जीवों की रक्षा के लिये है ।

**१६.** मंदिर मार्गी बुद्धिविजय जी ने अपने वृद्ध संतो से प्रश्न किया कि समय समय पर यों मुँहपति बांधते क्यों है ? तब वृद्ध संत ने उत्तर दिया की शास्त्रों में मुँहपति बाँधनी कही है और परंपरा से बाँधते चले आये हैं अतएव हम भी बाँधते हैं ।

**१७. शिव पुराण** में अध्याय २१ श्लोक २४ में जैन साधु का परिचय इस प्रकार लिखा है-

**हस्ते पात्रं दधानाश्च, तुण्डे (मुखे) वस्त्रस्य धारका ।**
**मलिना न्येव वासांसि, धारयंति अल्प भाषिणः ॥**

यहां पर मुख पर वस्त्र धारण करने वाले अर्थात् बाँधने वाले को





जैन साधु कहा है । अर्थात् शिवपुराण बनाने वाले को अपने समय में ऐसे मुखवस्त्रिका बाँधने वाले साधु दृष्टिगोचर हुए होंगे ।

**१८.** मंदिरमार्गी आचार्य श्री बुद्धि विजयजी अपनी बनाई 'मुँहपति चर्चा'' पुस्तक के पृष्ठ ३० पर लिखते हैं कि मैंने लाला मोहर सिंह जी से मुँहपति बांधने के बारे में सम्मति ली तो उन्होंने कहा कि यदि अब आप मुँहपति बांध लोगे तो आपकी बडी भारी हंसी होगी ।

पृष्ठ ६३ पर इसी पुस्तक में लिखा है कि मेरे सिवाय सभी संवेगी साधु मुँहपति बांधते थे । इन बुद्धि विजय जी के बेडेरे गुरुओं ने इनको जो उत्तर दिया था वह उपर पोइंट नं. १६ में लिख दिया गया है ।

पृष्ठ ७० से ७२ तक में यह लिखते हैं कि दसवें अचछेरे में असंयतियों की पूजा हुई है वह इस प्रकार है कि **''संवेगी नाम धरावेंगे ज्ञान का नाम रख कर भंडार भरावेंगे''** इत्यादि ।। अंत में संवेगियों का मत शास्त्र विरूद्ध है ऐसा कहा है ।

पृष्ट ४५ पर यह लिखा है कि इस पंचम काल में मुझे संयमी गुरु नहीं मिले यह मेरे पाप का उदय है । अतएव मेरे में भी संयम नहीं है ।

ये बुद्धि विजयजी और कोई नहीं थे स्थानकवासी धर्म छोडकर जाने वाले आत्माराम जी म.सा. ने इन्हें अपना गुरु बनाया था और गुरु ने जिनका नाम वल्लभविजय रखा था ।

**जिज्ञेश-** मुँहपति के मुख्य गुण क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र-** मुख्यतया तीन गुण इस प्रकार है-

**त्रिविधा गुणा संयुक्ता, लोकेटं मुखवस्त्रिका ।**
**प्रथमं जैन चिन्हं स्यात्, रक्षणं जीव सूत्रयो ।१।**

अर्थ- १. मुखवस्त्रिका जैन का चिन्ह है २. सूत्र पर पुस्तक पर थूक गिरने से रक्षा करने वाली है ३. वायुकाय एवं चौरेन्द्रिय जीवों (संपातिम जीवों) की रक्षा करने वाली है ।

इसके अतिरिक्त मुनि दर्शन करने के श्रावकाचार में पाँच नियम (अभिगम) शास्त्र में जगह जगह बताये हैं उनमें भी मुनियों की सेवा में पहुँचने पर खुले मुँह से श्रावक को रहना मना किया है अर्थात् मुँह पर कपड़ा लगाकर ही मुनि सीमा में प्रवेश करना बताया है ।

बडे-बडे सेठ सेनापति राजा आदि भी जो श्रावक होते वे शास्त्राज्ञा

का पालन करते एवं वस्त्र लगाकर ही मुनि की सेवा में प्रवेश करते थे।

इससे एक गुण यह स्पष्ट होता क मुँहपति लगाने से सम्मुख रहे श्रमणों के पास बोलने पर अपना थूक उन पर नहीं पडे । खुले मुँह ढीठता पूर्वक बोलने वाले और जिनाज्ञा की मर्यादा का लोप करने वाले साधु और श्रावकों के मुख से थूक उछल कर कई बार श्रमणों पर पडता है जिससे गुरु की आशातना लगती है । ये मंदिर मार्गी लोग निष्प्राण मूर्ति की आशातना से बचने के लिये तो मुँह बांध कर मौन पूर्वक पूजा करते हैं किन्तु शास्त्राज्ञा भंग करके भी गुरुओं के सामने आते समय मुँह पर वस्त्र बांधने से शर्म का अनुभव करते हैं और कई स्थानकवासी लोग भी आलस्य वश ऐसा करते हैं वह भी ठीक नहीं है । अपने नियमों और विधि विधानों का हर क्षेत्र में ध्यान रखना ही चाहिये ।

**निबंध-२१**

## मंदिर मूर्ति पूजा विरूद्ध आगम प्रमाण

**जिज्ञेश-** मुखवस्त्रिका के समान मूर्ति मंदिर के सम्बन्ध में भी कुछ प्रमाण बताइये ।

**ज्ञानचन्द्र-** निर्ग्रन्थ प्रवचन अहिंसा प्रधान एवं दया प्रधान है इसमें किसी भी प्राणी की हिंसा करना या हिंसा कार्य को धर्म कह देना, कभी भी संभव नहीं हो सकता है । इस धर्म के धारक श्रमण गणधर तीर्थंकर आदि सभी साधक, हिंसा करने, कराने या अनुमोदन करने के अर्थात् प्रेरणा करने के और उस हिंसा को भला जानने के भी पूर्णतया त्यागी होते हैं। यह त्याग उनका जीवन भर के लिये होता है । इसे ही जीवन भर की सामायिक कहते हैं ।

ऐसे जैन श्रमण निर्ग्रन्थ हिंसा में धर्म नहीं कह सकते, न ही किसी प्रकार के हिंसाकारी कार्यो की प्रेरणा कर सकते । अतः मंदिर मूर्ति बनाना और फूल पानी अग्नि के आरंभ (पाप कार्यो) से द्रव्य पूजा करना, कोई भी जैन श्रमण तो कह नहीं सकता और ऐसा कहने और प्रेरणा करने वाला, महाव्रतधारी जैन श्रमण नहीं रहता । केवल द्रव्य वेशधारी जिनाज्ञा का चोर और संयम मर्यादा का भंजक हो सकता है ।

**१.** दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ६ में कहा है कि-





**सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मीरज्जिउं ।**
**तम्हा पाणिवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥**

**अर्थ -** संसार के छोटे बडे समस्त जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहते हैं । इसलिए किसी जीव की हिंसा करना घोर पाप है । श्रमण निर्ग्रन्थ इस हिंसा का पूर्णतया त्याग करते हैं ।

**२.** आचारांग सूत्र में कहा है कि भूत भविष्य के सभी तीर्थंकर यही निरूपण करते हैं कि-**सव्वे पाणा, सव्वे भूया, सव्वे जीवा, सव्वे सत्ता ण हतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा, ण किलामेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा, एस धम्मे धुए, सुद्धे, नितिये सासए, सम्मिच्च लोयं खेयन्नेहि पवेइए ।**

**भावार्थ-** पृथ्वी पाणी हवा अग्नि वनस्पति एवं त्रस जीव इत्यादि समस्त सांसारिक जीवो में से किसी को भी कष्ट आदि नहीं पहुंचाना चाहिए एवं प्राणों से रहित नहीं करना चाहिए । यही अहिंसा प्रधान शुद्ध शास्वत धर्म सर्वज्ञों ने जीवों के खेद-दुःख को जानकर बताया है ।

**३.** प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है- **सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठाए भगवया निग्गंथं पावयणं सुकहियं । अर्थ-** भगवान ने धर्मोपदेश क्यों दिया ? इनका समाधान यहाँ पर है कि सर्व जगत के चराचर जीवों की रक्षा एवं दया अनुकंपा के लिये ही भगवान ने निग्रन्थ प्रवचन का प्ररूपण किया ।

**४.** आचारांग सूत्र में कहा है कि उपस्थित परिषद को श्रमण यह उपदेश देवे, यथा- ***संतिं, विरतिं, उवसमं, निव्वाणं, सोयं, अज्जवियं, मद्दवियं, लाघवियं, अणईवत्तियं ।***

**अर्थ -** १. आत्म शांति की प्राप्ति २. वैराग्य ३. उपशांति ४. मुक्ति ५. हृदय की पवित्रता ६. सरलता ७. नम्रता ८. हल्कापन आश्रव और परिग्रह से या अहं भाव से ९. अहिंसा धर्म । ऐसे आत्म विकास के विषयों पर उपदेश देना चाहिये किन्तु यहां मंदिर मूर्ति बनाने का या पाप प्रवृति युक्त द्रव्य पूजा का उपदेश देना, कहीं भी नहीं का गया है ।

**५.** प्रश्न व्याकरण सूत्र में प्रथम आश्रव द्वार में कहा है कि चैत्य और देवालय अर्थात् मंदिर बनाने में जो पृथ्वी, पानी, अग्नि आदि जीवों के हिंसा करते हैं वे मंद बुद्धि वाले हैं अर्थात् अज्ञानी, भोले, मूर्ख प्राणी है।

**६.** सूयगडांग सूत्र के दूसरे अध्ययन में कहा है कि-

**तिविहेण वि पाण मा हणे, आयहिए अजियाण संवुडे ।**
**एवं सिद्धा अणंतसो, संपइ जे य अणागयावरे ॥**

भावार्थ- आत्महित गवेषक संवृत अणगार तीन करण, तीन योग से किसी भी प्राणी की हिंसा न करें । ऐसा शुद्ध अहिंसक आचरण करने से ही तीनों काल में सिद्ध होते हैं अर्थात् हिंसक कार्यों वाली मूर्ति पूजा आदि के कराने से मुक्ति नहीं हो सकती ।

**७.** उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन आठवें में कहा है कि-

**ण हु पाणवहं अणुजाणे, मुच्चेज्ज कयाइ वि सव्वदुक्खाणं ।**

अर्थ - प्राणी हिंसा का अनुमोदन भी करने वाला अर्थात् हिंसा जन्य कार्यों को भला भी समझने वाला, कदापि अर्थात् तीन काल में मोक्ष नहीं जा सकता, समस्त कर्मों से मुक्त नहीं हो सकता है, वह संसार में ही भ्रमण करता रहता है ।

**८.** भद्रबाहु स्वामी ने चन्द्रगुप्त राजा के १६ स्वप्नों के फल में चौथे पाँचवें स्वप्न का फल इस प्रकार बताया है-

***दुवालस वास परिमाणो दुकालो भविस्सई । तत्थ कालिय सुय पमुहा वोच्छिज्जिस्सइ । चेइयाइं ठव्वावई । दव्वाहारिणो मुणि भविस्सइ । लोभेण मालारोहण, देवल उवहाण उज्जमण, जिण बिम्ब पइट्ठावण विही उम्माइयेहिं बहवे तदप्पभावा पयाइस्संति अविय पंथे पडिस्सइ । कुमइजणा परंपरागम्मेण बहिया सच्छंद चारिया सयमेव सजमिया भविस्सहं ।***

**अर्थ** - इस स्वप्न का फल यह है कि १२ वर्ष का दुष्काल पडेगा, जब सूत्र ज्ञान व्यवछिन्न होगा, तब जैन साधु संयम मार्ग की भगवदाज्ञा को छोडकर मंदिर बनवायेंगे, धन इकट्ठा करने कराने वाले बनेंगे । अति धन लोभी होकर मालारोहण आदि महोत्सव करेंगे उपधान तप का उजमणा करेंगे । जिनेश्वर की मूर्तियों को प्रतिष्ठित करवायेंगे । ऐसे बहुत से कार्य करके अनेक साधु तप संयम से भ्रष्ट होकर धर्म से विपरीत मार्ग में पड जायेंगे । अर्थात्- सभी साधु ऐसा नहीं करेंगे, कुछ आत्मार्थी मुनि इन प्रवृत्तियों से निरपेक्ष भी बने रहेंगे ।

इस स्वप्न फल से भद्रबाहु की भाषा से ही स्पष्ट हो गया कि उस समय मंदिर मूर्ति जिनेश्वरों की नहीं थी तभी कहा कि स्वप्न के कुप्रभाव





से ऐसा करके वे साधु कुमार्ग में पडेंगे । यह १६ स्वप्नों का ग्रन्थ भी मूर्तिपूजक श्रमण श्रद्धा से भद्रबाहु का मानते हैं ।

इससे स्पष्ट है कि भद्रबाहु के समय मूर्तिपूजक धर्म नहीं था। स्थानकवासी मान्य सत्य आगमिक धर्म ही पहले था । मंदिर मार्गी धर्म बाद में उत्पन्न हुआ उसे भी भद्रबाहु ने कुमार्ग कह दिया है और तप संयम से भ्रष्ट होना भी कह दिया है ।

यहां मूर्तिपूजकों का ही ग्रन्थ और उनके महा पूजनीय भद्रबाहु का बनाया और उन्हें ही कुमार्गी बता रहा है, स्वप्न फल के नाम से।

भद्रबाहु के शब्दों का आशय स्पष्ट है कि आगे कभी १२ वर्षी दुष्काल पडेगा जब मंदिर मूर्ति की स्थापना होगी और तभी मूर्ति पूजा चलेगी ।

अतः ये मंदिरमार्गी कितने ही झूठे शिलालेख लिख कर गाड देवें और लाखों वर्ष पुरानी शंखेश्वर पार्श्वनाथ की मूर्ति का ढोंग रचा दें या महावीर स्वामी के जीवित अवस्था की मूर्ति और मंदिर होने का काव्य तुक रच कर प्रचार कर देवें, उससे कुछ भी सार निकलने वाला नहीं है ।

**अब आगे इन्हीं मंदिर के पुजारियों के एक सूत्र का और प्रमाण देखे कि रूई लपेटी आग कब तक दब सकती है, कितनी फैलती है वह आग ।** वैसे ही इनका अपने आप में खोटे प्रमाणों से सच्चा बनना इनके शास्त्रों से इनके ही शब्दों से भारी पड रहा है केवल खोटी सेखी लगाना बन रहा है-

**९.** महानिशीथ सूत्र में मूर्ति पूजा करने वालों को अनंत संसार में भ्रमण करने वाला बताया है वह पाठ इस प्रकार है-

***एत्थं च गोयमा केइ अमुणी समयप्पभावे उसण्णविहारी णिइयवासिणो अदिट्ठ-परलोय-पच्चवाए सयं मई इड्ढि-रस-गारवाइ मुच्छिए राग दोष मोह अहंकार ममीकाराइ सपडिबद्धा, कसिण संजम सद्धम्मे परम्मुहा निद्दय नित्तंस निग्घिण अकलुण निक्किव एगंतेणं पावायरण अभिनिदिट्ठबुद्धि अइचंड रोद्द कूराभिगाहिए मिच्छदिट्ठी कय-सव्व-सावज्ज- जोग-पच्चक्खाण-विप्पमुक्का से संघारंभ परिग्गाहे तिविहेण पडिवन्ना सामाइये य दव्वत्ताए, न भावताए नाममेव मुंडा अणगारा महव्वयधारी समणे विभविताणा एवं मण्णमाणा य सव्वहा उम्मग्गं पव्वतंति । तहा किल अम्हे अरिहंताणं भगवंताणं गंधमल्ल-***

***पदीव-सम्मज्जण-उवलेवण, विचित्त वत्थ बलि धूवाइयेहिं पूयासक्कारेहिं अणुदिया-महभवण पकुव्वमाण तित्थथवणं करेइ ।***

**तं णो णं तहत्ति गोयमा समणुजाणेज्जा**

**प्रश्न–से भयवं केणट्ठेण एवं वुच्चइ, जहाणं- तं च णो णं तहत्ति समणुजाणेज्जा?**

**उत्तर- गोयमा ! तदवत्थणुसारेणं असंजम बहुलेण च मूल कम्मासवं, मूलकम्मासवाओ य अज्झवसायं पडुच्च महोयर सुहासुह कम्मपडियडिबंधो, सव्व-सावज्जाणँ विरयाणं वयभंगो, वयभंगेणं च आणाइक्कमं, आणाइकम्मेणं तु उम्मग्ग-गामीतं, उम्मग्गगामितेणं च समग्गापलायणं, उम्मगगा पवत्तणं, समग्गा विलोयणेण महति आसायणा, तेओ अनंत संसार हिंडणं ।**

**एएण अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चई जहाणं गोयमा ! णो णं तहत्ति समणुजाणेज्जा ।**

**भावार्थ-** इस जिन शासन में हे गौतम ! कई श्रमण काल प्रभाव से शिथिलाचारी हो जाएंगे । वे परलोक के दु:खों को नहीं देखेंगे । वर्तमान सुखों में ही आसक्त रहेंगे । कल्प मर्यादा का पालन नहीं करेंगे । राग द्वेष मोह अहंकार और मेरा-मेरा(ममत्व) करने लग जायेंगे । संपूर्ण संयम धर्म से मुख मोड लेंगे ।

वे सावद्य योगों (पापकार्यों) का पच्चक्खाण करके भी उसे छोड देने वाले होंगे । संघ निकालने रूप आरंभ को ग्रहण कर लेंगे अथवा अनेक प्रकार के आरंभ परिग्रह करने वाले होंगे । तीन करण तीन योग से पाप त्याग रूप प्रतिज्ञा ग्रहण करके भी भाव सामायिक चारित्र में नहीं रहेंगे, केवल द्रव्य सामायिक में रहेंगे । वे केवल नाम मात्र के मुंडित अणगार या महाव्रतधारी होंगे । अपने आप हम साधु है ऐसा कहते हुए और मानते हुए भी उन्मार्ग में पड जाएंगे ।

ऐसा करते हुए भी फिर वे हमारी तीर्थंकरों की चंदन आदि से, मालाओं से, दीपक जलाकर, विचित्र वस्त्र बलि धूप आदि से पूजा करेंगे, ऊंचे ऊंचे मंदिर बनाकर तीर्थ स्थान बनायेंगे, ऐसे उन लोगों के कर्तव्यों की हे गौतम ! अनुमोदनना भी नहीं करनी, उनके कर्तव्यों को भला भी नहीं जानना चाहिये ।

**प्रश्न-** हे भंते ! ऐसा क्यों कहा कि उनके कर्तव्यों को भला भी नहीं जानना ।

**उत्तर-** हे गौतम ! उस प्रकार के असंयम प्रमुख कर्तव्यों से संसार मूलक





कर्मों का आश्रव होता है, उन आश्रवों और अशुभ अध्यवसायों से शुभाशुभ महान कर्मों का बंध होता है । संपूर्ण सावद्य योग के त्यागियों का व्रत भंग होता है । व्रत भंग होने से भगवदाज्ञा का उल्लंघन होता है और वे उन्मार्गगामी बनकर सन्मार्ग से भ्रष्ट होते हैं, जिससे वे महान आसातना के भागी बनकर **अनंत संसार में परिभ्रमण** करते हैं ।

इसलिये हे गौतम ! ऐसा कहा कि उन असाधुओं की प्रवृतियों को भला भी नहीं जानना चाहिये ।

**इस प्रकार मंदिर मार्गियों के माने हुए ४५ आगमों के इस महानिशीथ सूत्र में इनकी और इनके खोटे मत की कितनी दुर्दशा बताई गई है यह सहज समझ में आ सकता है ।**

यह अवश्य है कि इन्होंने इस सूत्र को अपनी श्रद्धा का केंद्र बना रखा है । फिर भी ऐसी सच्ची और इनका ही सत्यानाश करने वाली बातें इस सूत्र में होने से ये इसे छिपा छिपा कर रखना चाहते हैं क्योंकि पोल में ढोल ऐसे ही तो चल सकती है ।

इस प्रकार ये मंदिर मार्गी विद्वान जानते समझते हुए भी पक्षांध होकर दुराग्रह से ग्रसित होकर खड्डे में गिरने के काम करते ही जा रहे हैं और उसी में आनंद मानते हैं तथा भक्ति रस के बहाने भोले लोगों से यश कीर्ति सन्मान पाकर फूल रहे हैं जब कि इन्हीं के प्यारे और माने शास्त्र इनकी ही पोल खोल रहे हैं । किन्तु इन्होंने एक होंशियारी ओर कर रखी है कि भक्त जनों को शास्त्र पढने और देखने से महान भय बता कर कोसों दूर रख दिया है । जब वे अंध भक्त बने अपने शास्त्र देखे ही नहीं तो इन की होंशियारी पकड नहीं सकते । उनकी तो ऐसी दशा हो रही है कि-

**गुरुजी बैठा गप्पा मारे, चेला कहे सच्चा ॥**
**कान्या मान्यां कुरर, तूं चेला हुं गुरर ।**
**रुपयो नारियल धरर, चाहे डूब के तरर ॥**

**१०.** मंदिर मार्गियों के पूर्वाचार्य **कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्र आचार्य** ने योग शास्त्र पृष्ठ २८७ पर लिखा है कि-

स्नान मूर्तिपूजा आदि सावद्य कार्यों का उपदेश सूत्रकारों का उपदेश नहीं है और भद्रबाहु स्वामी ने तो स्वप्न फलों में कह ही दिया

कि १२ वर्षी दुष्काल के समय से मूर्ति पूजा चलेगी । ये दुराग्रही मंदिर मार्गी अपने ही पूर्वाचार्यों और अपने ही माने शास्त्रों और ग्रन्थों की बात हजम करते जा रहे और शर्महीन होकर कहते जा रहे है कि जैन धर्म में मूर्ति पूजा अनादि से है ।

**११.** मंदिर मार्गियों के पंच प्रतिक्रमण सूत्र के पृष्ठ ४५५ में लिखा है कि जैसे तीर्थंकरों के हो चुकने के बाद हमने जिनेश्वर देव की मूर्ति स्थापन करली है वैसे ही अब गुरु की अनुपस्थिति के लिए उनकी स्थापना कर लेनी चाहिये अर्थात् स्थापनाचार्य लकडी के डंडो का और कबडियों का बना कर उसमें आचार्य की स्थापना कर लेनी चाहिये ।

इस प्रकार इन मंदिर मार्गियों की बुद्धि पर तरस आता है कि जान बूझ कर पत्थर और धातुओं में भगवान को तथा लकडियों और कोडियों में गुरु को बिठाकर संतोष करते हैं । चाहिए तो यह था कि हृदय में ही भगवान और गुरु को बिठा लेना था तो इन लकडियों के संग्रह की और पत्थरों के पाप कार्यों की आवश्यकता ही नहीं पडती ।

**१२.** प्रश्न व्याकरण सूत्र में साधु के उपकरणों के नाम कहे गये हैं उसके विषय में इन मंदिर मार्गी आचार्यों ने **सम्यक्त्व सल्योद्धार** ग्रन्थ में उन उपकरणों के नाम लिखकर फिर कहा है कि-

**"जिस साधु के पास ये उपकरण नहीं हो और अन्य कोई भी उपकरण हो वह जैन साधु नहीं है ।"**

इन उपकरणों के नामों में डंडा डंडासण तर्पणी हत्थपत्ती(रूमाल) स्थापनाचार्य आदि नहीं कहे हैं, तो भी ये मंदिरमार्गी साधु साध्वी इन उपकरणों को मनमते रखने की परंपरा चला कर भी अपने को जैन साधु कहते हैं और फिर भी लिखते समय इनको भान ही नहीं रहता कि खुद की जंघा पर कुल्हाडी चलाने रूप हम यह क्या पागल पन कर रहे हैं? यही अज्ञानदशा और भवितव्यता है । उक्त पुस्तक को लिखने वाले महाशय है स्थानकवासी से पडिवाई होकर मंदिर मार्गी आचार्य बनने वाले श्री आत्मारामजी । जो कि धुरंधर विद्वान कहा कर पूजे गये है ।

**१३.** भद्रबाहु स्वामी ने आठवें स्वप्न के फल में कहा कि-**जत्थ जत्थ भूमिए पंच जिनकल्याणं तत्थ तत्थ देसे देसे धम्म हाणि भविस्संति ।**

**अर्थ-** जिन जिन स्थानों पर जिनेश्वर देवों का निर्वाण आदि हुआ है, उन





उन स्थानों पहाडों आदि पर धर्म की हानि होगी अर्थात् वहाँ पर संयम से पतित बनें शिथिलाचारी साधु लोग मंदिर मूर्तियां बनाकर महान पाप का कार्य छः काया के जीवों का आरंभ करवायेंगे । फिर पूजा प्रतिष्ठा आडंबर से हिंसा की वृद्धि करवायेंगे । इस प्रकार इन निर्वाण भूमियों में हिंसा करके धर्म माना जायेगा । इन अपेक्षाओं से जैन धर्म के सिद्धान्तों की और अहिंसा भगवती की अवहेलना होने से धर्म की हानि होने की भविष्यवाणी रूप स्वप्न फल जो भद्रबाहु स्वामी ने बताया, वह साकार हो रहा है । फिर भी ये मंदिरमार्गी लोग इसी हानि में भी धर्म की बुद्धि मान रहे हैं, यही इनकी अज्ञानता और मिथ्यापन है तथा निरंतर इसी दुराग्रह जाल में और अधिक फँसते ही जा रहे हैं ।

**१४.** मंदिर मार्गियों के बनाये **जैन तत्वादर्श** ग्रन्थ में पृ. ३८७ पर लिखा है कि-**पूजा कोटि समं स्तोत्रं ।**

अर्थ- करोड़ पूजा करने से जो फल होता है उतना ही फल एक बार स्तोत्र पढने से हो जाता है ।

पाठक जरा विचार करें कि एक मूर्तिपूजक भाई एक दिन में दो बार पूजा करे तो वर्ष में ३६०×२=७२० बार पूजा होगी और १०० वर्ष तक पूजा करे तो वर्ष में ७२०×१००=७२००० पूजा हुई । अर्थात् जिंदगी भर भी आज कोई पूजा करे तो भी एक स्तोत्र के फल के बराबर नहीं है । तब कौन मूर्ख होगा जो पानी फूल अग्नि के विविध आरंभ वाली पाप क्रियाओं से ओतप्रोत मंदिर मूर्ति पूजा कर आत्मा को भारी बनायेगा। एक बार के स्तोत्र पढने से उससे करोड़ गुणा लाभ कोई भी बुद्धिमान नहीं छोडेगा । छोडेगा तो वही कि जिसकी बुद्धि (सूअर के समान विकृत बन चुकी है जो उच्च शालि का भोजन छोडकर अशुचि की तरफ जाता है ।) उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन की पाँचवी गाथा में कहे अनुसार हो गई है ।

इस प्रकार जैन तत्त्वादर्श के मूर्तिपूजक लेखक ने मूर्ति पूजा को अति महत्त्वहीन बता दिया है । तब इनके कथन से मूर्तिपूजा नहीं करने वाले स्थानकवासी लाभ में रहे कि मूर्तिपूजा के विविध पाप अनुष्ठानों से भी बच गये और स्तोत्र आदि पढकर या नमस्कार मंत्र का जाप करके मूर्तिपूजा से करोडगुणा और क्रोडाक्रोड गुणा लाभ प्राप्त कर लेते हैं ।

मंदिर मार्गी भक्त लोग तो नुकसान का सौदा लेकर अपने ही आचार्यों के कथनानुसार महामूर्ख ही बने हैं । एक १० मिनट नमस्कार मंत्र के जाप से क्रोडाक्रोड गुणी पूजा के बराबर शुद्ध लाभ को छोडकर एक इकाई जितना लाभ और उसमें भी जीव हिंसा के विविध पापों के भागी बने ।ऐसे इन मूर्तिपूजक आचार्य आदि पर भी स्थानकवासी अनंत दया वर्षा कर इनके कल्याण और सदबुद्धि की आकांक्षा करते है क्योंकि मूल में है तो वे हमारे ही भाई अर्थात् दोनों के श्रधेय पिता तो भगवान महावीर स्वामी ही है ।

**१५. अज्ञान तिमिर भास्कर** ग्रन्थ मंदिर मार्गियों का बनाया हुआ है उसमें लिखा है कि- मूर्ति पूजा शास्त्रोक्त नहीं है इसी कारण हम ग्रन्थों का नाम लिखते हैं शास्त्रों का नहीं ।

**१६.** ये मंदिर मार्गी साधु अपने ग्रन्थों में आधाकर्मी दोष के सेवन करने को गाय का मांस खाने के बराबर कह देते हैं फिर भी गांव गांव में आधाकर्मी आहार फ्रूट्स और गर्म पानी लेकर निडर होकर खाते पीते हैं । गोमांस के उपमा की बात को लिखने वाले स्वयं ही भुला देते हैं ।

**निबंध-२२**

## शास्त्र पाठों में चोरियों का परिज्ञान

**जिज्ञेश-** क्या उपर कहे अनुसार शास्त्रों में पन्ने या शब्द आदि भी जैन साधु लोग पलटते रहते हैं ?

**ज्ञानचन्द्र- एक अंग्रेज** को उपासकदशा सूत्र का अंग्रेजी में अनुवाद करते समय किसी पाठ में उसे संदेह सा हुआ उसने अनेक प्रतिए देखी फिर निश्चय करके यह लिखा कि- संवत १६२१ और संवत १७४५ तथा संवत् १८२४ में लिखी हुई प्रतियों में केवल **चेइयाइं** इतना ही शब्द है और संवत् १९१६ और संवत् १९३३ में लिखी हुई प्रतियों में **अरिहंत चेइयाइं** ऐसा शब्द है । इससे यह स्पष्ट मालूम होता है कि संवत् १८२४ के बाद की प्रति में किसी ने भी यह शब्द प्रक्षिप्त किया है ।

प्रमाण के लिये सन् १८८८ में अर्थात् संवत १९४५ में छपी हुई अंग्रेजी की उपासक दशा की पुस्तक के पृ. २३ में नोट नं. १६ देख सकते हैं । इस पुस्तक के अनुवादक है- **ए.एफ. रोडाल्फ हारनल साहब पी. एच.डी.** यह पुस्तक आज से १४७ वर्ष पहले छपी है ।





पाठक सोचें कि एक अंग्रेज ने यह फैसला दिया है उसी से सिद्ध है कि, जब जिसको जो मन भाया शास्त्र में प्रक्षिप्त करने की चोरियां करते नहीं चूकता है । इस उपासक दशा में जो यह शब्द डाला गया है यह मंदिर मार्गियों के द्वारा अपने जैन मंदिर के पक्ष का आगम प्रमाण बनाने के लिये डाला गया है । **कैसे रंगे हाथ पकडे गये हैं ये चोर** । फिर भी **परोपदेशे पाडित्यं** की उक्ति चरितार्थ करके कहते रहते हैं कि- शास्त्रों में एक शब्द भी हीनाधिक करना महापाप है । महान संसार भ्रमण का कार्य है । यह घोष भी खुद की चोरी और धूर्तता की पॉलिसि को कोई हटा न दे इसके लिए है अर्थात् हमने अरिहंत शब्द डाला जो तो कुछ नहीं किन्तु अब जो निकालेगा उसे शास्त्र की और शास्त्रकारों की महान आशातना लगेगी और घोर संसार में पडेंगे । हां हम चोरों की आशातना लगेगी ऐसा तो ये नहीं कहते हैं, यही इनकी अपनी बुद्धिमानी और इमानदारी है ।

ऐसे ही कई प्रक्षेप इन लोगों ने स्वार्थ वश किये हैं, जो अन्वेषक बुद्धि वालों को ही समझ में आ सकता है । चाहे वह हिन्दु हो या अंग्रेज **जिन खोजे तिन पाइया, गहरे पानी पेठ** वह सही तत्त्व पा ही लेता है ।

खोटी पकडी परंपरा की पापमय विधिवाली मूर्ति पूजा के लिये ऐसे खोटे पाप करने पड रहे हैं । इसी वृत्ति से जगह-जगह **णमोत्थुणं** का पाठ भी लगा रखा है, कहीं मूर्तियों का वर्णन डाल रखा है, देवलोक के वर्णन में भी महावीर और ऋषभ नाम डाल रखा है, ऐसा तो मूल आगम पाठों में इन्होंने कर रखा है, तो ग्रन्थों में और टीका, चूर्णि, निर्युक्तियों में कहाँ क्या क्या डाला होगा इनकी करतूतों को तो भगवान ही जाने। अत: किसी भी प्राचीन आगम, ग्रन्थ या व्याख्याओं को पढने में समझने में उक्त अंग्रेज विद्वान के समान विवेक की आँखें खोल कर ही रखनी चाहिये । अंधे बने रहने में तो धूर्तों की धूर्ताई ही पल्ले पडने वाली है। क्योंकि- **जिनका जैसा पड्या स्वभाव जासी जीव सूँ ।**

साँच को कहीं आंच नहीं है, कोई न कोई मार्ग-उपाय मिल ही जाता हैं और झूठों को एक झूठ के लिए अनेक झूठ करने पडते हैं । फिर भी दुर्भाग्य से बुरी तरह फँस कर कभी कहीं पकडा ही जाता है । इसीलिए एक मंदिर मार्गी अन्वेषक विद्वान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है,

जिसका आशय यह है कि- **आज के उपलब्ध आगम सर्वज्ञ वाणी नहीं है, यह मानने की तो आवश्यकता नहीं है । तथापि उपलब्ध आगम का एक एक अक्षर सर्वज्ञ वाणी ही है इसमें किंचित भी किसी ने परिवर्तन नहीं किया या इतने लम्बे काल में कोई अक्षर कम ज्यादा नहीं हुआ ऐसा मानना भी सर्वथा अनुचित भी है तथा गणधर भगवंतों को और उनकी वाणी को दोषी ठहराने का ही कर्तव्य होता है । देखें - वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना ।**

यहाँ शास्त्रोद्धारक मूर्तिपूजक मुनिराज श्री पुण्यविजयजी ने अपने अन्वेषण अनुभव से गीतार्थ मुनियों को आगमों में भी विवेक बुद्धि रखने की सूचना की है । तब स्थानकवासी श्रमण यदि विकृत जैन साहित्य में और जैन अजैन धूर्तों की धूर्तता से अंकित आगम स्थलों में विवेक बुद्धि रखें और विवेक बुद्धि रखने की प्रेरणा करें, तो इसमें किसी भी प्रकार का अपराध क्या है ? फिर भी कोई अपराध माने तो यह उनकी स्वार्थपूर्ण अंधबुद्धि का प्रभाव ही है ऐसा मानना चाहिए ।

**निबंध-२३**

## बावीस अभक्ष्यों का परिज्ञान

**जिज्ञेश-** २२ अक्षभ्य के सम्बन्ध में क्या समझना चाहिए ?

**ज्ञानचन्द्र-** किसी भी साधु ने समुदाय ने त्याग बुद्धि से चलाये हो वहाँ तक तो ठीक है । क्योंकि जिनशासन में त्याग का तो विशेष महत्त्व है ही । किन्तु उनमें से किसी भी वस्तु के लिए एकांतिक सर्व व्यापक निषेध करना अनुचित है, साथ ही उन पदार्थों के विषय में कोई प्ररूपण आगम निरपेक्ष एवं आगम विरुद्ध करना तो सर्वथा अनुचित कर्तव्य है ।

२२ अभक्ष्यों के लिये भी ऐसे अनेक कर्तव्य हो रहे हैं अर्थात् आगम निरपेक्ष एवं आगम विरूद्ध खोटी प्ररूपणाए चल गई है । अतः यह त्यागवृत्ति मूलक २२ अभक्ष्य का विषय भी आत्मा को गुस्सा घमंड परापकर्ष निंदा कुतर्कों आदि के द्वारा खोटी प्ररूपणा और मन चाहा आगमों में प्रक्षेप करने के महापाप का भागी बना रहा है ।

इसमें मक्खन त्याग के साथ ऐसी फिजूल की बातें लगादी है, जो मूल आगमों से विरूद्ध है तथा निर्युक्तिकारों से भी विरूद्ध है ।





क्योंकि आगमों में अनेक जगह मक्खन साधु को लेने का विधान है और १० घंटे तक रखने का मौलिक आगम में विधान है । **परिठावणिया निर्युक्ति** में भी मक्खन लाने, खाने सम्बन्धी विवेक बताया गया है। अतः मक्खन सम्बन्धी एकांतिक खोटी मान्यता जो चलाई गई है वह अप्रमाणिक है और उसी कारण एकांत अभक्ष्य कहना दुराग्रह है ।

**जमीकंद** का भी एकांतिक आग्रह और प्ररुपण आगम विरूद्ध है आगम आचारांग में अचित्त लेने का विधान भी है । दशवैकालिक में सचित्त कंदमूल लेने का निषेध है ।

**द्विदल** के सम्बन्ध में दही संयोग से जीवोत्पत्ति मानने की परंपरा भी तर्क से असंगत एवं अप्रमाणिक है । क्योंकि कोई भी वस्तु के तत्काल विकृत होने और जीवोत्पत्ति होने का कायदा करना ही गलत है । जैसे कि मक्खन के लिये भी तत्काल जीवोत्पत्ति होने का किया गया कायदा आगम प्रमाण से गलत सिद्ध हो चुका है । उसी आगम प्रमाणों से यह निष्कर्ष है कि प्रत्येक चीज का स्वभाव और शुद्ध रहने की क्षमता अलग अलग होती है । क्षेत्र काल वातावरण भी उसमें सहयोगी होते है ।

उसकी परीक्षा का ज्ञान यह है कि उस वस्तु के वर्ण में गंध में रस में स्पर्श में अशुभ विकृति होने पर जीवोत्पति होने का स्वभाव हो सकता है, उसका कोई समय निर्धारित नहीं किया जा सकता किन्तु वातावरण, संयोग, विवेक आदि की तारतम्यता से उसके विकृत होने के समय में अंतर पडता है । **यथा-** गीला आटा सर्दी के दिन है तो १० घंटे भी खराब नहीं होगा, गर्मी के दिन है तो ४-५ घंटो में भी विकृति आ सकती है । किन्तु फ्रीज में रख दिया तो उसकी अवधि और बढ जाती है । उसी प्रकार मक्खन को पानी या छाछ के संयोग में रखने पर, गर्मी के मौसम में फ्रीज में रखने पर और बिना पानी छाछ के गर्मी में रखने पर, उसके अंदर विकृति आने के समय में अंतर पड जायेगा । इसी तरह सभी पदार्थों के लिये समझना चाहिये । जिसकी परीक्षा चखने से विकृत-अशुभ स्वाद लगें, सूंघने में विकृत अशुभ गंध आवे, स्पर्श रूप में लार बनती दिखाई दे या फूलण आ जावे इत्यादि तरीकों से खाद्य या पेय सामग्री की परीक्षा की जा सकती है और विकृति समझ में आने पर

ही उसमें जीवोत्पति का निर्णय किया जा सकता है । यह सब ज्ञान भी अनुभव चिंतन एवं विवेक बुद्धि तथा अभ्यास से प्राप्त होता है ।

शहद और मक्खन को महा विगय कहा गया है अतः इनका त्याग करना तो श्रेष्ठ ही है । किन्तु मद्य और मांस के आहार को आगम में नरकायु बंधने का कारण बताया है उसके समकक्ष अखाद्य अभक्ष्य तो इन शहद और मक्खन को नहीं कहा जा सकता ।

अन्य अभक्ष्य में रात्रि भोजन एवं अनेक वनस्पतियाँ है जिनके त्याग करने में लाभ ही है हानि का कोई प्रश्न ही नहीं है ।

सार यही है कि २२ और २२ से भी अधिक वस्तुओं का त्याग या त्याग की प्रेरणा करना श्रेष्ठ ही है किन्तु उसके स्वरूप कथन में आगम विपरीत अतिशयोक्ति युक्त कथन प्ररूपण नहीं होना चाहिये तथा भेड चाल या दृष्टि भ्रम भी नहीं होना चाहिये।जानकारी के योग्य ये प्रचारित २२ अभक्ष्य ये है—

१-५ बड, पीपल, प्लक्षु, उम्बर, कालुंबर इन पाँच के फल, बहुबीज एवं सूक्ष्म बीजी होने से । ६-९, शहद, मक्खन, मद्य, मांस, ये चार महाविगय है इनमें दो प्रशस्त है दो अप्रशस्त है । १०. बर्फ, ११. वर्षा में गिरने वाले ओले(गडे) १२. खड्डी मिट्टी १३. विष १४. रात्रि भोजन १५. द्विदल(कच्चा दही और द्विदल का संयोग) १६. रस चलित पदार्थ (विकृत रस होने पर दुर्गन्ध आने लग जाय । १७. तुच्छ फल १८. बहु बीज फल १९. अजाण फल २०. बेंगन २१. बोर नुं अथाणुं २२. अनंत काय.

**निबंध-२४**

## अनंतकाय के १२ लक्षण परिज्ञान

**जिज्ञेश-** अनंत काय का क्या मतलब है ?

**ज्ञानचन्द्र-** जिसमें एक छोटे से शरीर में अनंत जीव रहते हैं, प्रतिक्षण जन्मते मरते रहते हैं, वे अनंत काय के पदार्थ कहे जाते हैं।

**जिज्ञेश-** छोटे शरीर से क्या आशय है ?

**ज्ञानचन्द्र-** एक सूई की नोक पर आवे उतने अंश में असंख्य गोले (वृत) होते है, प्रत्येक गोले में असंख्य प्रतर होते हैं, प्रत्येक प्रतर में असंख्य शरीर





होते हैं और उस छोटे से प्रत्येक शरीर में अनंत अनंत जीव होते हैं ।

**जिज्ञेश-** ये अनंतकाय क्या कंद मूल ही होते है ?

**ज्ञानचन्द्र-** कंद मूल तो अनंत काय होते ही है, इसके अतिरिक्त भी अनेक अनंतकाय होते है । यथा- १. जहाँ भी जिसमें भी, फूलण(काई) होती है, वह अनंतकाय है ।

२. जिस वनस्पति के पत्ते आदि किसी भी विभाग में दूध निकलने की अवस्था है जैसे- आकडे का पत्ता, कच्ची मुगफली(सिंग) आदि ।

३. जो कोई भी हरी तरकारी या वनस्पति का हिस्सा तोडने से एक साथ **तट्ट** ऐसी आवाज करते टूटे और सम कट जाय जैसे भींडी ककड़ी आदि।

४. जिस वनस्पति को गोलाकार चक्कु से काटने पर उसकी सतह पर रजकण सरीखे जलकण हो जाय ।

५. जिस वनस्पति की छाल भीतरी तने से जाडी हो वह तना अनंतकाय ।

६. जिस पत्तों में नसें न दीखें ।

७. जो कंद और मूल भूमि के अंदर पक कर निकलते हैं ।

८. सभी वनस्पति की कच्ची जड़ें ।

९. सभी वनस्पति की कच्ची कौंपल ।

१०. कोमल एवं नसे न दिखने वाली पंखुडियों वाले फूल ।

११. भीगाये हुए धान्यों में तत्काल निकले हुए अंकुर ।

१२. कच्चे कोमल फल यथा- इमली आदि, मंजरी आदि ।

इत्यादि लक्षण वनस्पति के किसी भी विभाग में दिखते हो वे सभी विभाग अनंत काय होते हैं । विशेष जानकारी एवं प्रमाण के लिये पुष्प ९ का वनस्पतिज्ञान सम्बन्धी परिशिष्ट देखना चाहिए अथवा पन्नवणा सूत्र का अध्ययन करना चाहिये ।

कंद मूल के कुछ नाम इस प्रकार है-१. आलु २. रतालू ३. सूरण कंद ४. वज्रकंद ५. हल्दी ६. अदरक ७. कांदा (प्याज) ८. लसण ९. गाजर १०. मूला ११. अरबी १२. शकरकंद इत्यादि ।

**निबंध-२५**

## वासक्षेप प्रथा का परिज्ञान

**जिज्ञेश-** वासक्षेप क्या है क्यों डाला जाता हैं ?

**ज्ञानचन्द्र-** कल्पसूत्र कथित भगवान महावीर स्वामी का २००० वर्ष का

भस्मग्रह समाप्त होने पर जब पुनः शुद्ध धर्म अर्थात् स्थानकवासी धर्म चला । महान आत्मा श्री लोकाशाह द्वारा उस सत्य अहिंसा पूर्ण धर्म का जोरों से प्रचार बढने लगा । मंदिर मार्गियों का अपना प्रभाव कम पडने लगा तब उन्होंने लोगों पर मंत्रित पावडर (भुरकी) डालना शुरु किया ताकि जिसके शिर में यह पावडर डाला जाय, वह उन लोकाशाह के प्रभाव में न आ सके । किन्तु यह चमत्कार भी उनका ज्यादा कामयाब नहीं हुआ था । आधे से ज्यादा अर्थात् १५ लाख जैनी में से आठ लाख जैनी को उन्होंने शुद्ध धर्म से संलग्न कर दिया था । उस समय के उनके उपदेश का मौलिक विषय था जैन साधु का शुद्ध महाव्रत एवं आचार का स्वरूप बताना एवं व्यर्थ के पापकारी आडम्बरों का अर्थात् संघ निकालना, पूजा प्रतिष्ठा करना, मंदिर बनवाना आदि सावद्य सपाप प्रवृत्तियों का विरोध करना और "अहिंसा परमोधर्म" को साकार करना ।

अब तो यह वासक्षेप पावडर चंदन का चूरा आदि अच्छी अच्छी ४०-५० चीजों के पिष्ट मिश्रण से कुछ मंत्र जाप संयोग द्वारा तैयार किया जाता है और अब इसका उपयोग केवल भक्तों को खुश रखने के लिये या पैसा पटकवाने के लिये किया जाता है और भगत लोग अपने ऐहिक पारिवारिक सुख सुविधा की आशा लेकर डलवाते हैं । प्रायः सभी पदवी प्राप्त और संघाडा प्रमुख के पास यह रेशमी कपड़े का डिब्बा सरीखा पोटला वासक्षेप से भरा रहता है । ऐसा उक्त मंदिर मार्गी समुदाय में वह रिवाज है अन्य दिगंबर तेरापंथ या स्थानकवासी समुदायों में यह रिवाज नहीं है ।

**निबंध-२६**

## कयवलि कम्मा परिज्ञान

**जिज्ञेश-** आगमों में अनेक जगह ऐसा पाठ आता है कि- **कय वलि कम्मा** इसका क्या तात्पर्य है ?

**ज्ञानचन्द्र** - यह एक प्रकार का संक्षिप्त पाठ है । यथा- किसी विस्तृत वर्णन को संक्षिप्त में कहना हो तो उसके लिये आगमों में **वण्णओ** शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसी प्रकार आगमों में स्नान की विधि का विस्तृत वर्णन होता है वहाँ प्रश्नगत शब्द नहीं आता है किन्तु जहाँ पर भी स्नान की विधि का संक्षिप्त कथन किया गया है वहाँ उक्त **कय वलि**





**कम्मा** शब्द का प्रयोग किया गया है। अतः यह स्पष्ट होता है कि यह एक प्रकार का संक्षिप्त पाठ रूप संकेत शब्द है । इसका अर्थ है "अन्य भी संपूर्ण स्नान सम्बन्धी कर्तव्य किये । कय = किये, वलि = और भी अन्य, कम्मा = स्नान सम्बन्धी कर्तव्य विधि ।

यह उक्त शब्द प्रयोग का सही प्रयोजन-आशय है । किन्तु वलि के स्थान पर भ्रम से **बलि** पढ लिया जाता है और अर्थ बलिकर्म से जोड दिया जाता है । वास्तव में यह लिपि दोष और मतिभ्रम से चल पडा है । किन्तु स्नान की शास्त्रोक्त विस्तृत विधि में बलिकर्म नामक कोई वस्तु या विधि है ही नहीं । उदार बुद्धि से विचार करने पर समझ में आ सकता है कि स्नान और स्नान स्थल में कपड़े पहनने के पूर्व बलिकर्म का कोई सम्बन्ध संभव नहीं है । उसे वहाँ जोडना अविचारकता है ।

क्योंकि स्नान की संक्षिप्त विधि में बलिकर्म किया जाय तो विस्तृत विधि में कहा जाएगा । वहाँ तो अवश्य मिलना चाहिए किन्तु ऐसा वर्णन शास्त्र में है नहीं ।

यह उक्त भ्रम केवल "व" को "ब" पढने से चल पडा है । इसमें और कोई सूक्ष्म विचारणा की वार्ता नहीं है । शब्दार्थ और भावार्थ दोनों ही उपर दिये गये है ।

इस प्रसंग में भी विद्वान कहे जाने वालों की भेड चाल वृति आज तक रही है । नकल में अकल लगाने की स्टेज तक वे नहीं पहुँच पाये हैं। उन्होंने किसी न किसी तरह स्नान के समय बलि कर्म करने प्रवृति को समझाने की कोशिश की है । किन्तु सीधा और सरल चिंतन कोई भी नहीं कर सके कि बलि कर्म कब कहां होता है क्या कभी स्नान घर के अंदर बैठे बैठे भी बलिकर्म हो सकता है ? क्या वहाँ भोजन सामग्री या बलि की सामग्री लेकर बैठते हैं ?

अतः स्नान के साथ बलिकर्म नामक कोई तत्व नहीं जुड सकता है। **कय वलि कम्मा** यह स्नान विधि का सूचक संक्षिप्त पाठ है । ऐसा निःसंदेह मान्य करना चाहिये । ऐसा समझ लेने पर किंचित भी उलझन नहीं रहती है । एवं सूत्र पाठ का प्रसंगानुकूल उचित अर्थ भी समझ में आ जाता है ।

**निबंध-२७**

## तेरापंथ धर्म परिज्ञान : दया-दान परिज्ञान

**जिज्ञेश-** तेरापंथ धर्म क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र**– यह कोई पंथ या धर्म या सिद्धांत नहीं है यह तो स्थानकवासी ही है इनके आचार विचार सिद्धांत और आगम सब स्थानकवासी के ही प्राय: है । एक संप्रदाय में या एक गच्छ में अनेक साधुओं के अनेक विचार होते हैं जिससे अंतर और अलगाव हो जाते हैं । वैसे ही ये लोग कोई सामान्य से विचारों के कारण गुरु से अलग होकर विचरने लग गये हैं तथा इनकी अपनी संप्रदाय और अनुशासन व्यवस्था चल गई है । ऐसे तो मंदिर मार्गियों में भी अनेक संप्रदाय और अनेक विचार भेद अन्यान्य गच्छों में है । फिर भी तीन थूई, चार थुई, तपा, खरतर आदि सभी का धर्म तो मंदिर मार्गी ही कहलाता है । स्थानकवासियों में भी विभिन्न संप्रदायों में विभिन्न मान्यता हैं, फिर भी मौलिक सिद्धांत और आगम एक ही है । अत: स्थानकवासी धर्म तो एक ही है । वैसे ही स्थानकवासी से एक गच्छ समूह सामान्य विचारों से अलग विचरने लगा है जिसका नाम प्रसिद्ध हो गया है तेरापंथी समुदाय ।

यह समुदाय भी मंदिर मूर्ति पूजा आदि सिद्धान्त नहीं मानता है। आगम की मान्यता एवं प्रामाणिकता भी स्थानकवासीयों के समान ही मानता है । वेशभूषा में भी कोई खास परिवर्तन नहीं है । अत: यह एक स्थानकवासी समुदाय विशेष ही है । स्थानकवासियों के मुख्य सिद्धान्त मुहपत्ति बांधना और मंदिर मूर्तिपूजा धर्म को आगम सम्मत नहीं मानना यह मान्य करता है। जैसे श्वेताम्बर में से निकले स्थानकवासी श्वेताम्बर स्थानकवासी कहे जाते है वैसे ही स्थानकवासियों में से निकले तेरापंथी नाम धराने वाले ये संत भी स्थानकवासी तेरापंथी संत ही है ।

**जिज्ञेश**– इनके अलग समुदाय बनाने के विचार भेद प्रमुख क्या हुए ?

**ज्ञानचन्द्र**– आगम विषय के सूक्ष्म चिंतन में किसी पहलू के कथन करने की वाक्य शैली में और कुछ दृष्टिकोण में अंतर हो गया और चर्चा में तनाव हो जाने से कुछ साधु गुरु को छोड अलग विचरने चल दिये । ये विषय निम्न है – (१) जीवों की हिंसा नहीं करना यह धर्म है सो बराबर है किन्तु कोई जीव स्वत: मर रहा है किसी को कोई मार रहा है तो उसके बीच में जाकर छुडाना धर्म नहीं है (२) अन्न पुण्य आदि जो पुण्य बताये गये हैं उसमें यदि किसी भी जीवों की हिंसा होती है तो उसे एकांत पाप कहना, पुण्य नहीं कहना ।





छोटी सी बातें भी विवाद और विरोध में पड जाने से बढती रहती है । इस कारण ये तेरापंथ समुदाय स्थानकवासी से अपने आप को अलग मानने एवं कहने लग गये । वास्तव में वेशभूषा, आगम एवं मौलिकता एक होने से स्थानकवासी की एक स्वतंत्र समुदाय विशेष ही है । अलगांव होने से हीनाधिक समाचारी भेद हो जाना तो स्वाभाविक ही है ।

## दया-दान विचारणा :-

**जिज्ञेश**– ऐसा कहा जाता है न कि तेरापंथी दया दान को नहीं मानते?

**ज्ञानचन्द्र**– यह तो आग्रह में पड़ी बातें शब्दावली में अधिक रह जाती है किन्तु इनके भोजन या पानी में कोई मक्खी आदि गिर कर तडफने लगे तो ये भी तत्काल निकाल कर उसकी रक्षा करते हैं । गुरु से अलग होने के बाद भी वे साधु ऐसा करते ही थे एवं कभी किसी के जुएं पड जाती तो उन्हें भी अपना खून वे समय समय पर पिलाकर खून दान करते थे। दया और अनुकंपा तो सम्यक्त्व का लक्षण है वह कैसे कहाँ जा सकता है ? दान शील तप और भावना ये चार आत्म कल्याण के अंग है, इसमें भी दान प्रथम है ।

**जिज्ञेश**– कोई जीव स्वयं मर रहा या उसे अन्य कोई मार रहा है तो हम उसे नहीं बचावे तो हमारा क्या नुकशान है ?

**ज्ञानचन्द्र**– जिस तरह जैन साधु के स्वयं के गच्छ का या अन्य किसी भी गच्छ का परिचित या अपरिचित साधु पानी में बह रहा है और कोई साधु उसे देख लें और देखने वाले साधु को तैरना आता हो तो उसे निकालने की ठाणांग सूत्र में आज्ञा है अत: पानी और पानी के जीवों की हिंसा प्रत्यक्ष होते हुए भी इसे साधु का कर्तव्य आगम में बताया है ।

जब पानी में मरते हुए साधु को साधु बचा सकता है, आहार पानी में गिरे जीव(तिर्यञ्च) को किसी आगम में नहीं होते हुए भी साधु बचा सकता है, जूओं को अपना खून पिला सकता है; यह साधु का धर्म है । वैसे ही गृहस्थ मानव के द्वारा किसी मानव को या पशु को मरते हुए को बचाना यह उसका गृहस्थ का धर्म है ।

साधु को बचाने में नदी के त्रस स्थावर जीवों की प्रत्यक्ष हिंसा उस अनुकम्पा की प्रमुखता से गौण हो सकती है । जीवनभर जीने वाला

साधु भी गमनागमन क्रियाएँ करेगा, खायेगा, शौच जायेगा ।

उसी प्रकार मानव भी मानव की या पशु की रक्षा करते है उसमें भी जो कुछ प्रत्यक्ष या परोक्ष द्रव्य और भाव हिंसा संभव है वह भी अनुकंपा की प्रमुखता में गौण हो जाती है ।

यदि कोई व्यक्ति किसी के सामने फाँसी या जहर खाकर मर रहा या कोई किसी को मार रहा है उसे दूसरा व्यक्ति देखकर भी कोई प्रयत्न नहीं कर रहा है अथवा एक व्यक्ति चोरी कर रहा है दूसरा वहीं खड़ा देख रहा है कि मैं क्यों अंतराय का भागी बनू तो व्यवहार में वह भी अपराधी गिना जाता है । उसी प्रकार मरते या मारते जीव को अपनी क्षमता अनुसार देखते हुए भी मानव का कुछ प्रयत्न नहीं करना यह भी प्रत्यक्ष अनुकंपा भाव का हनन है ।

तीर्थंकर प्रभु अपने संयम भाव के सातवें गुणस्थान की स्टेज में जब लाखों करोड़ो का अनुकंपा दान दे सकते हैं तो उसे एकांत पाप तो नहीं कहा जा सकता है । जबकि उनके द्वारा दी गई सोना मोहर तो संसार के पाप कार्यों में ही काम आने वाली होती है। फिर भी दान का महत्त्व और लाभ समझ कर ही वे एक वर्ष देते हैं । तीर्थंकर प्रभु के द्वारा एकांत पाप की प्रवृत्ति धर्म भावना की प्रमुखता से करना संभव नहीं हो सकता है । अतः अनुकंपादान को एकांत हेय समझना उपयुक्त नहीं है ।

सूयडांग सूत्र के ग्यारहवें अध्ययन में ऐसे अनुकंपा दान के कार्यों को एकांत पाप कहने का स्पष्ट निषेध किया गया है और उसका कारण भी स्पष्ट कर दिया है कि उससे अंतराय कर्म का बंध होता है ।

आगम में स्पष्ट रूप से नौ प्रकार के पुण्य कहे हैं उनका निषेध नहीं किया जा सकता ।

प्रदेशी राजा ने धर्मी बनने के बाद दान शाला खोली जिसे केशी श्रमण ने निषेध करके बंद नहीं करवायी और शास्त्रकार ने भी धर्मी बनने के बाद के उस कार्य का कथन किया ।

दुष्ट एवं विधर्म फैलाने वाले गौशालक को लेश्या से जलते हुए को भी भगवान ने तत्काल बचा लिया । अपने उस कार्य को खोटा समझ कर कोई प्रायश्चित्त लिया हो ऐसा कथन भगवती में गणधरों ने नहीं किया ।





अतः विविध आगम प्रमाणों से एवं अन्य पहलुओं से यह स्पष्ट है कि किसी भी मरते प्राणी को बचाना अनुचित नहीं है, एकांत पाप या अधर्म भी नहीं है किंतु महापुरुषों से आचरित और आगमोक्त है ।विशेष जानकारी के लिए ब्यावर से प्रकाशित निशीथ सूत्र उद्देशा १२ के प्रथम सूत्र का विवेचन देखना चाहिये ।

**निबंध-२८**

## स्थानकवासी धर्म परिज्ञान

**जिज्ञेश-** स्थानकवासी धर्म कब चला किसने चलाया ?

**ज्ञानचन्द्र-** वीर निर्वाण के २००० वर्ष बाद लोकाशाह ने शुद्ध धर्म का पुनरूद्धार किया । वही शुद्ध धर्म स्थानकवासी धर्म के नाम से प्रचलित हुआ ।

कल्पसूत्र के अनुसार भगवान महावीर के मोक्ष पधारते समय उनके जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह का संयोग था जिसके फल से २००० वर्ष तक भगवान के शासन का अवनति में चलने का अर्थात् असंयति पूजा होने का कथन है । उस अवधि में धर्म के नाम से हिंसा, आडंबर अधिकाधिक बढता गया था और जैन साधु भी अधिकाधिक परिग्रह वृत्ति वाले एवं आगम विपरीत आचारण वाले बनते गये थे । अनेक प्रकार की कुरीतियाँ, दुष्ट और अन्यायपूर्ण प्रवृत्तियाँ भी जैन यति वर्ग में प्रविष्ट हो चुकी थी । शिथिलाचार एवं मनमाने प्ररूपणा भी चरम सीमा पर पहुँच चुके थे । ऐसे २००० वर्ष की समाप्ति के समय संयोग में लोकाशाह ने आगम सापेक्ष शुद्ध अहिंसा संयम प्रधान एवं आडंबर आरंभ-समारंभ रहित धर्म का उपदेश दिया एवं खोटे हिंसा परिग्रह मूलक रिवाजों का विरोध कर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं को पुनः शुद्ध धर्म के मार्ग में प्रेरित किया । इस प्रकार वीर निर्माण के २००० वर्ष बाद और अभी से ५०० वर्ष करीब पूर्व यह स्थानकवासी धर्म चला है । वास्तव में मध्यकाल में विकृत बने वीतराग धर्म का पुनरुद्धार मात्र हुआ है । आगमानुसार शुद्ध धर्म का पुनः जोर शोर से प्ररूपण एवं लक्ष्य हुआ है इस अपेक्षा से यह स्थानकवासी धर्म अपने सिद्धांत और प्ररूपण एवं लक्ष्य की अपेक्षा तो मौलिक वीतराग धर्म ही है, जो प्रारम्भ से तीर्थंकर के शासन का धर्म है । बीच में आई विकृति का भान(ज्ञान) कराकर उसे

हटाने रूप पुनरुद्धार के अनंतर यह स्थानकवासी नाम चल पडा है ।

**जिज्ञेश-** स्थानकवासी के मुख्य उद्देश्य क्या-क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र-** मध्यकाल में आई आगम विपरीत विकृति का त्याग करना, शास्त्राज्ञा के अनुसार ही संयम के महाव्रत समिति गुप्ति आदि नियमों का यथार्थ पालन करना । मंदिर मूर्ति बनाने की प्रेरणा न करना, मूर्तिपूजा को धर्म का अंग नहीं समझना, धर्म के नाम से आडंबर, आरंभ-समारंभ को प्रेरणा न देना, मुँहपत्ति मुख पर बांधना, आगम विपरीत कोई भी प्ररुपण नहीं करना, आगम विपरीत कोई भी उपकरण रिवाज रूप में नहीं रखना । धर्म के नाम से द्रव्य पूजा के चक्कर में नहीं आना । शास्त्र से अधिक या शास्त्र के समकक्ष ग्रन्थों को महत्त्व नहीं देना । मूर्तिपूजा के नाम से पृथ्वी, पानी, अग्नि, फल, फूल के एकेन्द्रिय जीवों का पाप नहीं करना, तीर्थ यात्राओं के लिए नहीं फिरना किन्तु केवल संयम पालन या धर्म प्रचार के लिए योग्य क्षेत्र में विचरण करना । चलते समय पूंजने में उपयुक्त हो इतना लम्बा रजोहरण रखना ।

ये सभी सिद्धांत तेरापंथ के और स्थानकवासी के एक सरीखे ही हैं । मंदिरमार्गी भी इन उक्त कई सिद्धांतों को सही मानते हैं किन्तु आचरण में गतानुगतिक परंपरा वाले ही ज्यादा बने रहते हैं ।

स्थानकवासी धर्म रूप वीतराग धर्म का पुनरुद्धार करने वाले लोकाशाह का जीवन परिचय आगे पुष्प २२ में दिया गया है ।

**निबंध-२९**

## महात्मा लोकाशाह का जीवन

| | | |
|---|---|---|
| जन्म गाँव | - | अरहट वाडा, जिला - सिरोही |
| माता-पिता | - | शेठ हेमाभाई, गंगा बाई |
| जन्म दिन | - | संवत १४८२ कार्तिक सुदी १५ |
| शादी | - | संवत १४९७ माघ, उम्र १५ वर्ष |
| परिवार | - | पत्नी-सुदर्शना, पुत्र-पूनमचन्द |
| धंधा | - | साहुकारी ब्याज |
| उसके बाद | - | अहमदाबाद के बादशाह ममंदशाह के पाटण में खजांची |





| | | |
|---|---|---|
| उसके बाद | - | बादशाह के पास अहमदाबाद में खजांची- सवंत १५०१ में |
| गुण | - | बुद्धिमान, ईमानदार, धार्मिक वृत्ति, अक्षर सुंदर |
| वैराग्य निमित्त | - | संवत १५०७ में **जमल खाँ** ने पिता ममंदशाह को जहर द्वारा मरवा दिया और अपना नाम कुतुबुद्दीन बदलकर खुद राजा बन गया । |
| दीक्षा | - | संवत १५०९ में श्रावण सुदी ११ शुक्रवार प्रथम प्रहर चौघडिया दूसरा । पाटण ग्राम में |
| गुरु सानिध्य | - | यति श्री सुमति विजय जी |
| दीक्षा नाम | - | लक्ष्मी विजय |
| गुरु सानिध्य | - | २२ वर्ष-(अध्ययन, चिंतन, विचरण, धर्मोपदेश) |
| क्रियोद्धार | - | संवत १५३१ अहमदाबाद- जवेरीवाड, नई दीक्षा स्वयंमेव अनेक साधुओं के साथ । उम्र ४९ वर्ष वीर निर्वाण २००१ में । |

**क्रियोद्धार निमित्त-** यति वर्ग की शास्त्र विरूद्ध आचार प्रणाली, श्री पूज्य, राज सन्मान, छडी चामर छत्र पालखी, म्याना आदि वाहन प्रयोग, पगल्या करना, नवांगी पूजा करवाना, पैसा लेना, ज्योतिष वैधक चिकित्सा आदि से राजा आदि पर प्रभाव रखना, राज कचहरी (सभा) में बैठना, उत्सूत्र प्ररूपणा, मूर्तिपूजा, उसके निमित्त का आरंभ (पाप क्रिया) महान आडम्बर एवं पाप वर्धक संघ निकालना, दोष युक्त गवेषणा रहित आहार पानी लेना अर्थात् निमंत्रण पूर्वक आधाकर्मी औद्देशिक आहार पानी आदि लेना ।

**क्रियोद्धार क्षेत्र-** अहमदाबाद पाटण गुजरात एवं परंपरा से संपूर्ण भारत।

**उपदेश विषय-** (१) श्रमण धर्म एवं आगम वर्णन (२) श्रमणोपासक जीवन बारह व्रत, १४ नियम, तीन मनोरथ, पाँच अभिगम, नैतिक जीवन, धर्म के प्रति एवं धर्म गुरुओं के प्रति कर्तव्य (३) शांति, विरति, विचारों की पवित्रता, सरलता, विनय, श्रद्धा, आगम ज्ञान, स्वाध्याय, तप, ध्यान, वैराग्यवृद्धि, निवृति, एवं दीक्षा भावना आदि।

**विरोध-** श्रमण शक्ति से, राज सत्ता से, परीषह उपसर्ग से, वासक्षेप से,

तदनंतर संवेग से अर्थात् किंचित आचार सुधार करके यति वर्ग ने अपना पुरजोर विरोध प्रदर्शित किया । एवं अंत में भिक्षा में विषयुक्त भोजन प्रदान कर उपसर्ग किया ।

**सफलता-** २२ बावीस वर्ष तक विशाल आगम अध्ययन का संयोग, चिंतन, मनन, श्रमणों साथियों का विचार मिलन, उत्साह प्रदर्शन, स्वतंत्र विचरण, प्रवचन, चर्चा वार्ता, विचारशील श्रावक समाज का संयोग, अनेक प्रमुख संघपति श्रमणोपासकों द्वारा शुद्ध धर्म स्वीकृति श्रद्धा ग्रहण, अल्प समय में ही करीबन आठ लाख की जन संख्या को शुद्ध जैन धर्म से भावित कर दिया । साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप चारों तीर्थ में ज्ञान गंगा प्रवाहित कर दी एवं धर्म की नई रोशनी प्रदान की। अंत में आराधक पंडित मरण को प्राप्त किया । पीछे विशाल चतुर्विध संघ का परिवार, धर्म प्रभावना के लिये छोड़ गये । जिसमें समय समय पर अधिकाधिक धर्मोत्थान प्रगतिशील होता रहा ।

**विकृत इतिहास-** मूर्तिपूजक यति वर्ग में अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये कोई भी पाप कृत्य कर सकने का दुस्साहस बहुत ही अभ्यस्त हो चुका था । खोटे लेखन प्रेक्षप आदि कर्तव्यों में उनका माहिरपना, इस इतिहास पारिशिष्ट के दोनों खंडों में प्रकट किया जा चुका है ।

इन लोगों ने कपट प्रपंच से जगह जगह पुस्तकों में, पन्नों में, शास्त्रों के पीछे लोकाशाह का जीवन अनेक प्रकार से विकृत रूप में किया । कहीं गुण वर्णन, कहीं विकृत तत्व लेखन, यों मिश्रित लेखन रखते गये । कहीं लहिया बताया, कहीं आगम चोरी, कहीं गृहस्थ जीवन ही बताया, कहीं लिख दिया कि मेरे नाम की संप्रदाय चलाओ तो मैं तुम्हे दीक्षित करता हूँ (खुद गृहस्थ में बैठे रहकर अपने नाम से साधुओं की समुदाय चलाने की अहंवृति दिखाना, लहियापन से आजीविका वृत्ति बताना, लूंका या लूंका मत चलाना आदि तुच्छवृत्ति के लक्षणों का तुच्छ शब्दों में आक्षेप करना, इस प्रकार अपनी परिपूर्ण शक्ति और बुद्धि से अनेक कर्तव्य विरोधी वर्ग ने किये हैं।

**सार-** मूर्ति पूजकों के मान्य कल्प सूत्र में ही बताया गया है कि निर्वाण के समय भगवान महावीर के जन्म नक्षत्र पर भस्मग्रह का संयोग था, जिससे जिन शासन अत्यंत अवनति पर चलेगा । उस भस्म ग्रह की





२००० वर्ष की स्थिति का संयोग हटने पर जिन धर्म उदितोदित होगा अर्थात् उसका शुद्ध धर्म के रूप में पुनरूत्थान होगा ऐसे इस निर्दिष्ट समय में ही लोकाशाह ने क्रियोद्धार किया था ।

मूर्तिपूजकों के मान्य महानिशीथ सूत्र में लिखा है कि हे भगवान। कुसाधु और शिथिलाचारी कब होंगे तो भगवान ने फरमाया हे गौतम! आज से १२५० वर्ष बीतने पर कुलिंगी शिथिलाचारी, साधु होंगे ।

इन दोनों सूत्रों के प्रकरण में लोकाशाह के क्रियोद्धार का संयोग वीर निर्वाण १२५० में नहीं किन्तु वीर निर्वाण २००१ में हुआ । सैंकड़ों वर्षों से चले आ रहे कुत्सित आचार एवं उत्सूत्र प्ररूपणा के सामने एवं राज्य सत्ता के पक्ष बल के सामने नई क्रांति लाने वाला एवं भस्मग्रह के प्रभाव के समाप्ति का श्रेय पाने वाला व्यक्ति कोई असाधारण पुरूष ही हो सकता है । उसे लहिया कह देना या गृहस्थ में बैठे बैठे ही साधुओं पर हुकुम चलाने वाला कह देना, लिख देना, यह मात्र कुबुद्ध करामाती, खोटे हत्थकंडे करने वालों का ही चमत्कार है । वास्तव में ऐसा विकृत तुच्छ जीवन, पतित धर्म का पुनरूत्थान कर धर्मोध्योत करने वाले एक क्रांतिकारी व्यक्ति का नहीं हो सकता है अतः निबंधगत उक्त परिचय बुद्धिगम्य एवं शास्त्रोचित भी है ।

यह परिचय संवत १६३६ पाटण नगर में वसंत पंचमी को लिखा गया है एक हस्त पुस्तक में मिला । संवत १९९१ में अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ **श्री जैन धर्म नो प्राचीन संक्षिप्त इतिहास अने प्रभु वीर पट्टावली** नामक पुस्तक पृष्ठ १६१ में । गुजराती भाषा में वह पुस्तक है । उसके आधार से हिन्दी भाषा में संपादन करके यहाँ प्रस्तुत किया है ।

**शिक्षा प्रेरणा :** आज स्थानकवासी श्रमण समुदाय शुद्ध उन्नत धर्मी होते हुए भी पुनः शिथिलाचार एवं मूर्तिपूजकता के कई रूपांतरों को स्वीकार करते जा रहा है । उसे अपने युग पुरूष जिन शासन की शान रखने वाले एवं सैकड़ों वर्षों से प्रविष्ट विकृतियों का शूरवीरता के साथ लोहा लेने वाले, महापुरुष लोकाशाह के जीवन कर्तव्यों का ज्ञान कर, आत्मा में नई जागृति नया जोश उत्पन्न कर, विकृतियों से सुरक्षित बनना चाहिए । अर्थात् नये नये शिथिलाचारों पर नियंत्रण रखना चाहिये । जिसके लिये

क्रियानिष्ट एवं कर्तव्यनिष्ट आचार्य उपाध्याय प्रवर्तक आदि पदवीधर ही नियुक्त करने चाहिये एवं साधु साध्वी समुदाय में आगम के अध्ययन अध्यापन की सुव्यवस्था को गतिमान करना चाहिये । अध्ययन एवं विचक्षणता आचार निष्ठता आदि अन्य पूर्ण योग्यताएँ प्राप्त किये बिना किसी को भी प्रमुख बन कर विचरण करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिये तथा अन्य भी किसी भी प्रकार की प्रमुखता उनके जिम्मे नहीं करना चाहिये । इस प्रकार ज्ञान एवं सुव्यवस्था से तथा शुद्धाचरण से जिन शासन की सही सुरक्षा की जा सकती है । आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि महात्मा लोकाशाह के जीवन परिचय का कंधे से कंधा मिलाकार प्रचार प्रसार किया जायेगा ।

(१) पन्द्रह वर्ष की उम्र में शादी ।

(२) सतावीस वर्ष की उम्र में दीक्षा ।

(३)४९ वर्ष की उम्र में पुनः दीक्षा एवं क्रियोद्धार ।

**निबंध-३०**

## शिथिलाचार प्रवृत्तियों का परिज्ञान

**जिज्ञेश-** संयम एवं भगवदाज्ञा से विपरीत मुख्य क्या प्रवृत्तियाँ जैन समाज में चल रही है अर्थात् वर्तमान युग की अत्यंत विकृत प्रवृतियों की परंपराएँ क्या-क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र-** जैन साधु समाज में शिथिलाचार से चलने वाली प्रमुख प्रवृत्तियाँ इस प्रकार है ।

१. एक दूसरे की परस्पर निंदा अवहेलना करना. २. तम्बाकू रखना सूंघना ३. मंजन तम्बाकू करना, पेस्ट करना. ४. मध्यम या बडी स्नान करना, ५. मैल परीषह किचित भी सहन नहीं करना. ६. बाल संवारना, दाढी बनाना. ७. विभूषा वृत्ति करना, प्रयत्न पूर्वक साफ सुथरा रहना, अति प्रक्षालन वृत्ति करना, ८. चप्पल जूते पहनना. ९. ठेला गाडी, डोली, व्हिल चेअर आदि से विचरण करना. १०. लाउडस्पीकर (माइक) में बोलना. ११. फोटो आदि खिंचवाना, रखना, वीडीओ कैसेट बनवाना. १२. बिजली पंखा का उपयोग करना. १३. नल का पानी उपयोग करना. १४. फ्लस संडास का उपयोग करना. १५. दैनिक समाचार पत्र पढ़ना. १६. चारों काल में स्वाध्याय नहीं करना. १७.





शास्त्र का कंठस्थ ज्ञान नहीं करना. १८. दिन में सोना. १९. साध्वियों से वस्त्र सिलवाना, वस्त्र प्रक्षालन, प्रतिलेखना, गोचरी आदि कार्य करवाना, उनके साथ आहार करना या आहार का लेन-देन करना, उनके साथ गमनागमन भ्रमण या विहार करना, अति संपर्क रखना. २०. गृहस्थों से सेवा लेना, काम करवाना, विहार में सामान उठवाना और उसे पैसा दिलवाना. २१. ऑपरेशन करवाना. २२. खरीदवा कर दवा आदि मंगवाना. २३. खरीदवा कर कपड़ा पात्र रजोहरण आदि मंगवाना अथवा क्रीतदोष वाले ये पदार्थ लेना. २४. चंदा इकट्ठा करवाना. २५. बैंकों में खाता रखना. २६. निर्माण कार्यों में भाग लेना, प्रेरणा करना, जैसे कि स्थानक, स्कूल, मंदिर, अस्पताल, बोर्डिंग, संस्था आदि. २७. अपने पास दवा रखना, २८. प्रतिलेखन प्रमार्जन नहीं करना. २९. प्रतिक्रमण नहीं करना. ३०. रात्रि में विहार करना या घूमने जाना. ३१. स्वयं नहीं उठा सके इतने उपकरण सामान आदि रखना. ३२. आधाकर्मी निमित का गर्म पानी या धोवण पानी लेना. ३३. आधाकर्मी आदि दोष युक्त आहार पानी लेकर आयंबिल करना. ३४. कोई भी जगह अपना सामान का भंडार रखना. संग्रह वृत्ति करना. ३५. टी. वी. (टेलीविजन) देखना. ३६. रेडियो का उपयोग करना. ३७. दर्शनीय स्थल देखने जाना. ३८. पत्रिकाएँ छपवाना. ३९. बेंड बाजों या जुलुस के साथ चलना. ४०. खुले मुँह बोलना. ४१. अपनी तपस्या का या जन्म आदि तिथियों के फंक्शन करना. ४२. शिष्यों को क्रम से आगमों की वांचना नहीं देना । अध्ययन अध्यापन की देखरेख नहीं करना, शिक्षित कर योग्य बनाने का प्रयत्न नहीं करना. ४३. साधु के द्वारा स्त्रियों का अति संपर्क करना या करने देना और साध्वी के द्वारा पुरुष का संपर्क करना या करने देना. ४४. बहुमूल्य उपकरण मालाएं आदि रखना गले में पहने रहना. ४५. भाषा का कोई विवेक नहीं रखना, योग्यायोग्य का विचार नहीं करना. ४६. सामने लाया हुआ या टीपन का आहार लेना. ४७. उतावल से चलना. ४८. बातें करते हुए चलना. ४९. यंत्र, मंत्र, तंत्र चिकित्सा आदि प्रवृत्तिएँ करना, निमित्त एवं शुभ मुहुर्त आदि गृहस्थों को बताना. ५०. दीक्षा वय श्रुत ज्ञान गंभीरता विचक्षणता आदि योग्यता प्राप्त किये बिना ही मुखिया बनकर अथवा अकेले होकर विचरण करना या करने देना.

५१. चिंतन जागृति युक्त प्रतिक्रमण नहीं करना अपितु नींद लेना, बातें करना. ५२. चाय, दूध, मेवे, फ्रूट्स आदि के लिये निमंत्रण पूर्वक या संकेत पूर्वक जाना. ५३. रात्रि व्याख्यान के लिये या शौच निवृति के लिये दूर जाना. ५४. प्रकाशन कार्य में भाग लेना. निबंध देना, पुस्तक छपाना अथवा छपाने के लिये पुस्तक लिखना ।

**जिज्ञेश-** शिथिलाचार की सही और संक्षिप्त परिभाषा क्या है ?

**ज्ञानचन्द्र-** (१) आगम विपरीत, भगवदाज्ञा विपरीत, प्रवृत्तियों को परंपरा रुप में आचरण करना, उसका प्रायश्चित्त नहीं लेना या प्रायश्चित्त लेने का संकल्प नहीं रखना, अकारण या सामान्य कारण से भी आगम विपरीत प्रवृत्ति करते रहना, यह सब शिथिलाचार है और ऐसी वृत्ति वाले को शिथिलाचारी जानना ।

(२) सकारण परिस्थितिवश हानि लाभ का विवेक रख कर, आगम विपरीत छोटा या बडा आचरण करना, उसे छोडने का और प्रायश्चित्त लेने का संकल्प रखना, उस प्रवृत्ति को ढर्रा या परंपरा रूप नहीं करना और उस अपने दोष को दोष कहना और अंतरमन में भी दोष समझना यह शिथिलाचार नहीं है । ऐसी वृत्ति वाला शिथिलाचारी नहीं कहा जाता ।

**निबंध-३१**

## उपकरण परिमाण परिज्ञान

**केवल मुनि-** पंडितजी ! साधु-साध्वी के उपकरणों के नाम शास्त्र में है किन्तु उन सब का माप एवं संख्या का स्पष्टीकरण नहीं है तो भाष्य निर्युक्ति में कहे अनुसार मानना ही विवेक बुद्धि है क्या?

**पंडित जी**-मत्थएण वदामि ! दशवै. अ. ६ में कहा है कि साधु-साध्वी वस्त्र पात्र कम्बल पादप्रोंछन जो उपकरण रखते हैं उन्हें संयम के लिए और लज्जा निवारण के लिये रखते हैं और प्रश्नव्याकरण में शरीर रक्षा हेतु से भी उपकरण रखना कहा है उन्हें दशवैकालिक में परिग्रह नहीं कहा गया है और कहा है कि मूर्छा आसक्ति ही परिग्रह है आगम में साधु-साध्वी के चादर की संख्या कही गई है अन्य उपकरणों की नहीं। फिर भी भाष्य निर्युक्ति में कहे गए परिमाण संख्या एकान्त आग्रह करके मानने योग्य नहीं है । संयम और शरीर की रक्षा हेतु, लज्जा हेतु,





आसक्ति रहित भावों से रखने का विवेक बुद्धि से निर्णय करना चाहिए । इसका कारण यह है कि भाष्य में एक पात्र या दो पात्र ही रखने का आग्रह किया गया है जब कि आगम में अनेक पात्र रख सकने के अनेक प्रमाण है ।

आगम में रजोहरण को जीव रक्षा और भूमि प्रमार्जन के लिए उपकरण कहा है और भाष्य निर्युक्ति में भी कहा है कि इतना लम्बा रजोहरण भी नहीं रखना कि इधर-उधर आंख मुँह के लकड़ी की लगे और इतना छोटा भी नहीं रखना कि प्रमार्जन करने के लिए अधिक झुकना पडे जिससे कमर दुखे अर्थात् चलते समय खडे-खडे आराम से प्रमार्जन हो सके इतना प्रमाणोपेत रजोहरण करना । वहीं भाष्य में ३२ अंगुल का माप भी छोटे बडे सभी साधु-साध्वियों के लिए कह दिया जो उचित भी नहीं है । क्योंकि ऐसा करने से उस छोटे-से रजोहरण से चलते समय प्रमार्जन भी नहीं होता और दंडासन नामक (डांडिया) अधिक उपकरण पूजने के लिए साधु साध्वियों को रखना पडता है और भाष्य में उक्त स्वकथन से विरोध भी होता है । अत: ३२ अंगुल का सबके लिए एकान्त आग्रह समय मर्यादा के अनुकूल नहीं होने से आगम विरूद्ध है । अत: विवेक यही है कि अपनी ऊंचाई के अनुसार योग्य माप का रजोहरण रखना चाहिए । और दंडासन उपकरण को व्यर्थ में नहीं बढाना चाहिए ।

चोलपट्टा और चद्दर भी भाष्य में छोटा बताया है जो लज्जा और शरीर रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं होता है । इसलिए मूर्तिपूजक और स्थानकवासी सभी लोग भाष्य की मर्यादा का पालन नहीं करते हैं । पात्र के लिए भी भाष्य में कही गई मर्यादा को दोनों ही समुदाय वाले पालन नहीं करते किन्तु ४-६ आदि इच्छानुसार पात्र रखने है। इसलिए कम से कम रखना एवं आवश्यक उपकरण ही रखना और आसक्ति भाव नहीं रखना यही विवेक बुद्धि है ।

**निबंध-३२**

## श्रावक को आगम अध्ययन परिज्ञान

**प्रश्न-** तीन वर्ष की दीक्षा के पहले साधु को भी शास्त्र पढ़ाने की मनाई है तो गृहस्थ तो कभी शास्त्र पढ़ने का अधिकारी नहीं हो सकता ?

**उत्तर-** अनेक जगह आगम विधान के अर्थ की परम्परा बराबर उपलब्ध नहीं है अत: विकृति से पेश की जाती है ।

शास्त्र में ३ वर्ष की दीक्षा वाले को उपाध्याय पद देने का विधान किया है और उस तीन वर्ष की दीक्षा वाले को उपाध्याय बनने के लिए बहुश्रुत होना भी आवश्यक कहा है । अत: तीन वर्ष की दीक्षा होने के पहले शास्त्र नहीं पढ़ाना यह शास्त्र का खोटा अर्थ है । उन सूत्रों का अर्थ ऐसा समझना चाहिए कि तीन वर्ष वाले योग्य साधु को कम से कम उतना (शास्त्र कथित) अध्ययन तो करा ही देना चाहिए योग्यता हो तो ज्यादा करे करावे उसका निषेध नहीं समझना चाहिए ।

गृहस्थ को शास्त्र पढाने का निशीथ में प्रायश्चित्त कहा है उसका मतलब भाष्यकार ने भी मथ्यादृष्टि की अपेक्षा किया है और बताया है कि, वह दुरुपयोग करेगा किन्तु जिन भगवान के प्रति जो अनुरक्त है और श्रावक है, उनके लिए कदापि निषेध नहीं समझना चाहिए । नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र में जिस तरह साधुओं का शास्त्र अध्ययन और उपधान का कथन है, वैसा की कथन श्रावकों के लिए भी है । अन्य आगम वर्णनों से योग्य श्रद्धालु श्रावक भी आगम ज्ञानी, बहुश्रुत, कोविद, जिनमत में निपुण आदि हो सकते हैं । आगम में श्रावक को भी साधु के समान ही तीर्थ कहा है तथा चार प्रकार के श्रमण संघ में भी श्रावक को गिना है अत: आगमकार की दृष्टि से श्रावक के लिए आगम अध्ययन का निषेध या अनधिकार नहीं है । अत: उक्त एकान्तिक आग्रह भी अविवेक है । श्रावक तो जिनशासन के तीर्थरुप है उनको शास्त्र पढ़ने में कोई दोष नहीं है उल्टा महान् लाभ है । अत: सत्य विवेक यही है कि योग्य हो वह साधु-साध्वी या श्रावक श्राविका शास्त्र अध्ययन करें करावें, तो इसमें कोई प्रायश्चित नहीं आता है ।

**निबंध-३३**

## मुखवस्त्रिका लघु संवाद

**केवल मुनि**-धुरंधर विजय जी ! आप मुखवस्त्रिका हाथ में क्यों रखते हो बांधते क्यों नहीं हो ?

**धुरंधर मुनि**-केवल मुनि सा ! शास्त्र में मुखवस्त्रिका रखना ही कहा डोरा लगाना नहीं कहा अत: डोरा लगाना गलत है ।





**केवल मुनि**-शास्त्र में तो साधुओं के चोलपट्टा कहा है डोरा नहीं कहा तो आप इतनी मोटी रस्सी ऊपर क्यों बांधते हो । साध्वियां भी साडी में डोरा क्यों डालती हैं, ऐसे ही लूंगी जैसा बांध लेना चाहिए ।

**धुरंधर मुनि**-बोलने से मुँहपत्ति पर थूक लग जाता है उसमें समुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते है जिससे जीव हिंसा का पाप लगता है इसलिए भी हम मुँहपत्ति बांधते नहीं किन्तु हाथ में रखते हैं ।

**केवल मुनि**-धुरंधर विजय जी ! शास्त्र में कहे चौदह समुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होने के बोलों में टट्टी, पेशाब, कफ, श्लेष्म, खून, रस्सी, वीर्य, कलेवर आदि कितने ही नाम स्पष्ट कह दिए गए हैं । थूक का नाम कफ श्लेष्म के साथ भी नहीं कहा है । अत: थूक में समुर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति कहना अतिप्ररुपणा दोष है ।

**धुरंधर विजय**-पंडित न्यायचन्द्रजी ! हम तो थूक और पसीना में जीवोत्पत्ति मानते हैं आपने मुखवस्त्रिका के विषय में आगम से क्या समझा है ? स्पष्ट करें ?

**पंडित जी**-मत्थएण वंदामि ! इस उपकरण के नाम से ही स्पष्ट है कि यह मुह पर रहती है न कि हाथ में या कमर में ।

मुखवस्त्रिका और रजोहरण दो उपकरण जिनकल्पी को एवं अचेल भिक्षु को भी रखना आवश्यक होता है ये दोनों जैन लिंग के आवश्यक उपकरण है और ये दोनों संयम रक्षार्थ उपकरण हैं, शरीर रक्षार्थ नहीं है।

भगवती सूत्र में खुले मुँह (वस्त्र से मुख ढके बिना) बोली जाने वाली भाषा को सावद्य भाषा कहा है । मुखवस्त्रिका से मुख को ढके बिना नहीं बोलना यह सिद्धांत मन्दिरमार्गी और स्थानकवासी दोनों ही स्वीकार करते हैं ।

श्रावकों के देव गुरु के दर्शन हेतु अवग्रह में प्रवेश करने पर भी मुख पर वस्त्र लगाना आवश्यक विधि है । जिसका कथन भगवतीसूत्र आदि अनेक सूत्रों में है ।

अत: बोलते समय, उपाश्रय से बाहर जाते समय, प्रतिक्रमण करते समय मुख पर मुखवस्त्रिका होना आवश्यक है । इस नियम को तोड देने पर अधिकांश मंदिर मार्गी साधु-साध्वी निरंकुश रुप से खुले मुँह ही बोलते रहते हैं, उनका थूक सामने बैठे व्यक्ति पर और शास्त्रों पर भी

गिरता है । जिससे महान आशातना लगती है और सावद्य भाषा का पाप भी लगता है । यदि डोरे में ही कुछ पाप होता तो चोलपट्टे में रस्सी लगाना प्रारम्भ नहीं किया जाता । इस प्रकार डोरे में तो कोई पाप नहीं और खुले मुँह बोलना भी नहीं । इत्यादि कारणों से मुख वस्त्रिका मुँह पर बांधना ही उचित है ।

सामने वाले व्यक्ति पर और शास्त्र पर थूक नहीं गिरने का भी फायदा हो जाता है ।

पसीने में और थूक में समुर्च्छिम मनुष्य की उत्पत्ति नहीं होती है। क्योंकि साधु-साध्वी को घंटों तक विहार करने का और घंटों तक व्याख्यान वांचने या बैठने का प्रसंग आता है । तब गर्मी में कपड़े पसीने से तरबतर हो जाते । उसमें समुचिर्छम मनुष्य उत्पन्न होवे तो साधु जीवन का पालन भी असम्भव हो जाएगा ।

**धुरंधर विजय**-पंडित जी ! पसीने के कपडे शरीर से संलग्न रहते हैं, इसलिए उनमें जीवोत्पत्ति नहीं होती ।

मुनिवर ! जब शरीर से संलग्न पसीने के कपड़े में समुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न नहीं होते तो मुख के पास अत्यन्त निकट लगी मुँहपत्ति में समुर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होने की कल्पना करना ही व्यर्थ है ।

निष्कर्ष यह हुआ कि मुँहपत्ति मुख पर बांधने से समुर्च्छिम का पाप नहीं लगता है और सावद्य भाषा भी न बोली जाती है तथा शास्त्र की आशातना भी नहीं होती है । यद्यपि आगमों में कहीं पर भी मुखवस्त्रिका हाथ में रखने का या मुँह पर बांधने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है । फिर भी आगम विधानों के आयश से यही विवेक प्रगट होता है कि बोलने के समय और उपाश्रय से बाहर जाते समय मुख पर मुखवस्त्रिका बांधना लिंग के लिए एवं सावद्य भाषा से बचने के लिए आवश्यक है । सोते, जागते, मौन, ध्यान सभी अवस्थाओं में २४ ही घंटे मुखवस्त्रिका बांधे रहने का आग्रह रखना भी अनावश्यक आग्रह है और मुँहपत्ति कभी भी बांधना ही नहीं और बेधडक खुले मुँह बोलते जाना, यह भी मर्यादा को भंग करने के साथ एक आगम विपरित दुराग्रह है। उसमें लाभ कुछ भी नहीं है, हानि ही हानि है। अतः विवेक पूर्वक यथा समय मुँहपत्ति बांधकर दोषों से बचना चाहिए ।





**निबंध-३४**

## मासिक धर्म के समय धर्माराधन : संवाद

**धुरंधर विजय**-केवल मुनि जी ! आप मासिक धर्म की अस्वाध्याय मानते हैं ?

**केवल मुनि**-हाँ, जी हम मासिक धर्म की अस्वाध्याय मानते हैं ।

**धुरंधर विजय**- आप श्राविकाओं को सामायिक का नियम कराते हैं तब क्या तीन दिन का आगार रखते हैं ?

**केवल मुनि**-नहीं जी ! सामायिक और स्वाध्याय का कोई सम्बन्ध ही नहीं है । साध्वी बिना किसी आगार के जीवन भर की सामायिक का पच्चक्खाण कर सकती है । सामायिक का अर्थ है १८ पाप का त्याग करना । एक मुहूर्त की या जीवन भर की सामायिक लेने के बाद मासिक धर्म आदि कोई भी अस्वाध्याय हो तो भी उससे सामायिक भंग होने का कोई प्रयोजन नहीं है ।

क्यों पंडित जी ! अस्वाध्याय स्वाध्याय का आप क्या मतलब समझते हैं ?

**पं. न्यायचंद्र जी**-मत्थएण वंदामि ! अभिधान राजेन्द्र कोष भाग प्रथम पृ. ८२७ में बताया गया है कि 'सत्शास्त्र का अध्ययन करना स्वाध्याय है । वह अध्ययन जब जहां न करना हो वह हेतु अस्वाध्याय कहा जाता है यथा - रुधिर आदि । ऐसे अस्वाध्याय ३२ है । उनमें सूत्र के मूल पाठ का अध्ययन उच्चारण करना नहीं कल्पता है ।'

अतः मुनिवरों ! अस्वाध्याय का सम्बन्ध केवल मूल पाठ के उच्चारण से है । नित्य नियम, धार्मिक-क्रिया, पाप-त्याग, तपस्या आदि कार्यों का अस्वाध्याय से कोई प्रयोजन ही नहीं है । प्रतिक्रमण रुप नित्य नियम का भी ३२ अस्वाध्याय से कोई सम्बन्ध नहीं है । चाहे गाज-बीज हो या सूर्य ग्रहण हो, चाहे चैत्र आदि की पूनम एकम हो या सन्ध्या काल (लाल दिशा) हो, नित्य नियम में उपयोगी होने से आवश्यक सूत्र आगम होते हुए भी उसका उच्चारण करना निषिद्ध नहीं है अर्थात् ३२ अस्वाध्याय में भी प्रतिक्रमण किया जाता है ।

अतः मासिक धर्म के समय सामयिक प्रतिक्रमण, व्रत-नियम,

प्रत्याख्यान, पौषध का निषेध करना, मनः कल्पित है किन्तु आगम सम्मत नहीं है ।

**धुरंधर विजय-** आगम के मूल पाठ के अध्ययन की भी अस्वाध्याय क्यों होती है ? आगम तो स्वयं मंगल रुप होते हैं उन्हें भी अस्वाध्याय के समय पढ़े तो दोष क्या है ? शास्त्र में अस्वाध्याय बताई गई है उसका हार्द क्या है ?

**पंडित जी**-मत्थएण वंदामि ! तीर्थंकर भगवान द्वारा प्ररुपित भावों को ए क विशिष्ट भाषा में गुंथन करने पर वह शास्त्र कहलाता है । तात्पर्य यह है कि सूत्र हंमेशा किसी एक विशिष्ट एवं अल्प प्रचलित भाषा में बनाये जाते हैं । व्याख्यान, विचारणा, अर्थ-भावार्थ समझाना, यह प्रायः जनसाधारण की भाषा में होता है ।

तदनुसार भगवान के द्वारा प्ररुपित भावों को गणधर एक विशिष्ट भाषा में गुंथन करते हैं । वे गणधर इसके लिए देवों की भाषा का चयन करते हैं अर्थात् देववाणी(अर्धमागधी भाषा) में आगम रचना करते हैं। इस प्रकार हमारे आगमों की भाषा (अर्धमागधी) देवों की भाषा है ।

देवों में कई हल्के-कुतुहली एवं मिथ्यात्वी देव भी होते हैं । उनके कुतुहल या उद्दंडता करने के समय भी नियत होते है । यथा- पाठशाला में बच्चों के लिए खेलकूद मनोरंजन के समय भी होते हैं।

उन समयों में देववाणी वाले इन शास्त्रों में भूल हो जाने पर वे देव कुतुहल या रोष प्रकट कर सकते हैं । अतः स्वाध्याय के निमित आपत्ति न आवे इसके लिए ही वैसे समयों में (३२ अस्वाध्यायों में) स्वाध्याय का निषेध किया गया है । रुधिर पीप आदि की अस्वाध्याय आत्म (स्व) अस्वाध्याय कही गई है । यह निजी व्यक्तिगत अस्वाध्याय तीन या अनेक दिन तक निरंतर रह सकती है। इस कारण व्यवहार सूत्र उ. ७ तथा निशीथ सूत्र उ. १९ में परस्पर साधु साध्वी को सूत्रार्थ वाचना देने का विधान किया गया है । साथ ही स्वतः अकेले को स्वाध्याय करने का निषेध किया है । निर्युक्ति भाष्य में स्वयं की खून रस्सी के विषय में शुद्धि करने एवं वस्त्र पट लगाकर परस्पर वाचना देने की स्पष्ट विधि बताई है।

इस प्रकार सूत्रों की अस्वाध्याय में भी आवश्यक सूत्र (प्रतिक्रमण) के पाठों (नमस्कार मंत्र, लोगस्स, णमोत्थुण आदि) का उच्चारण करना





और अन्य आगमों की वाचना देना आगम और भाष्यों से सिद्ध है । तब अस्वाध्याय का जहाँ किंचित् भी सम्बन्ध नहीं है, उन धार्मिक क्रियाओं का निषेध करना कदापि उचित नहीं है ।

शुचि प्रधान समाज के निकट रहने से वीतराग धर्म में विकृति आई है कि धार्मिक क्रियाएं भी नहीं करना । किन्तु हमारा धर्म विनय मूल धर्म है । शुचिमूलक नहीं है ।

आगम में तो सात दिन की चौविहार तपस्या करने वाले निरंतर कायोत्सर्ग में लीन रहने वाले पडिमाधारी साधु को स्वमूत्र पान करने का भी विधान किया गया है ।

आचारांग सूत्र में गृहस्थों को शुचि धर्मी कहकर भिक्षुओं को मोयसमाचारी वाला कहा है अर्थात् आवश्यक होने पर वह मूत्र का उपयोग करने वाला होता है । वे शुचि धर्मी नहीं होते हैं ।

रात्रि में साधु को आहार या पानी सभी खाद्य या पेय पदार्थ रखने की मनाई है, निशीथ में उसका प्रायश्चित भी कहा गया है । तथा अन्य विलेपन के पदार्थों को भी रात्रि में रखने का निषेध एवं प्रायश्चित्त कहा गया है ।

साधु-साध्वी को परस्पर एक दूसरे का मूत्र लेकर पीना या अन्य उपयोग करने का भी विधान सूत्र में है । अतः शुचिधर्मी जनसाधारण की नकल करके धार्मिक क्रियाओं का एकान्त निषेध करना आगम सम्मत नहीं है ।

**धुरंधर विजय**-पण्डितजी ! हम तो संवत्सरी के दिन भी सम्पूर्ण धर्म आराधना का ऋजुस्वला बहिन को पूर्णतया निषेध करते हैं वह एक नमस्कारमंत्र भी नहीं गिन सकती ?

**पंण्डित जी**-मुनिराज यह अर्वाचीन अशुद्ध नकल की हुई परम्परा है। आगमों से और उनके भाष्य व्याख्या ग्रन्थों से भी विरुद्ध है । ऊपर कहे गए राजेन्द्र कोष के स्पष्टीकरण से भी विरुद्ध है ।

पूज्य मुनिराज ! आप चिंतन करे कि पौषध, सामायिक या संयम लेने के बाद मासिक धर्म होने पर यह व्रत खण्डित नहीं होता है तो उसके करने का निषेध क्यों ?

स्वाध्याय करते समय तो यदि कोई अस्वाध्याय का हेतु बन जाए

तो ज्ञात होते ही स्वाध्याय का त्याग कर दिया जाता है । किन्तु संयम का या सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण का त्याग नहीं किया जाता ।

अतः अस्वाध्याय का सम्बन्ध सूत्र पाठ के अध्ययन से ही है किंतु धार्मिक क्रिया से नहीं, ऐसा समझना चाहिए और लोकरुचि प्रवृत्ति को धर्म सिद्धांत में रूढ नहीं करना चाहिए । क्योंकि वैसा करने पर निष्प्रयोजन ही धर्म आराधना का अन्तराय लगता है, जो आगम विरुद्ध भी है ।

**केवल मुनि**–हां पण्डित जी ! वास्तव में ऐसा करने पर बहुत बडी अन्तराय लगती है । संवत्सरी महापर्व के दिन अट्ठम हो, किसी बहिन को प्रतिपूर्ण पोषध करना हो और उसे मासिक धर्म का अवसर आ जाए तो वह दिन भर एक नवकार मंत्र भी न गिने, कोई भगवान की स्तुति स्तवन भी नहीं कर सके, उपाश्रय मंदिर में पांव भी नहीं रख सके, तो वह फिर दिन भर अव्रत में रहकर सावद्य कार्य करे या आलस्य करे और सम्पूर्ण धर्म आराधना से वंचित होकर इधर-उधर घर में चक्कर काटे यह कुछ भी उचित नहीं है । ऐसे नियम घड़ना सर्वज्ञों के विधानों को दूषित करना है । आगम में तो यथावसर मासिक धर्म में परस्पर वाचना देने लेने की भी छूट दे दी गई है। भाष्य में मंदिरमार्गी प्राचीन आचार्यों ने उसकी विधि भी बता दी है तब फिर स्वछंद बुद्धि से ऐसे नित्य नियम के संबंध में एकान्त निषेध करने में कोई भी लाभ नहीं है । नुकशान का कायदा चलाना सर्वथा अनुचित है ।

**धुरंधर विजय**–पण्डित जी ! किसी व्यक्ति का एक्सीडेंट हो जाए और उसके शरीर से घंटों तक खून बहता रहे तो क्या वह प्रभुभक्ति अथवा नमस्कार मंत्र आदि गिन सकता है ?

**पण्डित जी**–हाँ मुनिवर ! यही विवेक सीखने का है ऐसे समय में कोई धर्म सिद्धान्त प्रभु स्मरण आदि का एवं त्याग प्रत्याख्यान का, पापों के त्याग का निषेध नहीं कर सकता । किसी को दीर्घ कालीन अशुचिमय रोग कोढ आदि हो जाए तो वह भी उस अवस्था में यथाशक्ति धर्म की आराधना कर सकता है इसका किसी भी ३२ या ४५ आगम में निषेध नहीं है ।

आगम की अस्वाध्याय का आशय तो इतना ही है कि आवश्यक सूत्र(प्रतिक्रमण) के पाठों को छोडकर अन्य सभी आगमों के मूल पाठ





का उच्चारण अस्वाध्याय काल में नहीं करना। अतः सभी अस्वाध्यायों में आगम पाठ के उच्चारण के अतिरिक्त सामयिक, पौषध, व्याख्यान श्रवण, प्रतिक्रमण, गुरु दर्शन, जाप, ध्यान आदि अन्य कोई भी धर्माराधन की प्रवृतियाँ की जा सकती है ।

**निबंध-३५**

## ग्रंथों में मनघडंत कल्पनाओं का परिज्ञान

**प्रश्न**–अन्य मत के शास्त्रों में भी जिन मंदिर का कथन है अतः मंदिर पूजा प्राचीन है ?

**उत्तर**–अन्य मत के शास्त्रों का भी रचना समय लेखन काल के बाद का ही समझना चाहिए और उस काल में सभी लोगों ने अपने शास्त्रों में जो मन भाया वह करने का अधिकार रखा है । अतः अन्य मत के शास्त्रों का महत्त्व तो हमारे ग्रन्थों जितना भी नहीं है ।

उस मध्य काल में कई अयुक्त बातें ग्रन्थों में भरी गई है और मौका लगा तो पूर्वाचार्यों की रचनाओं में भी बेधडक प्रक्षेप करने की सत्ता रखी गई है ।

**प्रश्न** –इसके लिए उदाहरण दें –

**उत्तर**–१. रावण को तीर्थंकर गोत्र बंध कर चौथी नरक में जाना कह दिया जो आगम से एवं कर्म ग्रन्थ से भी विपरीत है ।

२. एक तीर्थ पर पांव धरे तो मोक्ष, एक मंदिर बनावे तो मोक्ष, वास्तव में यदि पैसों से ही धर्म या मोक्ष होता तो चक्रवर्ती नरक में क्यों जावे और धनवानों को साधुपन के कष्ट सहन करने की क्या जरूरत ? उस संपत्ति से मंदिर बना के मजे में मोक्ष प्राप्त कर लेनी चाहिए ।

३. गौतम स्वामी के साथ १५ सौ साधुओं को केवल ज्ञान होना कह दिया जबकि भगवान के केवली साधु की संपदा ७०० की ही बताई है । गणधरों के शिष्य भी भगवान की संपदा में गिने जाते हैं तभी १४००० साधु होते हैं ।

४. कल्प सूत्र को देखेंगे तो उसमें प्रक्षेपों और झूठी कल्पनाओं की मानों बाढ ही आ गई है । एक छेद सूत्र के एक अध्ययन के नाम से इतना बडा घोटाला भयंकर अपराध है । ऐसी करतूतों के करने वालों से इमानदारी

की क्या आशा की जाय ? शास्त्र के नाम से इतना घोटाला करने वाले निर्युक्ति भाष्यों में मन-मर्जी मुताबिक कर बैठे उसमें तो आश्चर्य ही क्या है ? वास्तव में पर्यूषणा कल्प सूत्र के स्वतंत्र अस्तित्व का मलयगिरि आदि आचार्यों तक नामोनिशान भी नहीं था ।

**प्रश्न**–अच्छे प्रामाणिक ग्रन्थों में मूर्तिपूजा मंदिर का वर्णन है न ?

**उत्तर**–नंदी सूत्र में कहे गए श्रुत ज्ञान रूप ७२ शास्त्रों में से किसी में भी श्रावक साधुके द्वारा मूर्ति पूजा या मंदिर निर्माण का उल्लेख नहीं है । न ही किसी आचार शास्त्र में इस सम्बन्धी विधान है ।

उन ७२ शास्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई भी ग्रन्थ या व्याख्या आदि है वे सभी नंदी के बाद बने है यह निश्चित है । क्योंकि वे सभी स्वतंत्र ग्रन्थ रूप में बनाये गये है । नंदी कर्ता को एक पूर्व का ज्ञान था उन्होंने एक पूर्वधरों द्वारा रचित अनेक शास्त्रों को श्रुत में कहा है और ७२ नाम के बाद अंत करते हुए कहा कि जिस भगवान के शासन में जितने साधु हो उतने प्रकीर्णक श्रुत जानना । किन्तु निर्युक्ति भाष्य टीका आदि को श्रुत संख्या में नहीं कहा, न ही हिमवंत स्थविरावली आदि को श्रुत में कहा है। अत: ये सभी बाद की रचनाएँ है, यह स्पष्ट है । अन्यथा तो देवर्द्धि के द्वारा पूर्वधरों की रचनाओं को श्रुत में नहीं गिनाने के कोई कारण नहीं था । खुद की रचना को भी श्रुत में गिन लिया है ।

नियुक्तियों में चौदहपूर्वी भद्रबाहु को एवं वज्र स्वामी आदि को नमस्कार किया गया है । निर्युक्ति की चूर्णी करने वाले जिनदास गणि भी यही कहते है कि यहां प्रथम गाथा में निर्युक्तिकार महाराज सूत्रकर्ता श्री चौदह पूर्वी भद्रबाहु को प्रणाम करते हैं ।

शास्त्रोद्धारक पं. र. श्री पुण्यविजय जी लिखते है कि निर्युक्तियों की रचना के सम्बन्ध में प्रचलित घोटाला चूर्णिकार के समय नहीं था । यह तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी में नाम साम्यता से उठा हुआ घोटाला है । जो इतिहास की विकृतियों युक्त प्रचार से उत्पन्न हुआ है ।

**प्रश्न**–जिनदास गणी का समय कौन सा है ?

**उत्तर**–वीर निर्माण १२वीं १३वीं शताब्दि का माना जाता है ।

**प्रश्न**–कितने ही श्रावकों-साधुओं ने मंदिर बनाए ऐसा कई कथाओं में वर्णन आता है ?





**उत्तर**–नंदी में कहे गये शास्त्रो में करीब २००० पृष्ट जितनी कथाएँ हैं किन्तु एक भी जगह साधु या श्रावक के द्वारा मंदिर बनाने या प्रेरणा करने का नामोनिशान भी नहीं है । तो बाद के रचे कथा ग्रन्थों में कहा से आवे ? स्वछंद मति कल्पित होने के सिवाय उसे कोई स्थान प्राप्त होने वाला ही नहीं है ।

**प्रश्न**–मंदिरमार्गी लोग हमें तो कहते है कि तुम पूवाचार्यों महापुरुषों के शास्त्रों को नहीं मानते यह ठीक नहीं। किन्तु वे स्वयं ४५-४५ ही क्यों कहते ?

**उत्तर**–हाथी के दांत खाने के अन्य और दिखाने के अन्य होते हैं । उसी तरह दूसरों पर आक्षेप करना हो जब तो वे सभी ग्रन्थ साहित्य को शास्त्र मानने का आग्रह करेंगे, किन्तु खुद ही अपने मुँह से ४५ शास्त्र कह कर हरिभद्र सूरी, देवेन्द्र सूरि, हेमचन्द्राचार्य, मलयगिरि रचित अनेक ग्रन्थों को आगम में नहीं गिनते । यह दुहरी चाल चलने की उनकी आदत बन गई है । कर्म ग्रन्थ, त्रिषष्टि श्लाका पुरुष चरित्र, परिशिष्ट पर्व, बृहत्संग्रहणी आदि को वे ४५ शास्त्र में नहीं गिनते हैं । फिर भी उन्हें कोई दोष नहीं लगता और ३२ आगम मानने वालों को वे अनेक ग्रन्थों के मानने का आग्रह एवं आक्षेप करते रहते हैं यह उन्हें **दिया तले अंधेरा** नहीं दिखने की स्थिति है ।

इन विषयों का स्पष्टीकरण विस्तृत संवाद में कर दिया गया है अत: यहां छोटे रूप में दिया गया है ।

**निबंध-३६**

## निशीथ सूत्र का ऐतिहासिक परामर्श

**आचारप्रकल्प :-** (१) व्यवहार सूत्र उद्दे. ३,सूत्र ३ में 'आचारप्रकल्प धारी' होने का विधान है ।

(२) व्यवहार सूत्र के दशवें उद्देशक में साधु को सर्वप्रथम 'आचार-प्रकल्प नामक अध्ययन' की वाचना देने का विधान है।

(३) व्यवहार सूत्र के पाँचवे उद्देशक में 'आचार-प्रकल्प अध्ययन' को भूल जाने वाले तरुण साधु एवं साध्वियों को प्रायश्चित्त देने का विधान है । इस प्रकार इस व्यवहार सूत्र में कुल सौलह बार 'आचार प्रकल्प' या 'आचार-प्रकल्प-अध्ययन' का कथन है । यथा -

| उद्देशक | सूत्र |
|---|---|
| ३ | ३, १० में एक एक बार, |
| ५ | १७, में एक बार |
| १० | २१,२२,२३, में एक-एक बार |
| ५ | १५,१६,१८, में दो-दो बार |
| ६ | १७,१८ में दो-दो बार |

नंदी सूत्र में कालिक उत्कालिक सूत्रों की सूची में ७१ आगमों के नाम दिये गये हैं । उसमें "आचारप्रकल्प" या 'आचारप्रकल्प अध्ययन' नाम का कोई भी सूत्र नहीं कहा गया है । अतः यह समझना एवं विचारणा आवश्यक हो जाता है कि यह 'आचारप्रकल्प' किस सूत्र के लिए निर्दिष्ट है और कालपरिवर्तन से इसका नाम परिवर्तन किस प्रकार हुआ है ? इस विषय में व्याख्याकार पूर्वाचार्यों के मंतव्य इस प्रकार उल्लिखित मिलते है—

(१) पंचविहे आयारप्पकप्पे पण्णत्ते तं जहा-१ मासिए उग्घाइए २. मासिए अणुग्घाइए, ३.चाउमासिए उग्घाइए, ४. चाउमासिए अणुग्घाइए ५. आरोवणा । **ठाणांग-५ ।**

**टीका -** आचारस्य प्रथमांगस्य पदविभाग-समाचारी लक्षण-प्रकृष्टकल्पाभिधायकत्वात् प्रकल्पः आचारप्रकल्पः निशीथाध्ययनम्। स च पंचविधः, पंचविधप्रायश्चित्ताभिधायकत्वात् ।

(२) आचारः प्रथममांगः, तस्य प्रकल्पो अध्ययनविशेषो, निशीथम् इति अपराभिधानस्य.... ।

(३) अष्टाविंशतिविधः आचारप्रकल्पः, निशीथाध्ययनम्, आचारांगम् इत्यर्थः । स च एवं --

(१) सत्थपरिण्णा जाव (२५) विमुत्ती, (२६) उग्घाइ, (२७) अणुग्घाइ (२८) आरोवणा तिविहमो निसीहं तु, इति अट्ठावीविहो आयारप्पकप्पो नामोत्ति ।**-राजेन्द्र कोश भाग- २ पृ. ३४९ 'आयारपकप्प शब्द' -प्रश्नव्याकरण सूत्र अ. १०**

(४)आचारः आचारांगम्, प्रकल्पो-निशीथाध्ययनम्, तस्येव पंचमचूला। आचारेण सहितः प्रकल्पः आचारप्रकल्प,- पंचविंशति अध्ययनात्मकत्वात् पंचविशति विधिः आचारः १. उद्घातिमं २.अनुद्घातिमं ३. आरोवणा





इति त्रिधा प्रकल्पोमीलने अष्टाविंशतिविधः ।- ***अभिधान राजेन्द्रकोश भाग २, पृ. ३५० 'आयारप्पकप्प' शब्द :***

**विचारणा :-** यहाँ समवायांग सूत्र एवं प्रश्नव्याकरण सूत्र के मूल पाठ में अट्ठाईस प्रकार के आचारप्रकल्प का कथन किया गया है, जिसमें संपूर्ण आचारांग सूत्र के २५ अध्ययन और निशीथ सूत्र के तीन विभाग का समावेश करके अट्ठाईस का योग बताया है, इससे स्पष्ट है कि आगमों में निशीथ को आचारांग सूत्र का ही विभाग या अध्ययन बताया गया है । क्योंकि केवल आचारांग सूत्र ग्रहण करें तो 'प्रकल्प' शब्द निरर्थक हो जाता है और केवल निशीथ सूत्र समझें तो आचारांग का अध्ययन किए बिना निशीथ सूत्र का अध्ययन करना मानना होगा. जो कि सर्वथा अनुचित है । इसका कारण यह है कि प्रायश्चित्त-विधानों के अध्ययन के पूर्व आचार-विधानों का अध्ययन करना आवश्यक होता है । समवायांग और प्रश्नव्याकरण में भी सूत्रकार ने आचार सम्बन्धी पच्चीस अध्ययन के साथ ही प्रायश्चित्त रूप तीन अध्ययन कर अट्ठाईस अध्ययन एक साथ गिनाए हैं ।

नंदी सूत्र की रचना के समय प्रायश्चित्त विधायक तीन विभागों के बीस उद्देशक, आचारांग सूत्र से पूर्णतः पृथक हो चुके थे और उनका नाम निशीथ अध्ययन नाम के आधार से **निशीथ सूत्र** रख दिया गया था। इसी कारण नंदी सूत्र में **प्रकल्प** या **आचारप्रकल्प** नामक कोई सूत्र नहीं कहा गया है तथा नंदी सूत्र के पूर्व रचित सूत्रों में अनेक जगह आचारप्रकल्प का कथन है किंतु वहा **निशीथ सूत्र** का नाम तक नहीं है ।

समवायांग सूत्र के उपर्युक्त टीकाकार ने स्पष्ट किया है कि आचार का मतलब प्रथमांग-आचारांग सूत्र और प्रकल्प का मतलब उसका अध्ययन विशेष। जिसका कि प्रसिद्ध दूसरा नाम निशीथ सूत्र है इस प्रकार दोनों सूत्र मिलकर ही सूत्रोक्त संपूर्ण आचार प्रकल्प सूत्र है।

**आचार-प्रकल्प** शब्द के वैकल्पिक अर्थ इस प्रकार होते है :-

(१) आचार और प्रायश्चित्तों का विधान करने वाला सूत्र निशीथ अध्ययन युक्त आचारांग सूत्र ।

(२) आचार विधानों के प्रायश्चित्त का प्रतीक सूत्र = निशीथ सूत्र

(३) आचारविधानों के बाद तत् सम्बन्धी प्रायश्चित्तों को कहने वाला

अध्ययन = आचारप्रकल्प अध्ययन = निशीथ अध्ययन

(४) आचारांग से पृथक किया गया खण्ड या विभाग रूप सूत्र अथवा अध्यन = आचारप्रकल्प अध्ययन = निशीथ सूत्र ।

व्यवहार सूत्र में प्रयुक्त **आचारप्रकल्प** इन चार विकल्पों में प्रथम विकल्प की अपेक्षा ही संगत होता है ।

संख्या प्रधान ठाणांग और समवायांग सूत्र में अनेक अपेक्षाओं से अनेक प्ररूपण किये गये हैं । उसे एकांत अपेक्षा से समझना उचित नहीं है । यथा निशीथ सूत्र के २० उद्देशक है किन्तु उन्हें विभिन्न अपेक्षाओं से तीन या पाँच संख्या से ही गिनाये गये हैं। ठाणांग सूत्र में तीन अनुद्घातिक भी कह दिए है । इसी प्रकार आचार प्रकल्प के पाँच विभाग भी कहे गये हैं और अठाईस विभाग भी कहे गये हैं । ऐसे अनेक उदाहण है । अतः अल्पसंख्या के कथन का आग्रह न रखकर अधिक संख्या अर्थात् अट्ठाईस को पूर्ण मानना चाहिए ।

सारांश यह है कि संक्षिप्त-अपेक्षा से उपलब्ध निशीथ सूत्र को आगम और व्याख्याओं में आचारप्रकल्प कहा गया है और विस्तृत एवं परिपूर्ण अपेक्षा से उपलब्ध आचारांग और निशीथ सूत्र दोनों को मिलाकर भी आचारप्रकल्प कहा गया है । अतः निष्कर्ष यह है कि ये दोनों एक ही सूत्र के दो विभाग हैं ।

नंदी सूत्र की रचना के समय तक उसका विभक्त होना एवं निशीथ नामकरण हो जाना संभव है । उसके पूर्व आगम स्थलों में निशीथ सूत्र नाम का कोई अस्तित्व नहीं है, केवल **आचारप्रकल्प** या **आचार प्रकल्प अध्ययन** के नाम से विधान किये गये हैं ।

**निशीथ सूत्र के रचनाकार :-**

निशीथ सूत्र के अलग हो जाने के कारण उसके रचनाकार के सम्बन्ध में अनेक विचार प्रचलित हुए है यथा -**(१)** यह विशाखागणी द्वारा पूर्वों से उद्धृत किया गया है ।**(२)** समय की आवश्यकता को लेकर आर्यरक्षित ने इसकी रचना की है।**(३)** चौदहपूर्वी भद्रबाहूस्वामी ने निशीथ सहित चारों छेदसूत्र पूर्वों से उद्धृत किये है इत्यादि कल्पनाएँ की गई है ।

**विचारणा :-**

१. व्यवहार सूत्र में **आचारप्रकल्प अध्ययन** का वर्णन है एवं उसे





साधु-साध्वी दोनों को कंठस्थ रखने का कथन है, और यह व्यवहार सूत्र चौदह पूर्वी भद्रबाहू स्वामी के द्वारा रचित (निर्यूढ) है । अतः भद्रबाहु स्वामी के बाद होने वाले विशाखागणि और आर्य रक्षित के द्वारा आचारप्रकल्प की रचना करने की कल्पना करना तो स्पष्ट ही आगम से विपरीत है ।

२. उन दोनों आचार्यों में से किसी एक के द्वारा पूर्व श्रुत से उद्धृत करना मान लेने पर निशीथ सूत्र को पूर्वश्रुत का अंश मानना होगा । जब कि व्यवहार सूत्र में साध्वियों को इसके कंठस्थ रखने का विधान है जबकि साध्वियों को पूर्वों का अध्ययन करना भी वर्जित है । अतः इन दोनों आचार्यों के द्वारा पूर्वों से उद्धृत करने का विकल्प भी सत्य नहीं है । किन्तु उन आचार्यों के पहले भी यह आचार प्रकल्प पूर्वों से भिन्न श्रुत रूप में उपलब्ध था एवं साधु साध्वियों को इसकी सर्व प्रथम वाचना करके कंठस्थ धारण करना भी आवश्यक था, यह निश्चित है ।

३. भद्रबाहु स्वामी ने चार छेद सूत्रों की रचना नहीं की थी, किन्तु तीन छेद सूत्रों की ही रचना की थी, यह दशाश्रुतस्कंध सूत्र के निर्युक्ति की प्रथम गाथा से स्पष्ट है -

**गाथा - वंदामि भद्दबाहुं पाईणं, चरिम-सगल-सुय-णाणिं ।**
**सुत्तस्स कारगमिसिं, दसासु कप्पे य ववहारे ।।**

दशाश्रुतस्कंध के निर्युक्तिकर्ता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ने प्रथम भद्रबाहू स्वामी को प्राचीन भद्रबाहु के नाम से वंदन करके, उन्हें तीन सूत्रों की रचना करने वाला कहा है ।

भद्रबाहुस्वामी ने यदि निशीथ सूत्र की रचना की होती तो वे व्यवहारसूत्र में सोलह बार **आचारप्रकल्प** का प्रयोग करने के स्थान पर या अध्ययन क्रम कहने के वर्णन में कहीं **निशीथ** का भी नाम-निर्देश कर देते । किन्तु अध्ययन क्रम में भी **निशीथ** यह नाम नहीं दिया गया है, आचार प्रकल्प और **दसा-कप्प-ववहार** नाम दिये हैं । अतः निशीथ सूत्र को भद्रबाहु की रचना कहना भी प्रमाण संगत नहीं है ।

**उपसंहारः-** इन सब विचारणाओं से सिद्ध होता है कि यह किसी की रचना नहीं है किन्तु आचारांग के अध्ययन को किसी आशय से पृथक किया गया है । कब किसने पृथक किया, कब तक आचार प्रकल्प नाम

रहा है और कब निशीथ नाम हुआ, यह जानने का परिपूर्ण आधार नहीं मिलता है । तथापि नंदी सूत्र की रचना के समय यह पृथक् हो गया था और इसका नाम भी **निशीथ सूत्र** निश्चित हो गया था तथा आचार प्रकल्प नाम का कोई भी सूत्र उस समय प्रसिद्धि में नहीं रहा था । फिर भी आचार प्रकल्प के नाम से अनेक विधान तो आज तक भी आगमों मे उपलब्ध है। अत: पृथक्करण के समय से लेकर प्रथम भद्रबाहु के समय तक इसका कथन **आचार प्रकल्प** नाम से ही होता था । **निशीथ सूत्र** यह बहुत बाद में प्रचलित किया गया नाम है ।

व्यवहार सूत्र उद्दे. ३ के सूत्र ३-४ में उपाध्याय पद योग्य भिक्षु के लिए इसके अध्ययन करने का और अर्थ सहित कण्ठस्थ धारण करने का विधान है। यह उपाध्याय पद योग्य मिक्ष के लिए अत्यावश्यक **जघन्य श्रुत** है ।इसके अर्थ सहित कण्ठस्थ न होने पर वह भिक्षु उपाध्याय पद पर स्थापित करने के अयोग्य कहा गया है।

**सार:-** निशीथ सूत्र गणधर रचित आचारांग सूत्र का प्रथक् किया हुआ अध्ययन है, पृथक्कर्ता का नाम अज्ञात है । **आचार प्रकल्प** शब्द से आचारांग और निशीथ दोनों सूत्रों के अध्ययन आदि का विधान श्रुत केवली प्रथम भद्रबाहु स्वामी ने व्यवहार सूत्र में किया है । वहाँ उन्होंने १६ बार आचारप्रकल्प शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु निशीथ सूत्र इस नाम का प्रयोग नहीं किया है ।

इसका कारण यह है कि केवल निशीथ अध्ययन का कथन करना हो तब **निशीथ सूत्र** यह प्रयोग किया जाता है और जब संपूर्ण आचारांग का अर्थात् दोनों खंडों का कथन करना होता हैं, तब **आचार प्रकल्प** शब्द का प्रयोग किया जाता है ।

नंदी सूत्र कर्ता को प्रथक सूत्र में इसका कथन करना था इसलिये वहाँ **निशीथ सूत्र** इस निर्णीत नाम का प्रयोग किया है और व्यवहार सूत्र के कर्ता को अध्ययन अध्यापन के प्रसंग में, दोनों सूत्रों का एक साथ निर्देश करना है, इसलिये वहाँ **आचार प्रकल्प** का ही प्रयोग किया है ।

रचनाकार सम्बन्धी उक्त तीनों कल्पनाएं असंगत एवं भ्रम पूर्ण है । प्रत्येक साधु-साध्वी को यह आचार प्रकल्प (आचारांग एवं निशीथ) अर्थ सहित कंठस्थ धारण आवश्यक होता है । अन्यथा वे संघाड़ा प्रमुख





आदि किसी भी जिम्मेदारी के पद को धारण करने अयोग्य ही होते हैं।

इस प्रकार यह **आचार प्रकल्प** जिन शासन में प्रारम्भ से ही होना आवश्यक है । अत: यह गणधर रचित संपूर्ण आचारांग सूत्र के ही दो विभागों में विभाजित अंशों का परिचायक शब्द है ।

**निबंध-३७**

## निर्युक्तियों के कर्ता द्वितीय भद्रबाहू
## (१४ पूर्वी प्राचीन भद्रबाहु नहीं )

**विशेष :-** जैन शास्त्रों के महान उद्धारक संशोधक साक्षर शिरोमणि मूर्तिपूजक समुदाय के पंडित रत्न मुनि श्री पुण्यविजय जी म.सा. ने बृहत्कल्प भाष्य की प्रस्तावना में चर्चा प्रमाणों द्वारा यह स्पष्ट किया है कि "निर्युक्ति नामक व्याख्याओं के कर्ता प्रथम(प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी नहीं थे" उसी प्रस्तावना से चर्चा प्रमाणों के कुछ अंश बहुत ही । उपयोगी होने से गुजराती से हिन्दी भाषानुवाद एवं भावानुवाद करके यहां दिये जा रहे हैं ।

**ज्ञातव्य :-** प्राचीन भद्रबाहु स्वामी १४ पूर्वी थे, उन्होंने तीन छेद सूत्रों (१. दशाश्रुतस्कंध २. बृहत्कल्प ३. व्यवहार ) की रचना की है। वीर निर्वाण की दूसरी शताब्दि में हुए हैं । द्वितीय भद्रबाहु स्वामी ज्योतिष वेत्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए । देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण के बाद वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि में हुए है । वराहमिहिर के बड़े भाई थे । वराही संहिता एवं भद्रबाहु संहिता के कर्ता भी ये दोनों भाई थे। भगवती सूत्र के अनुसार उस समय पूर्वज्ञान व्यवछिन्न हो चुका था।

यहाँ जो प्रमाण दिये जायेंगे वे वीर निर्वाण तीसरी शताब्दि और ग्यारहवीं शताब्दि के बीच की शताब्दियों के हैं :-

**वंदामि भद्दबाहुं पाईणं, चरिम सगल सुयणाणिं ।**
**सुत्तस्स कारगमिसिं, दसासु कप्पे य ववहारे ।।**

**अर्थ-** दशाश्रुतस्कंध, वृहत्कल्प और व्यवहार इन तीन सूत्रों की रचना करने वाले अंतिम श्रुत केवली प्राचीन भद्रबाहु को मैं वंदन करता हूँ ।

कोई भी व्यक्ति स्वयं को नमस्कार तो कर ही नहीं सकता है। इस प्रथम निर्युक्ति गाथा में १४ पूर्वी प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को तीन

सूत्रों का कर्ता विशेषण लगाकर वंदन किया भी गया है । अत: भद्रबाहु स्वामी के लिए प्राचीन विशेषण एवं तीन सूत्रों के कर्ता विशेषण लगाकर आदि मंगल रूप वंदन करने वाले श्रमण द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है ।

इस निर्युक्ति गाथा की चूर्णीकार ने प्रारभ में यह कहा है कि अब भाव मंगल निर्युक्तिकार कह रहे हैं- **तत्थ भाव मंगल निज्जुत्तिकारो आह ।** यहां कोई दूसरी कल्पना को भी स्थान नहीं रहता है, क्योंकि चूर्णी करने वाले आचार्य भी यह स्वीकार कर रहे हैं कि यह गाथा निर्युक्तिकार की है और इसमें उन्होंने आदि मंगल रूप में सूत्र कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को वंदन किया है ।

अत: इस गाथा को प्रक्षिप्त भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि चूर्णिकार के समक्ष यह गाथा थी, उन्होंने निर्युक्तिकार से सूत्रकार का भिन्न होना स्पष्ट स्वीकार किया है । इससे यह भी हो जाता है कि चूर्णिकार के जमाने में यह भ्रम नहीं था कि सूत्र के और उसकी निर्युक्तियों के कर्ता एक ही भद्रबाहु स्वामी है । क्यों कि ऐसी भ्रांत धारण उस समय होती तो इस प्रथम गाथा की चूर्णि करने में वे चक्कर में पड जाते कि खुद को वंदन कैसे किया गया है? किन्तु यहाँ व्याख्या करते हुए चूर्णिकार ने किंचित भी उलझन में नहीं पडते हुए सरलता पूर्वक इस निर्युक्ति गाथा की चूणि कर दी है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि चूर्णिकार के समय यह घोटाला नहीं था कि निर्युक्ति कर्ता और सूत्र कर्ता एक ही व्यक्ति है और वह भी १४ पूवी भद्रबाहू स्वामी ही है ।वास्तव में यह घोटाला चूर्णिकार के बहुत वर्षों बाद नाम साम्यता के भ्रम से पड़ा हुआ है।

**(२)** उत्तराध्ययन सूत्र के पाँचवें अध्ययन की निर्युक्ति गाथा -

**सव्वे एए दारा मरणविभत्तिए वण्णिया कमसो ।**
**सगल निउणे पयत्थे, जिण चऊद्दसपुव्वी भासंति । २३ ।**

**अर्थ-** मरण विभक्ति सम्बन्धी अनेक द्वारों से क्रमश: यह वर्णन किया गया है किन्तु और ज्यादा संपूर्ण विवेचन तो तीर्थकर एवं १४ पूर्वधारी ही कर सकते है ।

ऐसा कथन करने वाले स्वय १४ पूर्वी तो नहीं हो सकते । इस निर्युक्ति गाथा की टीका करने वाले शांत्याचार्य के समय नाम साम्यता का भ्रम प्रचलित हो चुका था, इसीलिये उन्होंने इस, उक्त निर्युक्ति गाथा





के संबंध में शंका उपस्थित की है कि निर्युक्तिकार स्वयं १४ पूर्वी होते हुए भी ऐसा क्यों कह रहे है । फिर वैकल्पिक समाधान दिये है कि १. अपने से भी विशिष्ट १४ पूर्वी के लिए ऐसा कह दिया होगा, २. अथवा तो द्वार गाथा से लेकर यहाँ तक की सब गाथा भाष्य गाथा होगी किन्तु निर्युक्ति गाथा नहीं होगी, अत: शंका नहीं करनी चाहिये

ऐसा वैकल्पिक समाधान उपयुक्त नहीं है, क्यों कि दशाश्रुतस्कंध के चूर्णिकार ने उक्त गाथा को निर्युक्तिकार की होना स्वीकार करते हुए व्याख्या की है । उन्हें व्याख्या करते समय किंचित भी संदेह उत्पन्न नहीं हुआ । अत: टीककार का संदेह एवं वैकल्पिक समाधान भ्रमित घोटाले के प्रभाव से युक्त है ।

**(३)** सूत्रकूतांग सूत्र के निर्युक्तिकार ने **पुडरीक** पद का निक्षेप निरूपण करते हुए द्रव्य निक्षेप में तीन मत कहे हैं । वे तीन मत वृहत्कल्प सूत्र की चूर्णी अनुसार स्थाविर आर्य मंगू, आर्य समुद्र और आर्य सुहस्ती इन तीन स्थविरों की अलग अलग मान्यता रूप है । ये तीनों आचार्य १४ पूर्वी भद्रबाहु से पश्चात्वर्ती है और द्वितीय भद्रबाहु से पूर्ववर्ती है । इन तीनों की मान्यता का संकलन निर्युक्ति में होने से भी यही सिद्ध होता है कि इन आचार्यों के पहले निर्युक्ति की रचना नहीं हुई किन्तु बाद में ही निर्युक्तियों की रचना हुई ।

**(४)** गोष्ठामाहिल निन्हव और दिगम्बर मत के उत्पत्ति की हकीकत भी निर्युक्ति में बताई गई है । ये दोनों घटनाएँ प्राचीन भद्रबाहु और आर्य रक्षित से भी बाद के जमाने की है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि ये निर्युक्तियां प्राचीन १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की नहीं है।

मुनि श्री पुण्य विजय जी के मन्तव्यों का एक पेरा यहाँ उनकी भाषा में ही उद्धृत करना उपयुक्त होगा जिसका सार यह है कि भ्रम एवं दुराग्रह से निर्युक्तियों को १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की मानने पर अनेकों विषयों में कई शंकाएं होती है, जिसके समाधान के लिये व्यर्थ की कई दूषित कल्पनाएँ करनी पड़ती है । ऐसा नींद बेचकर उजागरा मोल लेने में कुछ भी सार नहीं है । अत: निर्युक्तियों के लिए १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की रचना मानने की खोटी पकड़ को ही छोड़ देनी चाहिये । नाम साम्य वाले द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की रचना है, ऐसा सत्य ग्रहण कर

लेना चाहिये । ऐसे सत्य के ग्रहण कर लेने पर स्वत:सारी समस्याएँ सुलझ जाती है । अथवा तो वैसी कोई उलझने खड़ी ही नहीं होती है । इस सार वाला वह गुजराती भाषा का पेरा इस प्रकार है-

"अहीं प्रसंग वशात् एक बात स्पष्ट करी लइए के चौदपूर्वी भगवान भद्रबाहु ना जमाना ना निर्युक्ति ग्रन्थों ने आर्यरक्षित ना युग मां व्यवस्थित कराय अने फरीथी पछीना युग मां व्यवस्थित करवामां आवे, एटलूं ज नहिं पण ए निर्युक्ति ग्रन्थों मां उत्तरोत्तर गाडा ने गाडा भरी ने वधारो घटारो करवा मां आवे, आ जात नी कल्पना करवी जराय युक्ति संगत नहीं । कोई पण मौलिक ग्रन्थ मां आवा फेर फार कर्या पछी ते ग्रन्थ ने मूल पुरूष ना नाम थी प्रसिद्ध करवा मां खरेज ऐना प्रणेता मूल पुरूष नी तेजम पछी ना स्थविरों नी प्रामाणिकता दूषित ज थाय छे । (अत: बाद के स्थविर की रचना मानने से ये सारी कल्पनाएं नहीं करनी पड़ती है ।) वस्तुत: विचार करवा मां आवे तो कोई पण स्थविर महर्षि प्राचीन आचार्यना ग्रन्थ ने अनिवार्य रीते व्यवस्थित करवानी आवश्यकता उभी थतां तेमां सम्बन्ध जोडवा पूरतो घटतो उमेरो के सहज फेर फार करे ते सह्य होई सके । पण तेने बदले ते मूल ग्रन्थकार ना जमानाओ पछी बनेली घटनाओ ने के तेवी कोई बीजी बाबतों ने मूल ग्रन्थ मां नवेसर पेसाडी दे ऐथी ऐ ग्रन्थ नु मौलिक पणु, गौरव, के प्रामाणिकता, वधसे खरा? (बढेगी क्या?) आपणे निर्विवाद पणे कबूल करवूं जोइये के मूल ग्रन्थ मां एवो नवो उमेरो क्यारेय वास्तविक अने मान्य न करी शकाय । कोई पण महर्षि ऐवो उमेरो करे पण नहीं, अने ते जमाना ना बीजा स्थविरों पण तेने स्वीकारे नहीं । ऐ निर्युक्तियों ने चौदपूर्वी भद्रबाहु नी रचना मानवा थी ज ऐवी अघटित दूषित कल्पनाओं करवी पडे ।"

**(५)** निर्युक्तिकार १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी होते तो निर्युक्तियों में निम्न वर्णन नहीं मिलने चाहिये थे जब कि वे वर्णन आज मिल रहे है । यथा- **१.** आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७६४ से ७७६ तक में :- स्थविर भद्रगुप्त (बज्र स्वामी के गुरु) आर्य सिंह गिरि, श्री वज्र स्वामी, श्री तोसलीपुत्र, आचार्य आर्य रक्षित, आर्य फल्गुरक्षित आदि ये सब प्राचीन भद्रबाहू स्वामी के बाद के आचार्य है, इनके सम्बन्धी वर्णन उक्त गाथाओं में हैं ।**२.** पिंड निर्युक्ति गाथा ४९८ में पादलिप्ताचार्य सम्बन्धी वर्णन एवं





गाथा ४०३ से ४०४ में वज्रस्वामी के मामा आर्यसमित द्वारा बह्मद्वीपिक शाखा की उत्पत्ति का वर्णन है । इसका तात्पर्य यह होता है कि बह्मद्वीपिक शाखा की उत्पत्ति के बाद में ये निर्युक्तियां रची गई है।**३.** उत्तराध्ययन सूत्र की निर्युक्ति गाथा १२० में - कालकाचार्य सम्बन्धी घटना, का उल्लेख हैं ।**४.** आवश्यक निर्युक्ति ७६४ से ७६९ तक में वज्रस्वामी का गुणानुवाद करते हुए पुन: पुन: उन्हें नमस्कार करने का वर्णन है जो १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी के लिए सर्वथा अनुपयुक्त ठहरता है । क्योंकि वज्रस्वामी उनके गुरु या रत्नाधिक नहीं थे किन्तु शिष्यानुशिष्य थे । वे नमस्कार वाली गाथाएँ इस प्रकार है -

**जो गुज्झएहिं बालो, निमंतिओ भोयणेण वासंते ।**
**णेच्छइ विणीय विणओ, तं वइर रिसिं नमंसामि ।७६५।**

**जो कन्नाइ धणेण य, णिमंतिओ जुवणम्मि गिहीवइणा ।**
**णयरम्मि कुसुमणासे, तं वइररिसिं नमंसामि ॥**

**जेणउद्धरिया विज्जा, आगास गमा महापरिण्णाओ ।**
**वंदामि अज्जवइरं, अपच्छिमो जो सुयहराणं ।७६९।**

**(५)** आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७७३ और ७४ में बताया कि अनुयोग का प्रथक्करण आर्य रक्षित के समय हुआ । वज्र स्वामी तक नहीं हुआ था । भूत काल वाची वाक्य है । इनसे भी यही सिद्ध होता है कि निर्युक्तियाँ प्राचीन भद्रबाहु की रचना नहीं है ।

**(६)** आवश्यक निर्युक्ति ७७८ से ८३ तक और उत्तराध्ययन निर्युक्ति गा. १६४ से १७८ तक में सात निन्हवों और आठवाँ दिगंबर मत की उत्पति एवं उसकी मान्यताओं का विस्तृत वर्णन किया गया है । जिसमें वीर निर्वाण के ७०० वर्ष बाद तक के प्रसंग एवं घटित घटनाए भी है ।

**सारांश :** निर्युक्तियों की रचना **भद्रबाहुस्वामी** ने की, ऐसा जो इतिहास प्रसिद्ध है एवं ग्रन्थों मे व्याख्याओं में उल्लिखित है उसका किंचित भी विरोध नहीं है रचनाकार का नाम जो प्रसिद्ध है वह सत्य है उसे जुठलाने की कोई आवश्यकता नहीं है । तथा वराहमिहिर का भाई होना, भद्रबाहु संहिता के रचनाकार होना आदि भी निर्युक्तिकार भद्रबाहु के जीवन के साथ जो संबंधित प्रसंग उपलब्ध है वे भी निर्युक्तिकार भद्रबाहु के साथ मानने में स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है । किन्तु नाम साम्यता से

निर्युक्तिकार भद्रबाहु से सेकड़ों वर्ष (८८०) पूर्व हुए प्राचीन १४ पूर्वी भद्रबाहु के लिये, निर्युक्ति कर्ता का सम्बन्ध जोड कर जो घोटाला हुआ हे वह किंचित् भी उचित और न्याय संगत नहीं है ।

स्वयं निर्युक्तियों का जो कलेवर(विषय वर्णन) है वह भी इस बात की साक्षी दे रहा है कि नाम साम्यता से, १४ पूर्वी भद्रबाहु से जोड़ा गया निर्युक्ति कर्ता का सम्बन्ध, स्पष्ट ही गलत और भ्रम पूर्ण है ।

१. यह घोटाला शास्त्र लेखन के समय नहीं था क्योंकि उनशास्त्रों में प्राचीन भद्रबाहु की दस निर्युक्तियों का कहीं उल्लेख नहीं है ।

२. निर्युक्ति कर्ता द्वितीय भद्रबाहु के समय भी यह घोटाला नहीं था । उन्होंने तो तीन छेद सूत्र कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को प्रथम गाथा में आदि मंगल के लिये वंदन किया है ।

३. चूर्णी कर्ता के समय तक भी यह नाम साम्यता के भ्रम का घोटाला नहीं हुआ था । क्यों कि चूर्णिकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के स्पष्ट अर्थ किया है कि अब दशाश्रुतस्कंध सूत्र के निर्युक्तिकार आदि मंगल रूप में उस सूत्र साहित तीन छेद सूत्र के कर्ता प्राचीन भद्रबाहु स्वामी को नमस्कार करते हैं ।

इन्हीं कारणों से मूर्तिपूजक प्रसिद्ध आगमोद्धारक विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी म.सा. ने इसे नाम साम्यता से उत्पन्न भ्रमित घोटाला कहा है और वास्तव में इस घोटाले का निर्युक्ति, भाष्य एवं चूर्णिकारों के जमाने तक कोई अस्तित्व ही नहीं था । बाद में टीकाकारों के जमाने में जो कि शिथिलाचार का और खोटे हथकडे करने के उत्कृष्ट माहोल का जमाना था उस समय में यह घोटाला भ्रम से उत्पन्न हुआ होगा । अथवा तो किसी ने संकल्प पूर्वक(कल्प सूत्र के घोटाले के समान जानकर) भी चलाया हो तो भी असंभव नहीं है ।

उपलब्ध निर्युक्ति ग्रन्थों में-१. वज्र स्वामी को सभक्ति बारंबार किया गया नमस्कार,२. स्थूल भद्र के लिये 'भगवं' शब्द का प्रयोग (उत्तराध्ययन निर्युक्ति)३. अनेक घटनाओं के घटित होने का भूतकालीन वाक्यों में प्रयोग,(आगम में भावी तीर्थकर श्रेणिक का वर्णन है किन्तु वहाँ भविष्यकाल की क्रियाओं का प्रयोग है और निर्युक्ति में उन वर्णनों घटनाओं के प्रकरण में भूत कालीन क्रिया लगी है यथा- अनुयोग का





प्रथक्करण किया, निन्हव इस प्रकार हुए, अमुक मत निकला, इत्यादि ।

यदि किसी को भविष्य की बातों का ज्ञान है, तो भी उसका कथन करते समय वह भूतकाल की क्रिया नहीं लगायेगा, किन्तु भविष्य काल की क्रिया लगाकर ही अपने ज्ञान को व्यक्त करेगा । जब कि निर्युक्तियों में अनेकों वर्णन भूतकालीन क्रिया के साथ उल्लिखित है । अत: निर्युक्ति कर्ता के रूप में भद्रबाहु स्वामी का जो नाम प्रसिद्ध है वह इन वर्णित घटनाओं के पूर्व का व्यक्ति नहीं हो सकता बाद का व्यक्ति ही हो सकता है ।

निर्युक्तियों में वर्णित विषय और अनेक आचार्यों के जो प्रसंग हैं वे प्राचीन भद्रबाहु के बाद में हुए हैं और उनके लिए भूतकालीन प्रयोग है । अत: उन सभी प्रसंगों से बाद में हुए भद्रबाहुस्वामी ही इन निर्युक्तियों के रचनाकार है यह ध्रुव सत्य है और वे है द्वितीय भद्रबाहु स्वामी, जो कि वराहमिहिर के भाई थे और भद्रबाहु संहिता के रचनाकार भी थे ।

१४ पूर्वी प्राचीन(प्रथम) भद्रबाहु स्वामी ने निर्युक्ति ग्रन्थों की रचना नहीं की थी, किन्तु तीन छेद सूत्रों के कर्ता वे थे, यह बात दशाश्रुत स्कंध सूत्र की प्रथम निर्युक्ति गाथा से स्पष्ट है ।

भ्रमित घोटाले में १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी को निर्युक्ति कर्ता कहने के साथ जो वराहमिहिर का भाई कहा जाता है और उन दोनों से संबंधित सारी जीवन घटना कही जाती है वह भी सफेद झूठ के समान स्पष्ट ही असत्य है । क्योंकि वराहमिहिर ने जो 'पंचासिका' ग्रन्थ बनाया है उसके अंत में उसका शक संवत भी निर्दिष्ट है और वह समय है देवर्द्धिगणी के बाद का एवं द्वितीय भद्रबाहु के समय का अर्थात् वीर निर्वाण ग्यारहवीं शताब्दि का है ।

**उपसंहार** - इस प्रकार आगम प्रमाणों से एवं अकाट्य तर्क विचारणाओं से एवं मूर्ति पूजक विद्वान मुनि श्री पुण्य विजय जी के उक्त मन्यव्यों से यह सत्य सिद्ध है कि -निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी है इसमें किंचित भी संदेह नहीं है किन्तु वे १४ पूर्वी प्राचीन (प्रथम) भद्रबाहु स्वामी नहीं होकर वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है ।

इस सत्य को स्वीकार कर लेने पर कई उलझने समाप्त हो जाती है और कई शंकाओं की जड़ ही समाप्त हो जाती है । वास्तव में भ्रमित

मान्यताएँ अनेक असमाधित संदेहों की जननी होती है ।

चिंतनशील विद्वानों को परंपराओं का दुराग्रह और व्यामोह छोड़कर प्राप्त होने वाले सत्य तत्त्व को सरलता के साथ स्वीकार करना चाहिए । किन्तु प्रदेशी राजा के द्वारा दिये गये बाप दादों की **परंपरा व्यामोह** के तर्क में नहीं फँसना चाहिये और केशी श्रमण के द्वारा दिये उत्तर में निर्दिष्ट लोहवाणिए के साथी भी नहीं बनना चाहिये।

अत: आज से ही अपनी धारणा मान्यता को परिवर्तित कर लेना चाहिये कि -निर्युक्ति कर्ता द्वितीय भद्रबाहु स्वामी है और छेद सूत्र कर्ता प्रथम(प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी है । निर्युक्तियों की रचना आगम लेखन एवं नंदी रचना के बाद में ही हुई है, पहले नहीं हुई हैं।

**निबंध-३८**

## निर्युक्ति ग्रन्थ और संख्याता निर्युक्तियाँ
## (हार्द चिंतन)

निर्युक्तियाँ द्वितीय भद्रबाहू स्वामी द्वारा रचित है ऐसा मान लेने पर एक शंका यह खड़ी होती है कि नंदी सूत्र एवं समवायांग सूत्र में **संखेज्जाओं निज्जुत्तिओं** पाठ आता है जिससे यह मानना चाहिये कि नंदी के पूर्व भी निर्युक्तियों का अस्तित्व था ।

**समाधान :** समवायांग व नंदी के कथित निर्युक्ति शब्द को किसी व्यवस्थित रचित ग्रन्थ का सूचक न समझ कर, उस सूत्र से संबंधित भिन्न-भिन्न आचार्यों की अर्थ प्रतिपादक युक्ति की अपेक्ष समझना चाहिये । हमारे आगम और उनका अर्थ जब मौखिक परंपरा में था, आगम के अर्थों को बहुश्रुत भगवंत अनुयोग पद्धति से शिष्यों को समझाते थे, वे ही अर्थ प्रतिपादक युक्तियाँ नंदी में निर्युक्ति शब्द से सूचित है । उन अनेक बहुश्रुत भगवंतों की अर्थ प्रतिपादिका युक्तियाँ-निर्युक्तियाँ सभी मिलाकर संख्याता हो जाती है । इस अपेक्षा से यहाँ संख्याता समझना चाहिये । इन्हें ग्रंथ रूप में समझ लेना उपयुक्त नहीं है कि "आचारांग आदि अंग सूत्रों पर प्रत्येक पर संख्याता(सेकड़ों हजारों) निर्युक्ति ग्रन्थ रचे हुए थे" क्योंकि तब तो यह प्रश्न होगा कि वे सेकड़ों हजारों किसके रचे हुए थे और वे सब कहाँ गये ? जब आगम लिपिबद्ध हुये तो उनका भी लेखन हुआ होता एवं श्रुतज्ञान में उन ग्रन्थों के नाम





का एक विभाग होता तथा फिर बाद में आचार्यों को व्याख्या ग्रन्थ रचने की जरूरत ही नहीं पड़ती । क्योंकि सेकड़ों हजारों थे ही । और फिर भी कोई रचते तो स्पष्टीकरण भी करते कि हम अमुक अमुक आचार्यों की निर्युक्तियों के आधार से रचना कर रहे हैं, इत्यादि । किन्तु वास्तव में ऐसा कुछ भी हुआ नहीं है ।

संख्याता निर्युक्ति ग्रन्थ एक-एक सूत्र पर मानना समझना कदापि उचित नहीं हो सकता है । मौखिक व्याख्या करने के प्रकार प्रत्येक सूत्र के संख्याता होते है यही समझाने के लिये **संखेज्जाओ निज्जुत्तिओ** प्रयोग है और ऐसा समझना ही उचित प्रतीत होता है ।

अत: निर्युक्तियों की स्वतंत्र व्याख्या ग्रन्थ रूप रचना और उनके रचनाकार जिनकी निर्युक्तिया आज ८-९ उपलब्ध है, आगम लेखन व नंदी रचना के बाद में हुई है अन्यथा नंदी में व्याख्या ग्रन्थ का श्रुतज्ञान में एक स्वतंत्र विभाग होता । क्यों कि देवर्द्धिगणी व उनके समय के एक पूर्वधरों की रचना रूप नंदीसूत्र, प्रकीर्णक सूत्र आदि को श्रुत ज्ञान में कहा गया है, तो उनसे पहले हुए अधिक पूर्वधरों की रचनाएँ रूप निर्युक्तियाँ आदि यदि उपलब्ध होती तो उनको श्रुत ज्ञान में अलग विभाग करके अवश्य बताते किंतु ऐसा है नहीं ।

अत: नंदी कथित संख्याता निर्युक्तियाँ और उपलब्ध निर्युक्ति ग्रन्थों में भिन्नता समझनी चाहिए । निर्युक्ति ग्रन्थ तो एक एक शास्त्र पर एक ही होता है वह भी आज ५-७ शास्त्र पर उपलब्ध है।जब कि नंदी एवं समवायांग सूत्र में संख्याता निर्युक्तियाँ प्रत्येक प्रत्येक अंग आगम की कही गई है । जिसमें से ५-५ भी उपलब्ध नहीं हैं ।

उपलब्ध निर्युक्ति व्याख्या ग्रन्थ और नंदी में कही गई संख्याता (हजारों) निर्युक्तियों का तात्पर्य अलग-अलग समझना चाहिये।

**सार :-** १. निर्युक्ति व्याख्या ग्रन्थ द्वितीय भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित ग्रन्थ है २. नंदी सूत्र और समवायांग सूत्र में प्रत्येक अंग आगम की संख्याता निर्युक्तियाँ- मौखिक समझाई जाने वाली प्रत्येक वाचानाचार्य की विभिन्न पद्धतियों को कहा गया है । जिन शासन में अनेकों वाचनाचार्य होने से ही इन निर्युक्तियों को संख्याता कहा गया हैं ।

**निबंध-३९**

## महानिशीथ सूत्र एक परिचय

[महानिशीथ सूत्र का परिचय कराने के लिये उसके मूलपाठ के विषयों का उद्धरण देकर उसके उपर की गई मंदिरमार्गी विद्धान मुनिश्री कल्याण विजय जी की टिप्पणी भी साथ में दी जा रही है, इतिहास शोध के पाठक ध्यान से पढेंगे।]

(१) 'सबलों (शिथिलाचारियों) के सम्बन्ध में नहीं लिखा जाता, क्योंकि ग्रन्थ का विस्तार हो जाने का भय है, भगवान ने भी इस प्रसंग में कुशीलादिकों का अधिक वर्णन नहीं किया ।'

इत्यादि वचनों का सार देखने से यही ज्ञात होता है कि उपलब्ध **महानिशीथ** सूत्र नहीं बल्कि एक प्रबन्ध है । सूत्रकार सूत्रों में इस प्रकार कभी नहीं लिखते कि 'भगवान ने भी नहीं किया' यह कथन तो महानिशीथ की असौत्रिकता प्रमाणित करता है । जो सूत्र गणधर रचित होता है उसमें यह कभी नहीं होता कि 'भगवान ने भी अधिक नहीं कहा' । इसलिए यही कहना पड़ता है कि ***महानिशीथ एक अर्वाचीन ग्रन्थ है, गणधर रचित शास्त्र नहीं है ।***

इस तीसरे अध्ययन के अंत में कहा है कि 'बहुतेरे श्रुतधरों ने सम्मिलित होकर अंग उपांगात्मक द्वादशांग श्रुत समुद्र में से अंग उपांग श्रुतस्कंध अध्ययन उद्देशकों का चयन करके कुछ सम्बन्धित पाठ लेकर इसे व्यवस्थित कर लेखबद्ध किया है । अपना काव्य नहीं किया ( अपना राग नहीं अलापा है)' पृ.९१

(२) चौथे अध्ययन के अंत में कहा है- यहाँ चौथे अध्ययन में कई सैद्धान्तिक विद्वान कतिपय अलापकों पर श्रद्धा नहीं करते और उनके श्रद्धा न करने से हमको भी उन पर श्रद्धा नहीं होती ऐसा हरिभद्र सूरि कहते हैं । परन्तु सारा चौथा अध्ययन अथवा अन्य अध्ययन ऐसे नहीं है अर्थात् चौथे अध्ययन के कुछ आलापक अश्रद्धेय हैं । क्यों कि स्थानांग समवायांग जीवाभिगम पन्नवणा आदि सूत्रों में ऐसी बातें कहीं भी नहीं लिखी है । जैसे प्रतिसंतापस्थल, आस्थित तद् गुफावासी मनुष्य के रूप में परमाधर्मिकों का सात आठ बार उत्पन्न होना, कठोर वज्रशिलापुड़ो के बीच में पीडित होने पर भी एक वर्ष के पहले प्राणों का न निकलना





इत्यादि । किन्तु वृद्धों का कथन तो यह है कि यह सूत्र आर्ष है । इसमें कुछ भी विकृति प्रविष्ट नहीं हुई, इस श्रुतस्कंध में भरपूर अर्थ भरे पडे हैं । और इसमें विशिष्ट प्रकार के गणधरोक्त वचन है । इसलिये इस विषय में कुछ भी शंका नहीं करनी चाहिये ।''एक नहीं पच्चासों बातें इस तरह की है जो अन्य सूत्रों से प्रमाणित नहीं की जा सकती इसका प्रायश्चित्त निरूपण तो छेद सूत्रों से मेल ही नहीं खाता । इससे भी प्रमाणित होता है कि **महानिशीथ** खंडित महानिशीथ का अवशेष नहीं किन्तु एक स्वतन्त्र कृति है ।''- ***पृ.१२२ प्रबंध पारिजात ।***

(३) जहाँ आवश्यक चूर्णी में प्रायश्चित्त का नाम ही नहीं था, वहाँ २०० वर्ष बाद निशीथ विशेष चूर्णी में लघुमास प्रायश्चित्त आया। (प्रतिक्रमण के बाद जहां चैत्य हो और वंदन नहीं करे) और प्रतिक्रमण के प्रारंभ में चैत्य वंदन का कोई सूचन तक भी नहीं था, जो महानिशीथ में आ गया कि बिना चैत्यवंदन के प्रतिक्रमण प्रारंभ करे तो उपवास का प्रायश्चित्त ।

मौलिक छेद सूत्रों में देव(चैत्य) वंदन करने या नहीं करने की कहीं कोई चर्चा ही नहीं है । तब प्रायश्चित्त की बात ही कैसी ? आगे चलकर वि.सं.११वीं सदी के बाद की समाचारियों में ७ बार चैत्य वंदन करना निश्चित हुआ ।

त्रिकाल चैत्य वंदन न करे तो उपवास का प्रायश्चित्त और दूसरी बार गलती करे तो छेद का प्रायश्चित्त, तीसरी बार मूल प्रायश्चित्त और अविधि से करे तो पारांचित प्रायश्चित्त ।-**अध्ययन ६ में ।**

(४) भगवान के मेरु पर्वत को हिलाने का कथन अध्ययन -४ मे है।

(५) अध्ययन ६ में कैसे गुरु को गच्छपति बनाना विस्तार से लक्षण गुण दिये है । इस अध्ययन में चैत्य वास की उत्पति का विस्तृत वर्णन है । प्रायश्चित्त वर्णन भी है ।

(६) जो कोई हरियाली, बीज, पुष्प या फल का पूजार्थ, महिमार्थ या शोभार्थ संघट्टा करे, संघट्टा करावे, उक्त हरितादि का छेदन करे दूसरों से करावे संघट्टन छेदन करने वालों का अनुमोदन करे तो इन सर्व स्थानों में गाढ़ आगाढ़ भेद से यथाक्रम से उपस्थापना, क्षपण(बेला) चउत्थ भक्त, आयंबिल, एकासन, निवी प्रायश्चित्त देना ।

(७) महानिशीथ के निर्माता यदि सुविहिताचार्य होते तो उपधान के अंत

में जिन चैत्य में नंदी की क्रिया कर श्वेत ताजे पुष्पों की माला 'जिन' के पूजा देश से अपने हाथों में लेकर गृहस्थ के गले में पहनाने का विधान कभी नहीं करते । इससे ज्ञात होता है कि रचियता स्वयं शिथिलाचारियों की पंक्ति के विद्वान थे । (शिथिलाचारियों की कई प्रवृतियाँ पसंद नहीं होती है तो ये उसका जिक्र शोर से करते है और ऐसा आज भी देखा जाता है । वैसा ही कथन लगभग महानिशीथकार ने भी किया है ।)

(८) **विचित्र प्रायश्चित्त–** जिन वंदन या प्रतिक्रमण करने वालों के बीच में से बिल्ली निकल जाय तो उन सभी साधुओं को लोच करना चाहिए और कठोर तप करना चाहिए । अगर यह प्रायश्चित्त न करे तो उसे गच्छ से बाहर कर दिया जाय ।

पांव में जूते पहन कर घूमें तो नई दीक्षा । जूते न रखे तो क्षपण (बेला)। देव वंदन बिना प्रतिक्रमण करे – उपवास । आवश्यक प्रसंग पर जूते न पहने तो बेला । रात्रि में प्रथम प्रहर में प्रतिक्रमण के बाद स्वाध्याय न करे तो ५ उपवास । पहला प्रहर पूरा होने के पहले संथारा आदेश ले तो बेला । आदेश बिना सोवे तो उपवास । उत्तरपट्टे बिना संथारा करे तो उपवास । दुपट्ट संथारा करे तो उपवास।

सोते समय आयरिय उवज्झाए का पाठ न करे, कान में रूई न डाले, सागरी संथारा पच्चक्खाण न करे तो प्रत्येक में नई दीक्षा । फिर परम मंत्राक्षरों से शरीर की १२ भावना भाकर सर्प सिंह हाथी दुष्ट प्रांत वाणव्यंतर पिशाचादि से रक्षा न करे तो नई दीक्षा ।सुख साधनों का उपयोग नहीं किये जाने पर उन्हें कोई प्रायश्चित्त नहीं लगता है । तो उपसर्ग दूर करने के कार्य और जूते पहनने आदि कार्य नहीं करने पर प्रायश्चित्त कैसा ? यह विधान करना अनागमिक है । उत्तर पट्टा भी पूर्व काल में उपधि में नहीं था । महावीर निर्वाण के सैकड़ों वर्षों बाद इसे स्थान मिला है । अत: उसका भी प्रायश्चित्त कैसा ?

१२ भावना न भावे तो २५ आयंबिल का प्रायश्चित्त और प्रायश्चित्त न करे तो ५ उपवास । रात्रि में छींक खांसी आदि आवे तो एक बेला। दिन रात में कभी हास्य, क्रीडा, कंदर्प, नास्तिक वाद की बातें करे तो नई दीक्षा । तेउकाय, अपकाय का संघट्टा हो जाय तो २५ आयंबिल ।





**स्त्री संबंधी सेवन का प्रायश्चित्त –** यदि महातपस्वी हो तो उसे ७० मास खमण ७० अर्धमास खमण ७० पचोले यावत् उपवास, आयंबिल, एकलठाणा, निवी, एकासन सभी ७०-७० ।ये सारे विधान अन्य किसी सूत्र में नहीं हुए है ।

(९) ''यह प्रायश्चित्त विधान कब तक चलेगा ? – आचारांग सूत्र रहेगा तब तक उक्त प्रायश्चित्त पद्धति भी चलती रहेगी । प्रायश्चित्त सूत्र का विच्छेद होने पर ७ दिन में चन्द्र सूर्य की कांति कम होगी ।'' आचार्य, महत्तर और प्रवर्तिनी को इसका(इन सभी प्रायश्चित्तों का) चार गुना प्रायश्चित्त समझना।''यह विधान भी आगमिक नहीं है ।

(१०) **हे भगवान् कुगुरु कब होंगे ?** –साडे १२ सौ वर्ष बीतने पर कुगुरु प्रगट होंगे । हे भगवन् कोई गणी प्रमादी हो जाय आवश्यक कार्य में, तो क्या करना ? उत्तर– उसे अवंदनीय ठहराना । निष्कारण क्षणभर भी प्रमाद करे उसका यह प्रायश्चित्त है ।

विक्रम की ८वीं सदी(वीर निर्वाण १२५०) जैन श्रमणों के शैथिल्य का प्रधान समय था । श्री धर्मदासगणी की उपदेशमाला, हरिभद्र सूरि के ग्रन्थ और महानिशीथ के अमुक लेखों से सिद्ध होता है कि वह समय शिथिलाचारियों के प्राबल्य का समय था ।

(११) अध्ययन ८– हे भगवन् आचार्यों को कितना प्रायश्चित्त आता है ? **उत्तर–** उसी अपराध में १७ गुना प्रायश्चित्त । यदि शील में स्खलना वाले हों तो उन्हें तीन लाख गुणा प्रायश्चित्त आवे ।

(१२) अध्ययन दूसरे में– स्त्री की योनि में हर वक्त ९ लाख समुर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव रहते हैं । एक ही बार में व्यक्ति उन जीवों का नाशक बनता है । सर्व केवली उन जीवों को देखते हैं । और उसके आगे की गाथा में कह दिया कि– वे जीव केवल ज्ञान का विषय मात्र है । पर केवली उन्हें देखते नहीं हैं । अवधिज्ञानी जानते हैं, पर देखते नहीं । मनपर्यव ज्ञानी जानते भी नहीं, देखते भी नहीं।

(१३) सूक्ष्म पृथ्वी काय को किलामना हो तो सर्व केवली उसे अल्पारंभ कहते हैं और जीव का विनास संभव हो तो महारंभ कहते हैं ।

(१४) तीसरे अध्ययन में– जिसे रात-दिन घोखने पर आधा श्लोक भी याद न हो उसे क्या करना चाहिए ? उत्तर में भगवान ने कहा– उसे

स्वाध्यायी की सेवा करनी चाहिए और २५०० नवकार मंत्र को एकाग्र चित्त से घोखना चाहिए ।

(१५) अध्ययन चौथा में- रत्नद्वीप के मनुष्यों द्वारा जल मनुष्यों से अंडगोलक प्राप्त करने की विधि बताई । यह विधि भी अन्य आगम में नहीं आई । बाद के ग्रंथों में इसकी नकल हुई । और ''ज्यादा विवेचन के लिये प्रश्न व्याकरण के वृद्ध विवरण को देख लेना'' ऐसा संकेत मूल पाठ में ही कर दिया गया है ।

(१६) अध्ययन पाँच में- शासन में आचार्यों की संख्या ५५ करोड़ लाख, ५५ करोड़ हजार ५५ सौ करोड़ अर्थात्- ५५, ५५, ५५, ५५, ००, ००, ००० होगी, यह भी कोई आगम में नहीं है ।

(१७) इसी अध्ययन में- मुनि, संघ, तीर्थ, गण, प्रवचन, मोक्ष मार्ग, दर्शन ज्ञान चारित्र घोरग्रतप, और गच्छ, इन सब को एकार्थक बताया है ।**गाथा-**

**मुणियो, संघ, तित्थं, गणपवयण मोक्ख मग्ग एगट्ठा ।**
**दंसण णाण चारित्ते घोरूग्गतवं चेव गच्छ णामे ॥ अ.५गा.१३**

(१८) एक स्थान पर लिखा है कि "ऐसे नाम धारी सूरी होंगे कि जिनका नाम लेने से भी प्रायश्चित्त लगेगा यह निश्चित समझो" **गाथा-**

**भूए अजाइ कालेण, केइ होहिंति गोयमा सूरि ।**
**णाम गहणेण वि जेसिं, होज्ज नियमेण पच्छित्तं ।।**

(१९) दुप्पसह आचार्य और विष्णु श्री साध्वी उपवास में काल कर प्रथम देवलोक में जायेंगे ।

(२०) साध्वी संपर्क -

**जत्थ य गोयमा साहु अज्जाहिं सगे पहम्मि अहुणा ।**
**अववाएण वि गच्छेज्जा, तत्थ गच्छम्मि का मेरा ॥**
**जत्थ य अज्जा लद्धं पडिग्गहमादि विविहमुवकरणे ।**
**परिभुंजई साहुहि ते गोयमा केरिसे गच्छं ॥ अ.५गा.१००**

(२१) आचार्य वज्र-उनके ५०० शिष्य बिना आज्ञा तीर्थ यात्रा के लिये रवाना हुये । उनके पीछे जाते हुए आचार्य वज्र ने कहा हे महाभागो! साधु साध्वी के लिये तीर्थकर भगवान ने २७००० स्थंडिल कहे । उनके शोधते हुए उपयोग पूर्वक चलना चाहिए । उपयोग शून्यता से जैसे तैसे नहीं चलाना चाहिए । बेइन्द्रिय तेइन्द्रिय के संघट्टे जनित कर्म बंध का सर्व





तत्त्वों का सारभूत सूत्र भूल गये क्या ? विचार करो। इस प्रकार समझाने पर भी हितावह वचन नहीं माना तो एक का वेश छीन लिया तो शेष सब भाग गये(संक्षिप्त)।

(२२) एक समय आचार्य कुवलय प्रभ विहार क्रम से चैत्य वासियों के क्षेत्र में पहुँचे । चैत्यवासियों ने वंदन कर सत्कार कर ठहरा कर कहा - आप यहीं वर्षावास करें । आपके उपदेश से सुन्दर चैत्य बन जायेगा और बहुत लाभ होगा।***ताहे भणियं तेण महाणुभागेणं गोयमा, जहा भो पियंवए । जइवि जिणालए तहावि सावज्जमिणं णाहं वायामितेणं एयं आयरिज्जा, एयं च समय सारवरं तहिं जहाठियं, अविवरीयं णीसंकं भणमाणए णं तेसिं मिच्छदिट्ठी लिंगीणं साहु वेसधारीणं मज्झे गोयमा । आसंकलियं तित्थयर नाम कम्म गोयं तेण कुवलयपभेणं, एगभवावसेसी कओ भवोयहि । ५ /१२९ ।***

**भावार्थ :** चैत्य की प्रेरणा के उत्तर में कुवलय प्रभ आचार्य ने उस कार्य को सावद्य और अकरणीय बताकर निषेध कर दिया । इस तरह के सार पूर्ण निशंक वचन कहते हुए उन आचार्य ने उन शिथिलाचारी **मिथ्यादृष्टि वेषधारियों** के बीच उसी समय तीर्थंकर नाम कर्म का बंध कर लिया और एक भवावतारी बन गये ।

(२३) व्रत भंग करने के लिये मच्छीमार के भव से आठ गुणा पाप कहा, यथा- **आजम्मेणं तु जे पावे, बंधेज्जा मच्छ बंधगो ।**
**वय भंगे काउमाणस्स, तं चेव अट्ठगुणं मुणे (६ (१४९)**

''महानिशीथ सूत्र भले ही ऐसा कह दे पर सिद्धांत ऐसा नही कहता । सिद्धांत से तो व्रत शुद्ध पालने वाला उत्तम, अशुद्ध करने वाला मध्यम और अव्रती जघन्य माना जायेगा ।

(२४) जो निर्दयी पुरूष एक लाख स्त्रियों के ७-८ मास के गर्भ को पेट चीर कर निकल कर काटे, उसको जितना पाप होता है उससे नवगुणा **स्त्री संग** से साधु बांधता । **साध्वी संग** से हजार गुणा और प्रेम वश यह काम करे तो **करोड गुणा,** तीसरी बार करे तो **बोधि का नाश** करे ।

(२५) सातवे अध्ययन में कठोर, कर्कश भाषा, कषाय, क्लेश के अनेक प्रायश्चित्त वर्णन है ।***उद्धृत- प्रबंध पारिजात, पं. कल्याण विजय गणी***

**नोट-** यह निबंध लगभग उक्त प्रबंध पारिजात ग्रंथ से संकलन मात्र है

अर्थात इसमें कथित वाक्य महानिशीथ सूत्र के और मूर्तिपूजक संत श्री कल्याण विजय गणी के है ।

**निबंध-४०**

## कल्प सूत्र की रचना सम्बन्धी परिज्ञान

आगम लेखन काल के समय में तीन कल्प सूत्र विद्यमान थे जिनका देवर्द्धिगणी ने नंदी सूत्र में कथन किया है । १.'कप्पो' (वृहत्कल्प सूत्र) जो कि छेद सूत्र है एवं कालिक श्रुत है । २. 'चुल्लकप्प सूत्र' ३. 'महाकप्प सूत्र' ये दोनों उत्कालिक सूत्र है और दोनों ही आज अपने नाम से स्वतंत्र रूप से अनुपलब्ध है ।

यदि चौथा पर्यूषणा कल्प सूत्र देवर्द्धि गणी ने संपादित कर पृथक किया होता तो इसका नाम भी कालिक सूत्र की सूची में नंदी में किया होता तो निर्युक्तिकार के सामने दशाश्रुतस्कंध में रहना चाहिये था । अत: नंदी सूत्र में अनिर्दिष्ट यह पर्युषणाकल्पसूत्र देवर्द्धि के समय भी स्वतंत्र सूत्र रुप में नहीं बना था, न दशाश्रूतस्कंध की आठवी दशा में इसका यह स्वरुप था । देवर्द्धि के बाद करीब २०० वर्ष तक भी इसका अस्तित्व नहीं था , यह स्पष्ट है । अत: देवर्द्धि के समकालीन चतुर्थ कालकाचार्य ने इसका सभा में वाचन किया, यह कथन भी कल्पना मात्र है । क्यों कि इस सूत्र का प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था ।

धुवसेन राजा तीन हुए है । जिसमें प्रथम धुवसेन राजा का पुत्र आनंदपुर में विक्रम संवत ५८४ में काल धर्म को प्राप्त हुआ । चतुर्थ कालकाचार्य विक्रम संवत् ५२३ तक रहे । क्योंकि **दुषमाकाल श्रमण संघ स्तोत्र** में भूतदिन्न के बाद कालकाचार्य को ग्यारह वर्ष तक पाट पर रहना बताया है ।अत: राजा के पुत्रशोक दूर करने के लिये सभा में कल्पसूत्र कालकाचार्य के द्वारा वाचना, यह भी असत्य मनघडंत असंगत कल्पना है ।

सूत्र लेखन के बाद निकट काल में ही आवश्यक सूत्र व आचार सूत्रों की व्याख्या रूप निर्युक्तियों की रचना हुई । फिर उनके भाष्य चूर्णी बने । उसके बाद आठवीं शताब्दि में हरिभद्र सूरि ने आवश्यक सूत्र की टीका करी । गंधहस्ती ने अंग सूत्र की टीका शुरू की जो प्रथम आचारांग के आगे न बढ पाये । फिर शीलांकाचार्य दो अंग शास्त्र के टीकाकार





हुए । उसके बाद मलयगिरि महान उत्साही टीकाकार हुए ।

यदि कल्प सूत्र की रचना देवर्द्धि गणी और कालकाचार्य के समय होकर सभा में वाचन शुरू होता तो ऐसे प्रचलित सूत्र की आठ सौ वर्ष तक हुए महान व्याख्याकारों में से एक भी विद्वान ने टीका क्यों नहीं की ? उन व्याख्याकारों एवं विद्वानों ने कहीं भी पर्यूषणाकल्पसूत्र का प्रथक्करण व सभा में वांचन जैसी बात का कोई निर्देश भी नहीं किया है और न ही इस सूत्र का कहीं नामोल्लेख किया ।

महान टीकाकार श्री मलयगिरि ने देवी से वरदान प्राप्त करके अनेक सूत्रों की टीकाएँ रची । यदि पर्यूषणाकल्पसूत्र भी कोई स्वतंत्र सूत्र होता और व्याख्यान में वांचा जाता होता तो उस सूत्र के टीका की रचना करना भी उन मलयगिरिजी के लिये अत्यंत आवश्यक हो जाता, परन्तु ऐसा नहीं हुआ ।

पर्यूषणाकल्पसूत्र का स्वतंत्र स्वरूप बनने और सभा में वांचन शुरू होने के बाद शीघ्र ही उसकी व्याख्या बननी शुरू हुई । प्राथमिक व्याख्याएँ कल्पांतरवाच्य कहलाई । जो विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में हुई । उसके बाद टीकाएँ आदि बनी ।

यदि कल्प सूत्र दशाश्रुतस्कंध का आठवाँ अध्ययन रूप इन कल्पांतर वाच्य व टीकाकारों के सामने होता तो इसकी टीका की रचना निर्युक्ति को अपने में समावेश करते हुए होती । जैसा कि छेद सूत्रों की तथा दशवैकालिक, आवश्यकसूत्र की टीकाएँ निर्युक्तियों को अपने में समाविष्ट करते हुए बनी हुई है। कल्पांतरवाच्य श्री मलयगिरी आचार्य के बाद(१३वीं १४वीं शताब्दि के लगभग)रचे गये है । अत: मलयगिरीजी के बाद कल्प सूत्र का यह स्वरूप बना और सभा में वांचन शुरू हुआ ।

दशाश्रुतस्कंध कालिक सूत्र है और कल्पसूत्र उत्कालिक सूत्र है तभी इसका दोपहर में वांचन होता है अत: इसका आधार उत्कालिक सूत्र ही रहा है, न कि कालिक दशाश्रुतस्कंध । सभा में वांचन शुरू करने वालों ने सूत्र का काल ध्यान न रखा हो ऐसा भी संभव नहीं हो सकता।

आठ सौ वर्ष बाद सम्बन्ध जोडने वालों से यह भूल होना भी संभव है । तभी चतुर्थ कालकाचार्य और प्रथम धुवसेन के पुत्र की मृत्यु

का समय भी सम्बन्धित नहीं होता है और उपरोक्त अनेक तर्कों से असंगतता सिद्ध हो जाती है ।

चुल्लकल्पसूत्र उत्कालिक सूत्र है सांडिल्य के अज्ञात नाम वाले शिष्य ने बनाया है । उसमें तीर्थकर वर्णन व स्थविरावलि सांडिल्य तक गद्य पाठ मय बनाई होगी । उन दोनों के विषयों को १३वीं १४वीं शताब्दि में किसी आचार्य ने एक रूप किया होगा और फिर बाद में व्याख्यान में शुरू हुआ होगा । सूत्र का महत्त्व कथन करते-करते आगे बढ कर नाम साम्य होने से दशाश्रुतस्कंध के आठवे अध्ययन को भी इच्छित सुधारा वधारा करके जोड़ दिया गया। प्रक्षिप्तता-मिश्रणता को गुप्त रखने हेतु देवर्द्धि तक स्तुति वंदन बढाया गया तथा ९८० व ९९३ के संवत्सर का असंगत विकल्प भी जोड दिया गया फिर और ऊंची प्रामाणिकता का सिक्का लगाने के लिये एवं १२०० श्लोक प्रमाण पूरा सूत्र प्राचीन भद्रबाहु के नाम से प्रसिद्ध कर दिया ।

किसी ने तो १४वीं शताब्दि में दशाश्रुतस्कंध सूत्र की आठमी दशा में पूरा कल्पसूत्र लिख भी दिया । उसके पहले की दशाश्रुतस्कंध की किसी भी हस्त प्रत में पाठ नहीं है, न चूर्णि निर्युक्तिकार के सामने था । अत: यह लेखन भी किसी मूर्तिपूजक के अपने अभ्यस्त प्रक्षेप दोष का परिणाम हुआ ।

**सार:-** उक्त प्रमाण चिंतन से निष्कर्ष यह हुआ कि महान टीकाकार श्री मलयगिरी के बाद ही कल्प सूत्र बना है । पहले चुल्लकल्प सूत्र के रूप में व्याख्यान में वाचन हुआ । फिर अन्य सामग्री जोड कर उसे पर्यूषणा कल्पसूत्र कहा जाने लगा । फिर नाम साम्य से दशाश्रुतस्कंध का आठवां अध्ययन कहने लगे गये । अंत में उसे ही प्राचीन भद्रबाहु कृत और भगवद् भाषित सूत्र कहा जाने लगा।

**निबंध-४१**

## मुनि दर्शन विजय पट्टावली भाग-१, पेरा-१ समीक्षा

चतुर्दश पूर्वधरी श्री भद्रबाहु स्वामी ने नवम पूर्व से दशाश्रुत स्कंध उद्धृत किया, जिसके आठवें अध्ययन में कल्प सूत्र की रचना हुई **कप्प सुत्त थेरावली** ग्रन्थ का समावेश उसी कल्प सूत्र में होता है । पश्चात् उस परंपरा में, देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने वी. नि. सं. ९८० की वल्लभी





वाचना में विद्यमान एवं अपने नाम तक के गणनायकों की पट्टावलि योजित कर दी-जोडदी ।'

**टिप्पण :-** श्री भद्रबाहु स्वामी ने **दशाश्रुतस्कंध सूत्र** का ९वें पूर्व से उद्धार किया इसमें तो कोई चर्चा को स्थान नहीं है । शेष विषय प्राय: विचारणीय है ।

(१) दशाश्रुतस्कंध में दशा कही गई है न कि अध्ययन । तथा अन्य तीन छेदसूत्रों में उद्देशे कहे गये है । उसकी ८वीं दशा में चातुर्मास(पज्जोसवणा) के कल्प्याकल्प्य की कुछ समाचारी का स्थान प्राप्त था । जिसका नाम अन्य दशा के समान **आठवीं दशा** इतना रहा होना संभव है भद्रबाहु स्वामी ने इस दशा में कल्प सूत्र की रचना करी यह कथन पुरातन आधार चिंतन की अपेक्षा रखता है ।

दशाश्रुतस्कंध के शेष ९ दशाओं के विषय में विचार-प्रेक्षा करने से ज्ञान होता है कि उन दशाओं की उत्थानिका अपने आप में विशिष्ट ढंग और प्राय: एकता को लिये हुए है । उसमें या तो स्थविर भगवंतो द्वारा या स्वयं भगवान के मुखारविंद द्वारा सिर्फ एक विषय का सीमित रूप से कथन किया गया है । तदनुरूप आठवीं दशा में भी चातुर्मासिक सामाचारी रूप एक विषय का कथन होना ही उचित प्रतीत होता है ।

जब कि कल्प सूत्र तो स्वतंत्र सूत्र रूप है । उसकी उत्थानिका का ढंग दशाश्रुतस्कंध की अन्य दशाओं जैसा नहीं है । कल्पसूत्र का नाम नंदीसूत्र की सूत्र सूचि में भी नहीं है । वहा चुल्लकप्पसुयं और महाकप्पसुयं दो सूत्रों का नाम है जो देवर्द्धिगणी के लेखन व्यवस्था तक भी प्राचीन रूप में थे जिसमें २४ तीर्थकर और गणधर रूप स्थविरों तक का वर्णन था । जिसकी भलावण लेखन काल के समय समवायांग में लगाई गई है । यथा- **कप्पस्स समोसरणं जाव गणहरा सावच्चा निरवच्चा वोछिण्णा** इसलिए पर्यूषणाकल्पसूत्र चुल्लकल्पसूत्र और महाकल्पसूत्र आदि के सम्मिश्रण से बना हुआ यह सूत्र है ।

अत: 'जिसके आठवें अध्ययन में कल्पसूत्र की रचना हुई' यह कथन सत्यता के किंचित भी नजदीक नहीं है ।

(२) जब चुल्लकल्पसूत्र में गणधर रूप स्थविरों तक वर्णन ही रहा था। जिसकी भलावण समवायांग सूत्र में है। अत: अन्य स्थाविरों का कथन

चुल्लकल्पसूत्र में मौलिक रूप में नहीं था । जो स्थविरावली आज कल्प सूत्र में उपलब्ध है वह अनेक विकल्प और संक्षेप विस्तार और अव्यस्था और अस्पष्टता को लिये होने से वह सौत्रिकता के गुण से भी युक्त नहीं है । अत: प्रस्तुत ग्रन्थ में **कल्पसूत्र थेरावली** का समावेश उसी कल्पसूत्र में होता है' यह कथन भी अनुपयुक्त है । उस स्वतंत्र कल्पसूत्र में यह स्थविरावली कब किसने जोड़ी, इसकी भी कसोटी करनी चाहिये ।

(३) देवर्द्धिगणी ने कल्पसूत्र में कुछ भी जोडा हो, उसका कोई मैलिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है । ये मात्र बहुत बाद की कल्पनाएँ है । क्योंकि देवर्द्धिगणी का या उनके समय के रचित किसी ग्रंथ का ऐसा कोई प्रमाण नहीं है । अत: किसी की रचना में अत्यन्त आवश्यकता या प्रसंग के बिना कुछ भी प्रक्षिप्त करना देवर्द्धि के लिये कहना, संगत नहीं है । उनका कार्य तो मात्र पूर्व की दोनों वाचनाओं का समन्वय कर व्यवस्थित चिरस्थाई लेखन कराना था । अत: उनके द्वारा स्थविरावली जोडना या ९८० व ९९३ का पाठ प्रक्षेप करना आदि कल्पना बहुत बाद की है और विचारणीय भी है । क्योंकि दशाश्रुतस्कंध के निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु ने इन दोनों बातों की कोई चर्चा विवेचन नहीं किया और उस विषय को छुआ भी नहीं है । अत: कल्पसूत्र का यह रूप भी द्वितीय भद्रबाहु के बाद का बना है जो इतिहास वेत्ता मुनि श्री कल्याण विजय जी के कथन के भी अनुकूल जाता है । उन्होंने बताया है कि धुवसेन नाम के राजा तीन हुए हैं जिसमें एक तो द्वितीय भद्रबाहु के समय वीर नि. १०४६ से ७६ में हुए और दूसरे तीसरे धुवसेन राजा द्वितीय भद्रबाहु के बाद हुए । अत: कालकाचार्य से किसी का भी धुवसेन सम्बन्ध नहीं बैठ सकता है । अत: 'देवर्द्धिगणी ने अपने नाम तक की पट्टावली जोड दी' इत्यादि कथन भी असत्य है । क्योंकि उनके द्वारा किया गया होता तो द्वितीय भद्रबाहु उसे निर्युक्ति में जरूर स्पर्श करते और उसकी चर्चा विचारणा करते ॥

देवर्द्धिगणी के द्वारा स्वयं खुद को वंदन करना कदापि उचित नहीं हो सकता । जैसा कि कल्प सूत्र में आज भी मौजूद है । अत: जो यह कहा गया है कि "उस वलभी वाचना(लेखन समय) में विद्यमान अपने नाम तक के गणनायकों की पट्टावली देवर्धिगणी ने योजित करदी" यह कथन भी कसौटी करने पर संगत नहीं हो सकता । क्योंकि उस समय





में विद्यमान कालकाचार्य, शांतिसूरि, देव वाचक आदि का तो नाम निशान भी नहीं है जब कि शांति सूरि और कालकाचार्य की मौजदगी भी इतिहास प्रसिद्ध है । तथा अपने नाम तक के गणनायकों का पाठ जोड़ना देवर्द्धि के लिये कैसे संगत हो सकता है । आज का एक साधारण लेखक भी ऐसा वर्णन वंदन खुद के लिये नहीं कर सकता । इस तरह यह कथन चिंतन की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता ।

इसलिये इस ऐतिहासिक ग्रन्थ का प्रथम पृष्ट का यह वाक्य भी केवल ढर्रा रूप की नकल मात्र है । हमारे इतिहासज्ञ बनने वालों को ऐतिहासिक ग्रन्थ पढ़ने और नकल करने के अतिरिक्त मौलिक आगमों की बारंबार स्वाध्याय करते रहना चाहिए और अपने चिंतन को उन आगम प्रकरणों, अनुभवों की कसौटी पर उतारने का प्रयत्न भी अवश्य करना चाहिए । केवल ग्रन्थों के अंधानुकरण में या नकल करने में ही अपनी बुद्धि को सीमित नहीं करना चाहिये ।

**निबंध-४२**

## मध्यकालीन इतिहास और आगम साहित्य

आज हमारे सामने इतिहास को जानने की सामग्री जो भी उपलब्ध है, वह बहुत ही विशाल मात्रा में है । उसके आधार पर अनेक विद्वानों ने अपने चिंतन प्रकट किये है । फिर भी मूल आधार इतना शुद्ध और मजबूत नहीं होने से, नूतन विज्ञान के समान हमारा इतिहास भी नई खोज व सत्य समीक्षा की सदा अपेक्षा रखता है।

आज जो भी साहित्य हस्तलिखित उपलब्ध है, उसमें हजार वर्ष से पुरानी कोई भी प्रत नहीं मिलती है । जो भी ग्रन्थ उपलब्ध हो रहे है, जिनमें ऐतिहासिक सामग्री या पट्टावली आदि इतिहास उपलब्ध हैं, वे भी वीर निर्वाण २०वीं शताब्दि के या बहुत बाद के हैं । खुदाई की सामग्री में भी श्वेतावर दिगंबर या अन्य एक दूसरे के कुशलबुद्धि करामात पर शंकित है । अत: उस पर भी कहाँ तक विश्वास किया जाय यह विचारणीय है । क्योंकि वीर निर्वाण के हजार वर्ष के बाद का जो समय है, वह अपने अपने धर्म की जड़ों को सब तरफ से मजबूत करने के वातावरण वाला था । जिसमें ग्रंथ

रचना, चेत्य व बिंब रचना, शिला लेख रचना, राज्य सहयोग, मंत्र-विद्याबल, चमत्कार और अनैतिक बल प्रवृत्ति का भी अवलंबन था। यह सब उपलब्ध इतिहास की जानकारी से ज्ञात होता है ।

वीर निर्वाण की दसवीं शताब्दि तक का जो काल व्यतीत हुआ उस काल में कुछ आगम रचना संकलना तो हुई है किन्तु देवर्द्धिगणी की लेखन व्यवस्था तक का जो भी आगम आज उपलब्ध है उसमें उस हजार वर्ष संबंधी इतिहास विषयक जानकारी नहीं के समान है, ऐसा कह दिया जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी ।

पट्टावलिया और गुरु, कुल, शिष्य-परिवार लेखन की परंपरा भी वीर निमार्ण के डेढ हजार वर्ष के भी बाद में चलाई गई प्रणालिका है । अर्थात् १७ वीं १८ वीं शताब्दि की है ।

नंदी सूत्र के प्रारंभ में ५० गाथाओं से जो स्तुति की गई है वह भी कोई पट्टावली नहीं है । शासन पति, संघ, २४ तीर्थकर, ११ गणधरों का स्मरण किया है उसके बाद सुधर्मा स्वामी से दूष्यगणी तक वंदन गुणग्राम किया है । इसमें कोई शिष्य परंपरा पाट परंपरा की कल्पना करना या युग प्रधान पट्टावली कहना एक जटिल समस्या खड़ी करना है । रचनाकार ने ऐसी कोई प्रतिज्ञा या उत्थानिका नहीं करी कि मैं क्रमिक पाट परंपरा या शिष्य परंपरा या युगप्रधान पट्टावलि कह रहा हूँ । तथा उपसंहार रूप अंतिम गाथा में भी कुछ नहीं कहा कि "ये क्रमिक पाट परंपरा प्राप्त को वंदन किया और शेष सभी साधुओं को अब समुच्चय वंदन हो" इत्यादि कोइ स्पष्टीकरण नहीं है ।

अतः नंदी सूत्र में कोई पट्टावली संग्रहित हुई हो यह बात नहीं है । किन्तु स्मृति परंपरा में और प्रसंग प्राप्त जो भी विशिष्ट श्रुतधर, कालिकश्रुत व अनुयोग के धारी प्रसिद्धि प्राप्त दिवंगत पूर्वधरों को एवं दूष्यगणि, लौहित्य, भूतदिन(संभवतः) परिचय प्राप्त पूर्वधरों को बड़े छोटे के क्रम से(भले ही वे कोई-कोई समकालीन भी थे) वंदन किया है और उपसंहार रूप अंतिम गाथा में शेष बचे हुए अर्थात् जिनका नाम स्मृति में या प्रसंग में नहीं आया है ऐसे कालिकश्रुत अनुयोगधरों को वंदन किया है । जब परिशेष में भी कालिक श्रुत अनुयोगधरों(पूर्वधरों) को वंदन किया तो जिन्हें नाम और गुण कीर्तन सहित वंदन किया वे भी कोई





पाट परंपरा या शिष्य परंपरा न हो कर ऐसे ही विशिष्ट प्रख्यात श्रुतधर मात्र है ऐसा स्पष्ट ज्ञात होता है । स्कंदिलाचार्य से लेकर दूष्य गणी तक के जो श्रुतधरों के नाम है, उनकी उस १४० वर्ष के काल में पाट परंपरा जमाना भी बहुत उलझन युक्त है । क्योंकि उसमें के तीन महापुरूष-स्कंदिल, हिमवंत, नागार्जुन, समकालीन, लगभग, व विभिन्न प्रांतवती रहे । तथा दो महापुरूष नागार्जुन, और भूतदिन्न क्रमशः ७८ व ७९ वर्ष की उम्र के हो गये हैं । अतः यहाँ जिन सात को वंदन किया है उन्हें पाटनुपाट मानना संगत हो ही नहीं सकता।

इस तरह नंदी सूत्र के रचना प्रसंग में भी पाट परंपरा अथवा पट्टावलि लेखन पद्धति का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था ऐसा समझना ही युक्ति संगत हैं ।

निर्युक्तियों के रचनाकार भद्रबाहु स्वामी थे, जो कि आगम लेखन के या नंदी रचना के या देवर्द्धि के बाद में हुए । यह बात अनेक अकाट्य प्रमाणों से मंदिरमार्गी विद्वान संत श्री पुण्यविजय जी ने बृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना में विस्तार सहित समझाई है । जिसे इस पुष्प में दिया जा चुका हैं ।

(१) दशाश्रुतस्कंध पर निर्युक्ति रचना की गई । उसमें प्रारंभ की गाथाओं में दस दशाओं के नाम के साथ निर्युक्तिकार ने यह भी समझाया कि इस सूत्र में छोटी-छोटी(दस) दशाओं का कथन है और बड़ी दशाएँ ज्ञाता सूत्र आदि में है । इस कथन से, आठवीं दशा रूप कहा जाने वाला कल्पसूत्र, अकेला १२०० श्लोक प्रमाण का होने से, निर्युक्ति रचनाकार के समाने नहीं था, यह स्पष्ट होता है ।

(२) आठवींदशा की निर्युक्ति गाथाओं में प्रारंभ से चातुर्मास(पर्युषणा) कल्प समाचारी का कथन हुआ है और अंत तक सम्भवतः कोई विषयांतर नहीं है । अतः नमस्कार की आदि युक्त पट्टावलि तक का कल्पसूत्र का पाठ यदि रचना काल से ही आठवीं दशा में होता और अंत में पर्युषण कल्प समाचारी का पाठ होता, (जैसा कि आज के कल्प सूत्र में है) तो उसका कथन निर्देश उसकी निर्युक्ति में भी प्रारंभ में ही किया जाता । जबकि ऐसा नहीं है ।

(३) तीर्थंकर वर्णन के अंत में आया संवत्सर सम्बन्धी वैकल्पिक पाठ व

देवर्द्धि तक के वंदन गुणग्राम का वर्णन भी, भद्रबाहू प्रणीत आठवें अध्यय में मानना और (१२००+९००) एकवीस सौ श्लोक प्रमाण दाशाश्रुतस्कंध सूत्र चौदह पूर्वी भद्रबाहु रचित मानना तो हास्यास्पद ही है ।

(४) निर्युक्तिकार के एक शताब्दि से भी अधिक पश्चात्वर्ती चूर्णीकार ने भी संवत्सर व वैकल्पिक पाठ संबधी कोई निर्देश या स्पष्टीकरण अथवा चर्चा नहीं की है । इस पाठ की चर्चा १३वीं शताब्दि के पूर्व किसी भी व्याख्याकार ने कहीं पर भी नहीं की है ।

(५) निर्युक्तिकार ने आठवीं दशा की व्याख्या में न तो कल्पसूत्र का नामकरण बताया । न इस दशा के प्रथक्करण का जिक्र किया । न इसके परिचय में ऐसा बताया कि इसमें देवर्द्धि ने संशोधन वर्धन किया और कालकाचार्य ने सभा में वांचन शुरू किया । जब निर्युक्ति एवं चूर्णिकार इस दशा के वर्णन में ऐसा कुछ भी इतिहास का कथन नहीं कर रहे हैं जो कि देवर्द्धि व कालकाचार्य के निकटवर्ती(छठी सतावीं आठवीं शताब्दि के) हैं तो फिर सैकडों वर्षों बाद १३वीं १४वीं शताब्दि वाले वह इतिहास लाये ही कहाँ से ? अत: निर्युक्ति चूर्णी रचना के बाद और १३वीं १४वीं शताब्दि के आसपास कल्प सूत्र का उपलब्ध स्वरूप तैयार किया गया समझना चाहिए ।

(६) प्राचीन भद्रबाहु स्वामी ने छेद सूत्रों की रचना साध्वाचार के विषय को लेकर पूर्वों के आधार से की है तो उसमें नौ व्याख्यान रूप उपलब्ध कल्पसूत्र विषयांतर रूप ही होता है । चिंतन के लिये वृहत्कल्प, व्यवहार व दशाश्रुत स्कंध का संपूर्ण वर्णन मूल पाठ का देखा जा सकता है ।

इस तरह जब कल्पसूत्र की मौलिकता, प्रामाणिकता ही संदेह पूर्ण है, तो उसमें उपलब्ध पट्टावली की प्राचीनता कितनी सच्ची हो सकती है? यह स्वत: समझा जा सकता है ।

इस प्रकार कल्पसूत्र और नंदी सूत्र की पट्टावली सम्बन्धी वर्णन को अलग कर दिये जाने के बाद जो भी पट्टावलियाँ उपलब्ध है, वे १३ वीं शताब्दि अर्थात् वीर निर्वाण १८ वीं शताब्दि के पूर्व नहीं जाती है। अत: यह सिद्ध होता है कि आज जो भी पट्टावलियाँ अथवा इतिहास उपलब्ध हे उसका अधिकांश विभाग वीर निर्वाण की १८ वीं शताब्दि की रचना और कल्पना एवं अनुभव का है । प्राचीन व्याख्या ग्रन्थों में





कुछ कुछ सामग्री उपलब्ध है उसमें भी समय समय पर विकृतिएँ एवं प्रक्षेप दोष हुए हैं ।

**निबंध–४३**

## ऐतिहासिक गंभीर उलझनों का समाधान
## (नंदी सूत्र एवं पाठ परंपरा विचारणा)

नंदी सूत्र के रचनाकार देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण के लिये प्राय: सभी सम्मत है । उसमें ज्ञान के विषय के प्रारंभ की ५० गाथाओं में श्रमण पुंगवों की स्तुति गुणग्राम एवं वंदन किया गया है । उनके संबंध में विद्वान इतिहासज्ञ कई प्रकार की विचारणाएँ प्रगट करते हैं । साथ ही कल्पसूत्र और अन्य पट्टावलियों आदि से तुलना विचारणा करते हैं । किन्तु उसके मौलिक सत्य को पकड़े बिना समाधान की अपेक्षा, उलझने ही विशेष सामने आती है ।

नंदी के अतिरिक्त देवर्धिगणी की अन्य कोई रचना या संकेत नहीं मिलते है कि संवत भेद कब क्यों पड़े ? किसने गुर्वावली लिखी या पाट परंपरा लिखी या युग प्रधानावली लिखी अथवा स्थविरावली लिखी ।

कौन सी परंपरा देवर्द्धिगणी की है, कौनसी कालकाचार्य की है, ऐसा भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है । माथुरी युग प्रधान पट्टावली है या वल्लभी युग प्रधान पट्टावली है या कितने कितने वर्ष किसका पाट चला है ? ऐसा विधिवत् व्यवस्थित प्राचीन उल्लेख भी नहीं मिलता है । इसलिये इस संबंधी अधिक कल्पनाएँ प्राय: बाद में की गई है । इसी कारण पूर्ण सत्यता को समझ पाना विद्वानों के लिये अत्यन्त कठिन हो रहा है ।

एक तरफ वलभी युग प्रधानावली नागार्जुन और भूतदिन्न इन दो के क्रमश: ७८ और ७९ वर्ष करके कालकाचार्य तक पहुँच जाती है । दूसरी तरफ माथुरी युग प्रधानावली इन दोनों को शामिल रखते हुए उसी काल में (१५० वर्ष में) अन्य ५ महापुरूषों को और भी समाविष्ट कर लेती है, तब देवर्द्धिगणी तक पहुँचती है । जबकि कल्प स्थविरावली इन सात में से एक का भी नाम लिये बिना अन्य नामों से सांडिल्य तक

पहुंच जाती है और देवर्द्धि को सांडिल्य का शिष्य भी मान लिया जाता है । और कालकाचार्य को देवर्धि के समकालीन माना जाता है ।

वीर निर्वाण संवत् ८४० के आसपास माधुरी-वल्लभी वाचना हुई, उसमें स्कंदिल और नागार्जुन की मुख्यता बताई जाती है । नंदी रचना वीर निर्वाण ९९० के आसपास मानी जाती है । स्कंदिल से देवर्द्धि तक के सात महापुरूषों का अंतर काल १५० वर्षों का होता है।

१५० वर्ष का काल तीन प्रकार से मिलता है १. नागार्जुन और भूतदिन्न इन दो से पूर्ण होता है २. स्कंदिल से दूष्यगणि तक नागार्जुन और भूतदिन्न साहित सात महापुरूष से पूर्ण होता है । ३. कल्प सूत्र गत धर्म सिंह और सांडिल्य दो व्यक्ति से पूर्ण होता है ।

सांडिल्य का शिष्य देवर्द्धि को माना जाय तो नंदी में उसके गुरु सांडिल्य का नाम ही नहीं है और कल्प सूत्र में दूष्य गणी तक आये नंदी सूत्रोक्त उन सातों ही महापुरूषों में से एक का भी नाम नहीं है । इत्यादि विविध कल्पनाओं की उलझने मूल सत्य को समझे बिना सुलझ नहीं सकती है ।

यदि नंदी और कल्प सूत्र का कर्ता एक है तो वह दूष्यगणी का शिष्य है या सांडिल्य का ? इसका कोई समाधान नहीं हो सकता और कल्प सूत्र में देवर्धि को भी वंदन क्यों किया गया है ? यह प्रश्न एक जटिल समस्या को उपस्थित करने वाला है, साथ ही सत्य समाधान को उजागर करने वाला भी है ।

**समाधान :-** नंदी सूत्र में किसी भी प्रकार की **आवलिका** नहीं है अर्थात् स्थविरावली युगप्रधानावली, गुर्वावली अथवा पाटावली नहीं है । अतः क्रम की या समय की किसी भी उलझन में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है ।

वास्तव में नंदीसूत्र के कर्ता ने उक्त गुर्वावली आदि की प्रतिज्ञा भी नहीं करी है । न किसी अन्य रचना में उन्होंने कहा कि मैंने नंदी में गुर्वावली आदि का कथन किया है । नंदीसूत्र में नाम सहित गुण ग्राम में और अंत में जो भी संकेत सूचित किया गया है उससे तो यही सिद्ध होता है कि नंदी कर्ता का लक्ष्य किसी प्रकार की आवलिका करने का नहीं रहा है । क्योंकि उन्होंने वैसे किसी शब्द का प्रयोग न करके केवल





कालिक श्रुत एवं उसके अनुयोग को धारण करने वाले विख्यात बहुश्रुतों का स्मरण किया है गुण-कीर्तन, वंदन किया है । इस वर्णन में उन्होंने कहीं समकालीन २ या ३ महापुरूषों का भी कथन कर दिया, कहीं आर्यरक्षित से (२५०) ढाई सौ वर्ष के काल में ४ नाम ही दिये और पिछले डेढ सौ (१५०) वर्ष में सात नाम भी दे दिये हैं । जबकि सात में दो की उम्र बहुत लम्बी ७८ और ७९ वर्ष की भी थी ।

अतः क्रम और काल एवं आवलिका का आग्रह छोड देने पर कितनी ही उलझने स्वतः समाप्त हो जाती है । अन्यथा उनके काल को और पाट परंपरा को जमाने में निरर्थक ही बुद्धि की कसरत करते हुए कई कल्पनाएँ घड़नी पड़ती है फिर भी उससे कोई सार नहीं निकलता है । उलझनें और बढ़ती जाती है ।

कल्पसूत्र और अन्य पट्टावली सम्बन्धी जो भी उलझने है, उसके लिए यह समझना चाहिए कि कल्प सूत्र की मौलिक रचना काल ही घोटाले में है, इसकी रचना और प्रचलन तेरहवीं शताब्दि से पूर्व नहीं जा सकता है ऐसा पुष्प ८ में और इस पुष्प में अनेक विध विचारणा करके समझाया जा चुका है । अन्य पट्टावलियों की रचना भी तेरहवीं शताब्दि से पूर्व नहीं हुई है । मंदिरमार्गी विद्वान भी इसमें सम्मत है । अतः नंदी सूत्र के वर्णन से उन्हें उलझाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है । नंदी रचना काल प्राचीन है एवं उसका वर्णन प्रामाणिक भी है । यदि किसी आवलिका में व्यर्थ ही नहीं उलझें तो नंदीसूत्र के संबंध में कोई उलझन नहीं होती है । इस सूत्र की पचासवीं गाथा में भी उपसंहार करते हुए रचनाकार ने स्पष्ट कर दिया है कि- इस उक्त गुण वर्णन के अतिरिक्त अन्य और कोई भी कालिक श्रुत अनुयोग के धारण करने वाले हुए हैं, उन सब को नमस्कार करके अब मैं ज्ञान की प्ररूपणा करूँगा।

नंदी के लिये युग प्रधानावली की कल्पना करना ही अवास्तविक है । कारण कि आचार्य या गुरु पाट परंपरा तो चल सकती है, गुरु और शिष्य तो बना अथवा बनाया जाता है तथा आचार्य पद भी दिया व लिया जाता है, एक के बाद एक हो भी सकते हैं किन्तु युग प्रधानों के लिये ऐसा कोई व्यवहार और परंपरा नहीं हो सकती । ये तो अपने गुणों से या जिन शासन की प्रभावना करने से क्रम एवं परंपरा रहित जब कभी जहाँ

कहीं भी हो सकते हैं । अत: युग प्रधान के पीछे आवलिका लगाकर उलझना भी कोई मतलब नहीं रखता है । नंदीसूत्र वर्णित कालिक श्रुत अनुयोग के धारण करने वाले हुए और है, उन सब को नमस्कार करके अब मैं ज्ञान की प्ररूपणा करूँगा ।

नंदी के लिये युग प्रधानावली की कल्पना करना ही अवास्तविक है । कारण कि आचार्य या गुरु पाट परंपरा तो चल सकती है, गुरु और शिष्य तो बना अथवा बनाया जाता है, आचार्य पद भी दिया व लिया जाता हे, एक के बाद एक हो भी सकते हैं किन्तु युग प्रधानों के लिये ऐसा कोई व्यवहार और परंपरा नहीं हो सकती । ये तो अपने गुणों से या जिन शासन की पंभावना करने से क्रम एवं परंपरा रहित जब कभी जहाँ कहीं भी हो सकते हैं । अत: युगप्रधान के पीछे आवलिका लगाकर उलझने मे कोई मतलब नहीं है । नंदी वर्णित कालिक श्रुत अनुयोगधरों को युग प्रधान भी समझ लिया जाय तो कोई अनुचित नहीं है । क्योंकि अनुयोग और श्रुत के धारण करने वाले विख्यात बहुश्रतों का युगप्रधान होना स्वाभाविक ही है । किन्तु क्रम के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिये ।

क्रम या आवलिका के आग्रह में फसने से अनेकों विकल्प-कल्पनाएँ उम्र की, वर्षों की और उन उम्र वर्षों को जमाने की करनी पडती है ।इसके अनुभव के लिये देखें 'वीर निर्वाण संवत एवं जैन काल गणना' पं. मुनि श्री कल्याण विजय जी द्वारा संपादित ।

**सार :-** नंदी सूत्र में प्रसिद्धि प्राप्त, और उस स्थल पर वंदन स्मरण गुण ग्राम करने योग्य लगने से उन महापुरूषों का स्मरण वंदन एवं गुण कीर्तन किया गया है । अंतिम वंदनीय श्री दूष्यगणी ही देवर्द्धि के परम उपकारी गुरु थे इसमें संदेह करने की किंचित भी आवश्यकता नहीं है ।

कल्प सूत्र की रचना नंदी से ८०० वर्ष करीब बाद की है एवं अन्य पट्टावलियाँ भी उतनी ही बाद की है । उन्हें ज्यादा प्राचीन समझने के आग्रह से ही उलझनें पैदा होती है । लेकिन वास्तव में वे सभी लगभग देवर्द्धि से ८०० वर्ष बाद की है । वे सभी पट्टावलियाँ अलग-अलग अनुभव एवं परंपरा और उद्देश्य से बनाई गई हैं । अत: इन पट्टावलियों को नंदी से या आपस में मिलान करने की एवं काल, अंतर और उम्र के विभिन्न आग्रह में पड़ने की आवश्यकता नहीं है । कल्प सूत्र एवं अन्य





पट्टवलियों के रचनाकाल सम्बन्धी चर्चा इस पुष्प में यथास्थान कर दी गई है । इस प्रकार के चिंतन सार को हृदय में स्थिर कर लेने पर लगभग उलझनों का समाधान हो जाता है तथा सूत्र विपरीत निर्णय नहीं करना पड़ता है बल्कि नंदीसूत्र की ५० गाथाओं से सम्मत निर्णय होता है ।

## चर्चा विषय में सूचित महापुरूषों की सूची :-

| कल्प सूत्रीय गुर्वावली | माथुरी युगप्रधानावली<br>नंदी सूत्रोक्त | वल्लभी युग प्रधानावली |
|---|---|---|
| ३१ वें सिंह सूरि | २४ ब्रह्मदीपिक सिंह सूरि (७८ वर्ष उम्र) | २४ सिंह सूरि (७८ वर्ष) |
| ३२ वें धर्म सुरि | २५ स्कंदिलाचार्य | २५ वें नागार्जुन (७८ वर्ष) |
| ३३ वें सांडिल्य | २६ हिमवंत | २६ भूतदिन (७९ वर्ष) |
| ३४ वें देवर्द्धि | २७ नागार्जुन (७८ वर्ष उम्र) | २७ सांडिल्य |
| | २८ गोविंद | २८ कालकाचार्य(११ वर्ष) |
| | २९ भूतदिन (७९ वर्ष उम्र) | यह धर्मघोष सूरि कृत सिरि दुसमाकाल श्रमण संघ थवं (स्तोत्र)में है जिसकी रचना तेरहवीं शताब्दि में हुई । वाचक वंश के आचार्यो की नामावली है । |
| | ३० लोहित्य | |
| | ३१ दूष्यगणी | |
| | ३२ देववाचक (देवर्द्धि) | |

**नोट-** मू॰पू॰ विद्वान मुनि श्री कल्याण विजय जी कृत वीर निर्वाण संवत और जैन काल गणना नामक ग्रन्थ से यह तालिका उद्धृत की गई है ।

इस प्रकार इस चिंतन में सूचित विचारणा को स्वीकार कर लेने पर पट्टावलियों को टकराने की उलझने एवं ९८० और ९९३ के संवत मिती सम्बन्धी दिमागी कसरतों की परिसमाप्ति हो जाती है । अर्थात् १३वीं शताब्दि के आसपास कल्पसूत्र के तैयार करने में देवर्द्धि गणी के समय की काल गणना एवं धारणा में अंतर होना स्वाभाविक है । जिसे ही किसी ने इस सूत्र में डाल दिया है । अन्यथा ९८० और ९९३ संवत को देवर्धिगणी आदि की उलझन मानना और निरर्थक ही सूत्र में प्रक्षिप्त करवाने की कल्पना करना, उन आचार्यों की महान आशातना एवं अवहेलना करना ही होता है कि 'वे बडे बडे आचार्य अपने व्यक्तिगत एक तुच्छ हठाग्रह में पड़े और उसे बिना प्रसंग उन्होंने सूत्र में फसाया।'

ऐसी कल्पना और संगति करने वाले भी दया के पात्र होते है । उन्हें उक्त निबन्ध चर्चाका चिंतन मनन करके उक्त महान अपराध और आशातना से बचने का मानस एवं अवसर प्राप्त करना चाहिए ।

० कल्प सूत्र सम्बन्धी विशेष अनुभव निबंध नं॰ ४० में देखें ।

० यदि युगप्रधानावली कभी चली होती तो अभी तक भी चालू क्यों न रहीं ? थोड़े से समय तक ही क्यों चली ?

० यदि कभी वीर निर्वाण संवत में ९८० और ९९३ का मतांतर था तो अभी भी रहना चाहिये था कब सुलझ गया ? जिसे कि देवर्धि आदि भी नहीं सुलझा सके थे ।

वास्तव में दोनों ही अनावश्यक क्लिष्ट कल्पनाएँ है एवं फालतू की पकड़ी गई उलझनें हैं ।

**निबंध-४४**

## तीन आगमों में णमोत्थुणं का पाठ समीक्षा

मूर्तिपूजक समाज के एक प्रतिष्ठित विद्वान अपनी - 'जैन साहित्य मां विकार थवा थी थेयेली हानि' नामक पुस्तक में 'मूर्तिपूजा आगम विरूद्ध है, इसके लिये तीर्थंकरों ने शास्त्र में कोई विधान नहीं किया है, यह कल्पित पद्धति है।इस प्रकार मू॰ पू॰ विद्वान भी मूर्तिपूजा को आगमिक नहीं मानते है ।तो उन्हें तीर्थकर भगवान समझ कर उनके सामने **णमोत्थुणं** देने का तो प्रश्न ही रहता । अर्थात् उन लोगों की मान्यता में भी णमोत्थुणं के पाठ को प्रक्षिप्त माना है । आगमों में जहां कहीं भी प्रतिमा सम्बन्धी वर्णन है प्रायः वहाँ पर पाठ सरीखा ही है । द्रौपदी के प्रतिमार्चन के सम्बन्ध में स्वयं टीकाकार भी बिना णमोत्थुणं के पाठ को अधिक महत्त्व देते हैं। इस प्रकार प्रतिमार्चन का पाठ सर्वत्र सरीखा होने से सूर्याभ देव एवं विजय देव के वर्णन में भी णमोत्थुणं का पाठ प्रक्षिप्त ही समझना चाहिये ।

विक्रम की आठवीं नौवीं शताब्दियों में जब कि चैत्यवासियों का जोर सर्वत्र फेल चुका था, वे मठाधीश यति बन चुके थे । मंदिरों के पैसों की उघराणी करते थे एवं सारा वहीवट स्वयं की देख रेख में रखते थे । जिसका खंडन संबोध प्रकरण में तथा महानिशीथ में हुआ है । संभवतः इसी युग में णमोत्थुणं का पाठ इन तीन प्रतियों में प्रक्षिप्त हुआ हो तो





असंभवित नहीं है । १२वीं शताब्दि में होने वाले नवांगी टीकाकार के समय तो दोनों प्रकार की प्रतियाँ उपलब्ध होती थी । जिससे ही उन्होंने ज्ञातासूत्र में बिना णमोत्थुणं वाले पाठ को प्रधानता दी है । इसलिये ७वीं आठवीं शताब्दि में लिखी गई पुरानी प्रतियों से इस पाठ का मिलान होने पर इसकी प्रक्षिप्तता जानी जा सकती है । अतः पुरानी प्रति से मिलाने का प्रयत्न करना चाहिये । रायप्पसेणीय व जीवाभिगम सूत्र के टीकाकार श्री मलयगिरी जी नवांगीटीकाकार श्री अभयदेव सूरि के पश्चात वर्ती है । इनको प्रक्षिप्त पाठ वाली प्रतियाँ ही उपलब्ध होने की संभावना है । जिससे उन्होंने अपनी टीका में णमोत्थुणं आदि पाठ की भी टीका की है किन्तु उसकी संगति के विषय में वे मौन हैं। मू॰पू॰ आचार्य अनेक ग्रन्थों में मूर्ति पूजा जिनागम विरूद्ध सिद्ध करते हैं । णमोत्थुणं का पाठ प्रक्षिप्त है, ऐसा पुरानी प्रतियों को देखने से एवं इनके व्याख्या ग्रन्थों को देखने से स्पष्ट होता है ।

यह भी एक स्वार्थपूर्ण घोटाले के विषय का परिणाम है । जो विक्रम संवत की आठवीं शदी के पश्चात १२वीं तेरवीं शताब्दि तक बीच के काल में होना संभव है । यह ४००-५०० वर्ष का मध्यकाल उत्कृष्ट शिथिलाचार का समय था, साथ ही विरोध करने वाले धुरंधर विद्वान मूर्तिपूजकों के साथी श्रमण भी उस समय थे । वे भी किसी न किसी तरह अपनी शुद्धाचार मूलक प्ररूपणा जगह-जगह कर देते थे । स्वतंत्र उपदेशी ग्रन्थ रचकर उसमें भी अपनी श्रद्धा रूचि अनुसार प्ररूपणा एवं मूर्तिपूजा, आडंबर आदि का खंडन कर ही देते थे । ऐसे विरोध के, प्रतिस्पर्धा के, प्रतिवाद के, उस मध्य कालीन जमाने में कल्पित प्रक्षेपों, कल्पित रचनाओं, आगम सम्बन्धी चोरियों, झूठे शिलालेखों, आदि अनेकों कारनामें उस जमाने में हुए है । अतः आगमों के प्रति अंध श्रद्धा बुद्धि न रखकर विवेक बुद्धि रखना ही उपयुक्त है ।

**निबंध-४५**

## मध्यकाल का चित्रण एवं ऐतिहासिक रहस्य

(१) देवर्धिगणी के बाद के काल को अर्थात् वीर निर्वाण १००० वर्ष के बाद के काल को यहाँ मध्य काल कहा गया है ।

***दिगम्बरों के द्वारा नग्न मूर्तियाँ मथुरा के स्तूप में बना कर***

***रख दी गई तथा अन्यत्र भी इस प्रकार कर दिया गया । झूठे सच्चे शास्त्र घड़ दिए गये । खरतर गच्छ आदि गच्छ की पट्टावलियों में जो वर्णन है वह तो कल्पित और किवदंति के तुल्य या उससे भी हीन दशा से परिपूर्ण है । लोकामत की पट्टावलियाँ भी गलत है भ्रमित है । देवर्द्धि के बाद अनेक पंथों में अनेक साहित्यों की रचनाएँ मोह एवं राग द्वेष के परिणामों से युक्त होकर की गई है और उनमें विश्वस्त अविश्वस्त घटनाएँ, इतिहास घड़ कर रखे गये है। –प्रबंध पारिजात ।***

इत्यादि कितनी ही बातों को मूर्तिपूजक मुनि श्री कल्याणविजयजी ने बड़े ही ठोस ढंग से गलत ठहराया है । कहीं किसी बात को किसी के भेजे की उपज कही है और कहीं ये ऐसे कार्य करने में(अर्थात् झूठे शास्त्र रचने, जोड़ने, इतिहास जमाने में) सिद्ध हस्त थे, आदि भाव कहे है । इस प्रकार मूर्तिपूजक विद्वान संत श्री कल्याण विजय जी ने उस मध्य युग के कुछ हुशियारों की होशियारियों का भंडाफोड़ ही किया है जिसमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों के लिये बहुत कुछ लिखा है । इससे सार यह निकलता है कि देवर्द्धिगणी के बाद कुछ ईमानदार शास्त्रीय व्याख्याकार भी हुए है तो उनके साथ-साथ कई ऐसे हत्थकंडे करने वाले तथा अपने मत और अपनी हर प्रवृत्ति को आगे भविष्य में प्रमाणित सिद्ध होने के लिये आधार मिले, ऐसी नीति से साहित्य रचना, शिला लेख लिखना, मूर्तिया बनाना, तत्त्व विवेचन करना, कल्पित कथाएँ, कल्पित महावीर गौतम संवाद घड देना, पूर्व का इतिहास कल्पित व सत्य मिश्रित कर जमा देना, वर्तमान एवं भूतकाल की पट्टावलियाँ अतिश्योक्ति युक्त कल्पनाओं वाली बनाना, अपनी बढ़ाई और दूसरों की हल्काई हो ऐसी कई प्रकार की लेखन सामग्री लिखी जाने लगी । इस तरह का यह बीच का काल रहा है । अपने-अपने महत्त्व के लिए जो कुछ किया वह अलग परन्तु आगमों के नाम से भी भ्रम करने में परिश्रम चले । किसी की रचना किसी के नाम की करनी शुरू हुई । कहीं णमोत्थुण के और मूर्तियों के पाठ तथा चैत्य, अरिहंत आदि शब्द डालने की चोरियाँ चली । कहीं जीताचार या अपवाद के आचरण को हमेशा के लिए(जो कि आगम से विपरीत है या प्रायश्चित्त रूप है उसे) दृढ़ पकड़ लेना, उसके लिए कल्प





सूत्र में चौथ की संवत्सरी का पाठ बना लेना, कालकाचार्य के नाम से भी जो मन आया वह जोड़ देना, कल्प सूत्र को दशाश्रुतस्कंध का अध्ययन घड़ देना, तो महानिशीथ जैसी विचित्र उटपटांग रचना करके महान आचार्यों की सम्मति की असत्य छाप मूल पाठ में लगा देना । कई बड़े आचार्यों राजाओं के जीवन में मन्दिर मूर्तियों के संबंध जोड़ देना । जब कि १४ पूर्वी, १० पूर्वी या गणधर कृत जो आगम है उसमें किसी भी साधु या श्रावक के जीवन में मंदिर बनवाना या बनाने की प्रेरणा करना और उससे जल्दी मोक्ष जाना आदि कोई कथन लेश मात्र भी नहीं है । उन्हीं आगमोक्त व्यक्तियों के जीवन कथाओं में बाद के आचार्यो ने मंदिर के अनेकों खोटे संबंध घड़ दिये । उपलब्ध आगमों में साधु के आचार के कितने ही शास्त्र है, दिनचर्याओं का वर्णन भी शास्त्र में है । श्रावक की भौतिक ऋद्धियों का भी वर्णन है । श्रावक तथा साधु के त्याग-तप, पडिमाए, घर-परिवार, ज्ञान-अध्ययन का वर्णन है परन्तु उन गणधरों एवं पूर्वधरों के शास्त्रों में किसी को मंदिर रचना से, उसके उपदेश से, मंदिर के परिग्रह से कोई सम्बन्ध ही नहीं है, तथापि बाद के ग्रन्थों मे अनेक साधु, श्रावक, राजा के जीवन के साथ मंदिर मूर्ति प्रतिष्ठा घड़ दिये गये हैं । निशीथ में हजार उपर प्रायश्चित के बोल है परन्तु कहीं भी यह नहीं कहा कि भगवान की मूर्ति के दर्शन वंदन नहीं करे तो इतना प्रायश्चित्त । जब कि असंवत्सरी में संवत्सरी करने का भी प्रायश्चित कह दिया और छोटी बड़ी अनेक आचार की बातों का प्रायश्चित वहाँ गिना दिया है । किन्तु मंदिर जाना या स्थापनाचार्य रखना, द्विदल नहीं खाना या मक्खन नहीं खाना या २२ अभक्ष्य नहीं खाना आदि कोई भी वर्णन आचारांग, दशवैकालिक आदि सूत्रों में नहीं हे और निशीथ में उनका प्रायश्चित भी नहीं है और बाद के ग्रन्थों ने और प्रवृत्ति ने कितनी ही ऐसी बातें चला दी ।

अतः देवर्द्धि के बाद की छोटी बड़ी अनेक रचनाएँ और इतिहास और खुदाई की उपलब्धियाँ कोई खास विश्वसनीय नहीं है । इन सब में उस देवर्द्धिगणी के बाद के अनेक बुद्धिमानों के भेजे की उपजें हैं । जो कल्पनाएँ कल्याण विजय जी ने अन्य दिगंबरों आदि के लिये की है वही उस काल के श्वेतांबरों के लिये भी है । ये क्यों कम रहे, भविष्य के लिये

प्रमाण तैयार करने में । अत: शिलालेख और खुदाई की चीजों से भी कोई सही इतिहास नहीं बन सकता है जिसकी जैसी बुद्धि, रूचि हो वैसा सिद्ध कर सकता, समझ सकता है ।

इसलिए आगम जो विशिष्ट पूर्वधरों के हैं, परंपरा से विश्वस्त है उनके सामने ऐसे धोखों से भरे इतिहासों और ग्रंथों को ज्यादा महत्त्व देना ही अज्ञान दशा है, आत्मा को अंधकार के गर्त में पटकनाहै । आगम पाठों को और उनके भावों को समझने पूरता ही ग्रंथो का अवलंबन या उन्हें महत्त्व देना योग्य है, पर्याप्त है और वही उचित है।

जिनको आत्मा साधन में आचार साधना करनी है, वे उन आगम में आये श्रावक साधु के जीवन से त्याग तप ज्ञान का अनुसरण करेगें और आचारांग, सूयगडांग, छेद सूत्र, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक सूत्र कथित आचारों का यथा शक्य इमानदारी से पालन करेंगे । तदनुरूप ही अपना चलना, बोलना, खाना, रहना आदि प्रवृत्ति करेंगे, समिति-गुप्ति, स्वाध्याय-ध्यान में जायेंगे तो भी सही मार्ग की आराधना हो सकेगी ।

उक्त विषयों की स्पष्ट विस्तृत जानकारी के लिये मूर्तिपूजक विद्वान मुनि श्री कल्याणविजय जी म.सा. द्वारा संपादित **प्रबंध पारिजात** नामक ग्रन्थ का अध्ययन करना चाहिये ।

**निबंध-४६**

## साधु का वसतिवास-वनवास आगम समीक्षा
### (जैन आचार विचार में अनैकांतिकता)

"साधु पहले पहाड़ों में रहते थे, फिर बाद में कमजोरी से वसति वास(गांवो में रहना) शुरू किया" ऐसा विद्वानों एवं इतिहासज्ञों द्वारा कहा जाता है किन्तु वह कथन आगमानुसार नहीं है ।

आर्य भद्रबाहु स्वामी कृत छेद सूत्रों और आचारांग आदि गणधर कृत आचार शास्त्रों से सर्वज्ञ कथित वीतराग का ऐसा एकांतिक रूप होना सिद्ध नहीं हो सकता है । भगवान के समय में नवदीक्षित, स्थविर, वृद्ध, ग्लान, अशक्त, ठाणापति(स्थविर वास विराजित) साधु या साध्वियाँ आदि अनेक प्रकार के साधक होते ही थे ।

अंग सूत्रों में और छेद सूत्रों में जहाँ उपश्रयों का वर्णन है वहाँ १८





प्रकार के अथवा २१ प्रकार के मकान साधु साध्वी के ठहरने के लिये कहे हैं ।

बृहत्कल्प सूत्र में कहा है कि साधु को पुरूष सागरिक उपाश्रय में ठहरना कल्पता है किन्तु स्त्री सागरिक उपाश्रय में रहना नहीं कल्पता है, तथा अनाज एवं खाने की सामग्री आदि से युक्त मकान में किस व्यवस्थित स्थिति में शेष काल में रहना कल्पता है और कब चातुर्मास रहना कल्पता है ? इत्यादि स्पष्ट वर्णन है । दुकानों में, गली के किनारे तथा तीन रास्ते, चार रास्ते में बने मकानों में साध्वी को ठहरना नहीं कल्पता है, किन्तु साधु को रहना कल्पता है, ऐसा स्पष्ट विधान है । किन्तु दोनों को ही नहीं कल्पता है, ऐसा कथन नहीं किया है । इस प्रकार आर्य भद्रबाहु रचित इस छेद सूत्र में ग्राम आदि में रहने का निषेध नहीं है अपितु विधिरूप से रहने का ही सिद्ध हो रहा है ।

स्थविरकल्पी एवं जिनकल्पी श्रमणों के एक वस्त्र अनेक वस्त्र का, करपात्री एवं पात्र धारी होने का, कारण से असमर्थ आदि को अधिक पात्र देने का और निष्कारण नहीं देने का इत्यादि अनेक वैकल्पिक व्यवस्थाओं का अंग सूत्र और छेद सूत्रों में उल्लेख है । अनेकों आचार विधान भी अनेकांतिकता लिये हुए हैं जैसे कि -

१. कहीं विगय रहित सदा नीरस आदि आहार करना कहा गया है, कहीं साधु को बार-बार विगय सेवन नहीं करने वाला होना कहा है, कहीं विगय सेवन करके जो मुनि तप में रत नहीं रहे तो उसे पापी श्रमण कहा जाता है किन्तु विगय युक्त आहार करके जो तप में लीन रहता है उसे पापी श्रमण नहीं कहा है ।

२. कहीं ऐसा विधान है कि गोचरी में नया बर्तन नहीं भरवाना, तो कहीं बता दिया गया कि पश्चात् कर्म न हो तो ले लेना तथा कहीं थाली में मोदक भरकर बहरावे तो भी लेने का वर्णन किया गया है।

३. कहीं पर बताया गया कि **पंत कुलाइं परिव्वए स भिक्खु** अर्थात् निर्धन-गरीब घरों में भिक्षाचरी करने वाला भिक्षु है । तो कहीं बड़े-बड़े श्रीमंतो और राज घरानों में भी गोचरी जाने के स्पष्ट वर्णन हैं । कही खीर खांड के भोजन प्राप्ति के वर्णन भी है ।

इस तरह हमारे जैन आगम तात्विक सिद्धान्तों की अपेक्षा जैसे

स्याद्वाद को लिये हुए है वैसे ही आचार विधानों के भी अनेक विषयों में अनेकांतता धारण किये हुए हैं ।

अतः जैन साध्वाचार संबंधी नियमों के लिये, गहरा शास्त्र-चिंतन किये बिना, केवल ग्रन्थों, इतिहासों या उद्धरणों और शिलालेखों से या कथाओं से कोई भी एकांत कल्पना करना युक्ति संगत नहीं है । कम से कम दो अंग सूत्र, चार छेद सूत्र और दो मूल यों आठ आचार सूत्रों के चिंतन युक्त ज्ञान रखना एवं उसे रखते हुए चिंतन करना भी पर्याप्त हो सकता है । अर्थात् इतना ध्यान रख लेने पर भी बिना मतलब के वर्तमान साधुओं की कमजोरी बताने की स्थिति पैदा नहीं होगी । वास्तव में ऐसी कल्पित अवास्तविक कमजोरी बताने से धर्म श्रद्धा और उत्साह में किसी प्रकार के लाभ की भी कोई संभावना नहीं है ।

सर्वज्ञों की वाणी में और उसमें भी आचार संबंधी विधानों में तो सभी तरह के साधकों को ध्यान में लेकर के ही अनेक दर्जे के विधान समाविष्ट किये जाते है । जघन्य दर्जे की भी अपनी एक सीमा होती है इसीलिए भगवती सूत्र में बताया गया है कि बकुश और प्रतिसेवना नियंठा वाला भी वैमानिक देवों के सिवाय कहीं भी नहीं जाता है । उसके जघन्य चारित्र पज्जवे भी पुलाक के उत्कृष्ट चारित्र पज्जवों से अनंत गुणे अधिक ही होते हैं, तभी वह नियंठा टिकता है अन्यथा नीचे जाता है अर्थात् असंयम अवस्था प्राप्त कर लेता है।

स्वयं भगवान महावीर स्वामी के छद्मस्थ काल का वर्णन आचारांग सूत्र में है, उसे ध्यान पूर्वक समझ लिया जाय तो भी मकान सम्बन्धी सही स्थिति मालुम हो जायेगी ।

अतः व्यर्थ में ही ऐसी भ्रमणाए चलाना कि "पहले साधु वसति में नहीं रहते थे पहाड़ों में ही चौमासा करते, वसति वास बाद में हुआ" यह स्पष्ट ही आगम विपरीत प्ररूपणा है । आजकल उत्कृष्टता की ऐसी ही अनेकों फालतू बातें इतिहास या आगम के नाम से थोपी जाती है । किंतु सत्य बात यह है कि पहले जमाने में ऐसे भी उत्कृष्टता वाले अनेक साधक होते थे सामान्य साधक भी होते थे । फिर भी उस उत्कृष्टता को बिना आगम प्रमाण के मात्र इधर उधर के उद्धरण इतिहास शिलालेखों से सब के लिए थोप कर एकांतिक कथन कर देना बहुत ही अनुचित है ।





आचार और जैन सिद्धांत के मुख्य तत्वों के सम्बन्ध में सदा, प्रमाणिक पूर्वधरों के आगम से ही कसौटी और चिंतन करके निर्णय करना चाहिए । यह सही निराबाध मार्ग है ।

हमारे आगम नग्नता का खंडन और भर्तस्ना नहीं करते हैं । सचेलकता का भी विस्तृत कथन करते और अचेलकता को भी प्रशस्त कह देते हैं । उसी तरह आगमों में तीन जाति के पात्र कहे गये हैं । असमर्थ साधु तीनों जाति के पात्र एक साथ रख सकते हैं । समर्थवान साधु केवल एक जाति के ही पात्र रख सकते हैं । स्थविर कल्पी साधु के आहार करने का वर्णन करते हुए व्यवहार सूत्र में बताया गया है कि अपने पात्र में अपने पलासक में, अपने कमंडलू में, अपने हाथ में और अपने हस्त युगल(धोबे-खोबे) में ले लेकर खा सकता है । इस तरह अनेक पात्र होने का एवं उसमें खाने का तथा हाथ में खाने का वर्णन भी कर दिया है और उणोदरी करना हो तो एक वस्त्र रखने का या परित्यक्त उपकरण ही लेने का निर्देश किया गया है किन्तु एकांत एक ही पात्र रखने की प्ररूपणा नहीं की गई है ।

औषध की चाहना करने मात्र का भी(परीषह सहने की अपेक्षा) निषेध उत्तराध्ययन सूत्र अध्य. २ एवं १९ में कर दिया गया फिर भी निशीथ सूत्र में स्वस्थ साधु को औषध सेवन का प्रायश्चित्त कहा है अस्वस्थ साधु के लिये वहाँ प्रायश्चित नहीं कहा है । एवं उसी भव में मोक्ष जाने वाले साधुओं के औषध उपचार कराने का वर्णन भी आगमों में कर दिया गया है ।

साधु की मर्यादाओं में संयम समिति-गुप्ति महावत सुरक्षित रहना ही मुख्य है । बाकी अन्य विधियों में कई तो लोगों की दृष्टि से व्यवहारिक भी है और कई अव्यवहारिक सी लगने वाली भी अनेक विधियाँ आगम से सिद्ध है यथा- अदंत धावन, अस्नान, लोच आदि । उनके सम्बन्ध में भी यदि कोई मात्र व्यवहार दृष्टि कसकर खिल्लियां उड़ावे तो वह उसकी व्यक्तिगत असभ्यता और अविवेक ही है, जिसका तो कोई इलाज नहीं है।

दुनिया में सब तरह के लोग होते रहते है । साधु को व्यवहार का भी ध्यान तो रखना ही होता है परन्तु भगवदाज्ञा, मूल महाव्रत, समिति,

गुप्ति एवं आगम सम्बन्धी सभी विवेकों की उपेक्षा न करते हुए ही । क्योंकि अपने नियमों में तप में भगवद आज्ञा में रहना तो साधु का परम कर्तव्य है और व्यवहार तो बनावे जैसा बन सकता है ।

दुनिया में कोई वस्त्र द्वारा व्यवहार रखता है तो कई नग्न रह कर भी । कोई मुँहपति को मुँह पर बाँधकर भी व्यवहार रखता है तो कोई बिना बांधे ही रहते हैं । कोई डंडा आदि औपग्रहिक उपधि को औघिक (आवश्यक) कर दे उसका भी बेधडक व्यवहार चलता है । यों अनेक तरह के व्यवहार जब जो चला देते हैं समाज में चल जाते हैं और आज भी उन सभी तरह के लोगों के व्यवहार दुनिया में चल रहे हैं ।

अत: व्यवहार के नाम से संयम के मौलिक एवं आगम कथित नियमों की उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए तो उत्कृष्ठता के नाम से आगम से सिद्ध विभिन्न सामान्य आचार विधियों का निषेध कर के, उन्हें शिथिलाचार भी नहीं कह देना चाहिये एवं समय परिवर्तन के नाम से ऐसे कोई एकांत प्ररूपण भी नहीं करने चाहिए ।

इस प्रकार साधु का वसति वास और वन विहार दोनों ही आगम सिद्ध है । किन्तु **वसति वास** समय के परिवर्तन से आई हुई विकृत प्रवृति है, ऐसा नहीं समझना चाहिए और ऐसी आगम विरूद्ध खोटी प्ररूपणा भी नहीं करनी चाहिये ।

उक्त विचारणा से यह स्पष्ट है कि जो मनीषी यह कथन कहते है कि 'पहले सभी मुनि जंगलों में ही रहते थे, ठहरते थे, गाँव या नगर की वसति में अब दोष से ठहरने लगे हैं' उनका यह कथन आगमों की श्रद्धापूर्वक अध्ययन चिंतन एवं परस्पर समन्वय युक्त दृष्टिकोण वाला नहीं है किन्तु स्वंय की एकांगी दृष्टि की प्रमुखता युक्त और आगम निरपेक्ष भ्रम पूर्ण निर्णय है । सुज्ञ श्रद्धालुओं को ऐसे व्यक्तिगत एकांगी विचार प्रवाहों से दूर रह कर अपने ज्ञान दर्शन चारित्र को सुरक्षित रखने हुए सम्यग् श्रद्धा के साथ सम्यग् आराधना करनी चाहिये।

### भगवान महावीर स्वामी द्वारा प्रयुक्त शय्याएँ :-

१. धर्मशालाओं में २. प्याऊ में ३. दुकानों में ४. लुहार, सुनार, सुथार की शाला में अर्थात् कारखानों में, ५. झोपड़ियों में ६. यात्रीगृहों में ७. आरामगृहों में ८. ग्रामों में ९. नगरों में १०. श्माशान में ११. शून्य गृह





में १२. वृक्ष के नीचे ।उक्त स्थानों में तीर्थकर भगवान महावीर ने छद्मस्थ काल में विचरण करते हुए निवास किया था ।-**आचारांग सूत्र अध्य.९**

### साधु साध्वी की कल्पनीय शय्याएँ :-

१. पथिक शाला (धर्मशाला) २. विश्रामगृह ३. गृहस्थ का घर ४. मठ आश्रम ।

१. लुहारशाला २. धर्मशाला ३. सभास्थल ४. प्याऊ ५. देवालय ६. दुकान ७. गोदाम ८. यानगृह ९. यानशाला १० चुने का कारखाना आदि ११. घास या चमडे आदि के कारखाने १२. कोयले का कारखाना १३. सुथारशाला १४. श्मशान गृह १५. पर्वत गृह १६. गुफा १७. शांति कर्म गृह १८. पत्थर के कारखाने आदि निर्दोष भवन एवं गृहों में साधु-साध्वी को ठहरना कल्पता है। -***आचारांग सूत्र श्रुतस्कंध २ अध्ययन २ ।***

### साध्वी के अयोग्य और साधु के योग्य शय्याएँ :-

१. दुकान युक्त घर में २. गली के प्रारम्भ के मकान में ३. तिराहे में आये मकान में ४. चौराहे पर मकान में ५. सिंघडाकार मार्ग मिलते हों वहा बने घर में ६. अनेक मार्ग मिलते हो ऐसे स्थान पर बने घर में ७. दुकान में(ठहरने योग्य खाली जगह होने से )साधु ठहर सकते हैं किन्तु साध्वियों को इन स्थानों में नहीं ठहरना चाहिए। - ***बृहत्कल्प सूत्र उद्दश्क- १ सूत्र १२***

इन आगम वर्णनों विधानों से स्पष्ट है कि नग्न रहने वाले तीर्थंकर एवं सामान्य साधु साध्वी गांवो में वसती में अथवा बगीचों में कहीं भी उपयुक्त स्थानों में निवास कर सकते हैं । साध्वी को बह्मचर्य रक्षा के निमित्त अनेक असुरक्षित स्थानों का निषेध है किन्तु कहीं पर भी वस्ती में रहने का निषेध आगम से किंचित भी सिद्ध नहीं होता है ।**उपाश्रय** शब्द का प्रयोग भी आगमों में स्पष्ट रूप से हैं एवं कहीं पौधशालाएँ भी कही गई है फिर भी जो अनघड कल्पनाएँ आगमाधार के बिना ही चला दी जाती है, यह विद्वत्ता का सही उपयोग नहीं है । आगम सापेक्ष चिंतन होना नीतांत आवश्यक है । जब कि हमारे कई विद्वान लोग एक बार थोडासा आगम अध्ययन कर लिया, फिर आगम निरपेक्ष इतिहास, शिलालेख, कथाग्रन्थों आदि से चिंतन निर्णय करके भ्रम फैलाते रहते हैं । यह जिन शासन की सेवा नहीं किन्तु अनायास ही होने वाली कुसेवा

है । उन विद्वानों को यह चाहिये कि अपने प्रत्येक निर्णय को पहले अपने मान्य एवं उपलब्ध सभी आगमों से पुनः परीक्षण करके सर्वथा आगम अविरूद्ध चिंतन को ही प्रस्तुत करने का प्रयत्न करना चाहिये। साथ ही अपने उस नये चिंतन को स्पष्ट आगम पाठ का संबल मिले इसका भी पूर्ण प्रयत्न रहना चाहिये ।

**नोट–** इस आगम नवनीत पुष्पों में भी कई नये चिंतन प्रस्तुत किये गये है, जो कि प्रचलित परंपराओं और धारणाओं से बिल्कुल अलग भी है किन्तु उनके लिये उक्त आगम सापेक्ष चिंतन एवं प्रमाणों का पूर्ण ध्यान रखा गया है । फिर भी किन्ही विद्वान की दृष्टि में कोई भी आगम विरूद्ध या आगम निरपेक्ष बिंदु दिखाई दे तो वे उसे मन में नहीं रख कर लेखनी द्वारा संपर्क सूत्र के स्थान पर सूचित करने का प्रयत्न कर जिन शासन की सच्ची सेवा का लाभ प्राप्त कर अपने को धन्य बनावेंगे ।

**निबंध–४७**

## आगमों की रचना में बारंबार परिवर्तन समीक्षा

गणधर या १४ पूर्वी आदि जिन शासन में जो भी आचार शास्त्र की रचना करते हैं उसमें वे परिपूर्ण शासन काल के साधुओं का ध्यान रख कर ही विधि-निषेध के नियम रचते हैं । उनके नियमों सम्बन्धी विधान के लिये यह कल्पना करना सर्वथा अनुचित है कि "वे अपने शासन काल के आचार शास्त्र बनावे जिसके कायदे २०० या ४०० वर्ष बीतने के बाद चले ही नहीं फिर कोई उन्हें पलटे । उसके २०० या ३०० वर्ष बाद फिर किसी को उस आचार शास्त्र के नियमों को पलटना पड़े" ऐसी कल्पना करने में पूर्व धरों की और शास्त्र रचनाकारों की अयोग्यता घोषित करना होता है ।

ऐसा कोई लिखित परंपरा प्राप्त प्रंमाण है भी नहीं कि १४ पूर्वी या गणधरों के बनाए आचार शास्त्रों के कायदे अब आगे के काल में नहीं चल सकते इसलिये आर्य रक्षित ने या अमुक ने पलटे। श्रुत केवली की रचना में ऐसा दूषण समझना या कल्पना करना किंचित भी समझदारी की बात नहीं है ।

यह बात सदा ध्यान रखने की है कि इतिहास कल्पना या ग्रन्थों को आगम से ज्यादा महत्त्व नहीं देना चाहिए ।ऐसा ध्यान रखने पर उक्त





प्रस्तुत कल्पना को स्थान ही नहीं मिल सकता । आचार शास्त्रों में जो विधान है उनमें किसी प्रकार का फेरबदल किये बिना भी अनेक साधक वस्त्र, पात्र अन्य उपकरण वाले हो सकते है और विशिष्ट साधना करने वाले या पहाडों में जाने, विशेष त्याग, तप, अभिग्रह, पडिमा, जिनकल्प आदि साधनाएं करने वाले भी इन्हीं आचार शास्त्रों के आधार से हो सकते हैं ।

आगमों के बारंबार परिवर्तन की आवश्यकता मानने पर शास्त्र का महत्त्व ही क्या रहेगा ? क्योंकि इस तरह आचार शास्त्र के पलटने का अधिकार हर २००-४०० वर्ष के बाद किसी आचार्य के हाथ में हो जाय तो सारा अव्यवस्था दोष हो जायेगा । इक्कीस हजार वर्ष तक कितने नियम पलटने पड़ेंगे । वास्तव में यह सब सोचना ठीक नहीं है जो भी विधि निषेध आगमों में हैं वे जिन शासन की दृष्टि में पूर्णता लिए हुए ही हैं ।

व्यक्तिगत या अमुक संघ से या अपवाद से कभी किसी को कुछ करना पडे, वह बात अपवाद परिस्थिति या रूचि अथवा वातावरण पर रहती है । जिसका संकेत भी आगमों से एवं उनकी व्याख्याओं से स्वतः प्राप्त हो जाता है । आचार शास्त्रों में कहीं उत्कृष्ट से उत्कृष्ट कर्तव्यों की शिक्षा भी है, तो कही मध्यम आचार विधान भी है और कहीं अपवाद परिस्थिति की छूटें भी हैं । इसके उपरांत भी किसी से अन्य विपरीत आचरण हो जाय या करना पडे तो उसका प्रायश्चित वर्णन भी आगमों में कर दिया गया है ।

आगम भगवती में कहे गये कोई नियंठे मूल गुण पडिसेवी भी है, तो कोई उत्तर गुण पडिसेवी भी है और कोई पूर्ण शुद्ध भी है । उनमें किसी के आराधना भी है किसी के विराधना भी है इस प्रकार अनेक स्थितियों का वर्णन है । इस विविध सदोष निर्दोष आचार वालों को भी साधुत्व में गिना गया है ।

इक्कीस हजार वर्ष तक कभी भी किसी के लिये आचार शास्त्रों में पलटा पलटी करना पड़ने की कल्पना होने जैसा कुछ भी नहीं है । यदि ये आगम बाद के व्यवस्थित किए गये या सुधारे गये हैं ऐसी कोई कल्पना करे तो उसे सोचना चाहिए कि मेरी कल्पनानुसार एक पूर्वधर के

द्वारा व्यवस्थित किये गये शास्त्र अब २०,००० वर्ष चले जैसे हो गये और १४ पूर्वी एवं गणधरों की रचना के विधान १००-२००-४००-९०० वर्ष में बार बार पलटने पड़े ऐसा कैसे उचित हो सकता है । अत: यह बहुत ही गलत एवं अनुचित कल्पना है । ऐसी कल्पना से कोई लाभ भी नहीं है । साथ ही पूर्वधरों की योग्यता को और आगम के महत्त्व को कलंकित करने का कार्य होता है । अत: ऐसी कल्पना किसी भी आगम प्रमाण के बिना नहीं करनी चाहिए । चाहे इतिहास कहो या ग्रन्थ कहो, यह तो अघटित और अनुचित कल्पना ही कहलायेगी ।

छद्मस्थों की स्मरणशक्ति कम हो जाने से शास्त्रों में विकृत बने पूर्वापर सम्बन्धों को जोड़ना या कुछ भी अव्यवस्थित हुए को व्यवस्थित करना, संक्षिप्त करना, यह सब आगे की स्मरणशक्ति का विचार करके या पहले की स्मृतिदोष के कारण को समझ कर संशोधन करना आदि प्रयत्न तो योग्य ही कहे जायेंगे । ऐसा करने में रचनाकार पूर्वधरों या गणधरों पर कोई आपत्ति नहीं जाती है ।

अत: आचारांग, सूयगडांग, चार छेद, दशवैकालिक सूत्र तथा और भी आगमों में जहाँ आचार विधान है उनमें क्षेत्र-काल के कारण बदला बदली करनी पड़ी है ऐसा मानना सोचना असत्य कल्पना है।

इन आचार शास्त्रों में आये हुए विधानों, निषेधों और अपवादों के सभी नियमों को समझकर, उनका पूर्वापर समन्वय कर, एवं सही विधि का निर्णय करके यथासंभव उत्सर्ग मार्ग पर ही चलना चाहिए तथापि परिस्थितिवश कभी अपवाद मार्ग पर भी चलना पड सकता है एवं कभी-कभी प्रायश्चित मार्ग पर चल कर के भी वापिस उत्सर्ग मार्ग पर आया जा सकता है । यह सब व्यक्तिगत निर्णय एवं परिस्थिति पर अधिक निर्भर करता है । परंतु आगम विधान को हमेशा के लिए अयोग्य मानकर अथवा अपर्याप्त ठहरा कर किसी को पलटने की जरूरत कदापि नहीं पड़ सकती बल्कि इन्हीं आगम वर्णनों से और उनकी व्याख्याओं से सभी परिस्थितियों का हल निकाला जा सकता है, जो कि बहुश्रुतगम्य है ।

इतना स्पष्ट होते हुए भी कोई सब के लिये या हमेशा के लिये मूल पाठ में या अन्य ग्रन्थ बनाकर कायदा ही पलट दे, तो वह उसका व्यक्तिगत दूषण है एवं आगम विपरीत प्ररूपण प्रवर्तन है ।





जिस विषय में आगम के मूल पाठ में कोई स्पष्ट विधि निषेध नहीं है प्रायश्चित भी नहीं कहा है, उस विषय का संपूर्ण विधि निषेध प्रायश्चित आदि का निर्णय बहुश्रुत के निर्णय पर निर्भर करता है । किन्तु उन्हें भी उस निर्णय को आगम पाठ में घड़ देने का अधिकार तो नहीं होता है । एवं उस अपने निर्णय को अन्य बहुश्रुतों पर या समुहों पर थोप देने का अधिकार भी नहीं होता है ।

चश्मा पुस्तक आदि ज्ञान सम्बन्धी उपकरणों का आगमों में कहीं भी विधि-निषेध नहीं है और प्रायश्चित भी नहीं है । उसके लिए बहुश्रुत की आज्ञानुसार किया सकता है ।

चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी ने सभी साधु साध्वी के लिये निशीथ सूत्र के अध्ययन अध्यापन की ध्रुव आवश्यक आज्ञा दी है एवं जो साधु या साध्वी उसे भूल भी जाय तो उसकी कठोर सारणा और दंड विधान भी किया है । ऐसी सूत्रोक्त स्पष्ट आज्ञा को ४०० वर्ष बाद किसी को अनुचित लगवाना और उसके विपरीत मौखिक कायदा करने की कल्पना करना बिल्कुल ही अनुचित चिंतन का परिणाम है । क्यों कि ऐसे चिंतन का तात्पर्य यह होता है कि चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी को आचार और छेद सूत्रों के विधान करने में इतनी भी अकल नहीं थी कि ४०० वर्ष भी उनका विधान नहीं चले और आर्यरक्षित करे वह १५०० वर्ष चले जैसा हो जावे ऐसा कोई भी बुद्धिमान स्वीकार नहीं कर सकता और वास्तव में ऐसा संभव ही नहीं है ।

अत: यह सब गलत कल्पनाएँ या भ्रमणाएँ हैं कि- आर्यरक्षित को आचारशास्त्र के विधानों को परिवर्तन करना आवश्यक हो गया । वास्तव में मध्यकाल में इस प्रकार के वातावरण के कई ढर्रे चलते थे । यथा- १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी ने जब असंवत्सरी में संवत्सरी करने का गुरु चौमासी प्रायश्चित्त शास्त्र में उल्लेख कर दिया है जिस पर भी किसी के द्वारा अपनी परिस्थिति से आगे पीछे संवत्सरी करने की कल्पना कर दी गई, फिर उसका आगमोक्त प्रायश्चित लेकर शुद्ध होने की तो बात ही नहीं की गई, किन्तु उस अपवाद का ही हमेशा के लिये कायदा कर दिया गया और वैसा सूत्र पाठ भी बना दिया गया । जिससे वह ढर्रा चल भी गया । ऐसे कई ढर्रे सैकड़ों हजारों वर्षों तक भी चल जाते हैं

किंतु वे ढर्रे कोई आगम से अधिक प्रमाण भूत या महत्त्वशील नहीं हो सकते । आगम प्रमाण तो सर्वोपरी है ही । उसके आधार से ही सत्य खोजना, सोचना और ढर्रे मिटाना चाहिए ।

१४ पूर्वी गणधर आदि की जो स्पष्ट आज्ञा है उसके विपरीत कोई भी बाद का कम ज्ञानी ईमानदार आचार्य आज्ञा करेगा ही नहीं, यह निश्चित है । अगर किसी अपवाद परिस्थिति से किसी ने आज्ञा दी भी तो उस आचरण का महत्त्व अपवाद जितना ही होगा । उस आचरण की परंपरा नहीं चलाई जायेगी । किन्तु कोई नामधारी दूषित बुद्धि वाले आचार्य आदि आगम विपरीत आज्ञा मौखिक या लिखित चलादे तो वह उनका चलाया ढर्रा कहलायेगा, उसका महत्त्व आगम विधान के आगे शून्य के तुल्य होगा । अन्यथा बाद के कम ज्ञानी लोग कुछ भी शास्त्र विपरीत विधान करते जायेंगे ।

आज के आचार्य ऐसा ही कुछ अधिकार जीताचार के नाम से ले बैठे हैं वे अपवादिक परिस्थितिक आचरणों की आमरूप से परंपराएँ चलाते जा रहे हैं यह **निगंथं पावयणं पुरओ काऊं विहरइ** की प्रतिज्ञा से च्युत होना है । किसी भी मुखिया को शास्त्र विपरीत विधि मार्ग खोल कर कायदा बनाने की सत्ता नही होती है । अपवाद को अपवाद तक ही सीमित रखने की सत्ता तो सभी गीतार्थों को है ही ।

शास्त्र में निर्देश है कि रत्नाधिक का विनय करना, परन्तु संयम का सतत पूर्ण रूपेण ध्यान रखना, जिससे कि उसमें किसी प्रकार की कमी न आवे । सूत्र में यहां तक भी निर्देश है कि गुरु प्रायश्चित्त दे और वह आगमानुसार न हो तो स्वीकार न करे, किन्तु स्पष्ट ही ना कह दे।

गुरु संलेखना संथारा की अवस्था में कह दे कि मेरे पीछे इसे आचार्य पद देना, तो भी यदि वह योग्य हो तो उसे देना, योग्य न हो और दूसरा कोई योग्य हो तो उसको पद देना, ऐसा स्पष्ट विधान है। अतः आगम महत्त्व के आगे ९ पूर्व से कम यावत् आज के आचार्य या बीच के देवर्द्धि कालक आदि किसी की भी आज्ञा होती है वह तो इत्वरिक ही हो सकती है । उसे हमेशा के लिये बनाना महान अनर्थकारी कर्तव्य होगा । दस पूर्वी या उससे ज्यादा ज्ञान वाले तो आगम विहारी होते हैं उनके लिये व्यक्तिगत आचरण में शास्त्र के कायदे बाधक नहीं होते ।





परन्तु ९ पूर्व से कम ज्ञान वालों को तो शास्त्र को ही बलवान प्रमाण मानकर चलना होगा । यही आगमिक पद्धति है । ऐसा नहीं करने पर तो मनमानी बहुमत से कुछ भी चला दिया जाएगा । अतः श्रुत केवलियों की रचना में अधूरता की कल्पना करना भ्रम पूर्ण है । जो कि पुनः विचारणीय है ।

छेद सूत्र पूर्वों से उद्धृत कहे जाते हैं अतः उन्हें गणधर रचित ही समझना चाहिए । उद्धार कर्ता कोई भी क्यों न हो, पूर्वों की मौलिक रचना तो गणधरों की ही है । अतः अपने समय की आचार शिथिलता को देख कर आर्य रक्षित या स्कंदिलाचार्य से आगमों में परिवर्तन कराने की कल्पना करना ठीक नहीं है ।

उपलब्ध व्यवहार, बृहत्कल्प या निशीथ सूत्र को समय प्रभावी रचना नहीं मानकर के गणधरों की रचना मानने में कोई विरोध नहीं है। श्रुत केवली द्वारा आचार शास्त्रों की रचना पूरे शासन काल को लक्ष्य करके ही की जा सकती है अन्य कल्पना करना उनकी प्रामाणिकता को अथवा योग्यता को ही चेलेंज देना होता है, जो कि सर्वथा अनुचित है ।

अतः आगमों को अपर्याप्त(अधूरे) कह कर पश्चात्वर्ती आचार्यों द्वारा परिवर्तित किया जाना मानने की कल्पना करना अक्षम्य दोष है । ऐसी कल्पनाओं एवं इतिहास वाक्यों से सावधान रहकर शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और विवेक के साथ ज्ञान दर्शन चारित्र की आराधना करनी चाहिए ।

**निबंध-४८**

## अक्षय तृतीया पारणा परिज्ञान

**(१)** त्रिषष्टि शालाका चारित्र अधिकार १,३, और गाथा ३०१-३०२ में अक्षय तृतीया को पारण कहा अर्थात एक वर्ष एक मास आठ दिन बाद भगवान का पारणा हुआ ।

**(२)** एक्कवरिसेण उसहो, उच्छुरसं कुणई पारणं, गो-खीरे णिरुपण्णं-अण्णे बिइयम्मि दिवसम्मि । – ***तिलोय पण्णति गाथा ६७८***

**अर्थ** – ऋषभदेव भगवान ने एक वर्ष से इक्षुरस द्वारा पारणा किया अन्य तीर्थंकरों ने दीक्षा के दूसरे ही दिन क्षीरान्न से पारणा किया । इस प्रकार तिलोयपण्णति में अधि॰ ४ गाथा ६७८ में भगवान ऋषभदेव का प्रथम पारणा दीक्षा के एक वर्ष में इक्षुरस से हुआ ।

**(३)** दिगम्बर ग्रन्थ हरिवंश पुराण जिनसेन रचित में- छह माह के अनसन के बाद ऋषभ देव आहार के लिये निकले और विधि पूर्वक आहार न मिलने से लगातार ६ माह तक वे विहार(भिक्षार्थ विचरण) करते रहे । फिर राजा श्रेयास ने पूर्व जन्म के स्मरण के आधार से भगवान ऋषभदेव को पारणा मे इक्षुरस बहराया । **सर्ग- ९, श्लोक- १८३/ १९०/ १४२ /१५६, *महापुराण- १००/२०/४५४ ।***

**(४)** नौवीं शताब्दि तक के दिगंबर जैन ग्रन्थों में पारणा तिथी का उल्लेख नहीं है ।

**(५)** दसवीं शताब्दि के पुष्पदंत अपभ्रंश कवि ने अपने महापुराण में कहा है कि- भगवान के उपवास का एक वर्ष बीत जाने पर श्रेयांस ने अक्षय आहार दान दिया जिससे वह दिन अक्षय तृतीया के नाम से प्रसिद्ध (सार्थक) हो गया । यहाँ वैशाख शुक्ला तृतीया का उल्लेख नहीं है ।

**(६)** श्वेताम्बर परंपरा के प्राचीन ग्रन्थों में भी इस पारणा तिथी का उल्लेख नहीं है । कल्प सूत्र तथा जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति में तीर्थकर का विस्तृत वर्णन है किन्तु वहाँ इस विषयक उल्लेख ही नहीं है और समवायांग और वसुदेव हिंदी में संवत्सर उपवास के बाद पारणा होने का उल्लेख है किन्तु पारणा तिथि का उल्लेख नहीं है । त्रिषष्टिशलाका पुरूष चरित्र व खरतर गच्छ बृहत गुर्वावलि में स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है कि... वैशाख शुदी ३ को पारणा हुआ । इससे स्पष्ट है कि १२ वीं शताब्दि के पूर्व(श्वेतांबर ग्रन्थों में) ऋषभ देव की पारणा तिथि उनकी दीक्षा तिथि के एक वर्ष बाद की ही निश्चित थी । इसीलिये प्राचीन ग्रन्थकारो ने दीक्षा से एक संवत्सर उपवास का उल्लेख किया है । यदि परवर्ती ग्रन्थकारों द्वारा उल्लिखित अक्षय तृतीया वैशाख सुदी ३ को स्वीकार किया जाय तो एक वर्ष एक मास आठ दिन का तप होता है जो तिलोयपण्णत्ति आदि ग्रंथों से प्रमाणित नहीं होता है ।

**सार-** अक्षय तृतीया लोक में शुभ तिथी के रूप में अत्यधिक विख्यात है उसके साथ कभी एकांतर तप का पारणा जोड़ा गया, फिर कालांतर से उसका विशेष महत्त्व स्थापित करने के लिये ज्यों त्यों करके भगवान ऋषभदेव के एक वर्ष के तप से और इक्षुरस से जोड़ दिया गया । महत्त्व स्थापित करने के लिए ऐसे जोडने की पद्धतियों सम्बन्धी मध्यकाल के





कई उदाहरण है । यथा- कल्पसूत्र का व्याख्यान में वांचन कालकाचार्य से जोड़ना, चूलिकाओं को स्थूलिभद्र की बहिन से जोड़ना, धुवसेन राजा के पुत्र की मृत्यु को कालकाचार्य से जोडना, भद्रबाहु संहिता और निर्युक्तियों को प्रथम भद्रबाहु से जोडना, दशवैकालिक को 'मनक' से जोडना, उत्तराध्ययन सूत्र को भगवान की अंतिम देशना से जोडना, कल्प सूत्र का भगवान द्वारा बारंबार व्याख्यान में बांचने से संबंध जोडने वाला पाठ बना देना । महानिशीथ की अनघड और उटपटांग बातें भगवान और गौतम के नाम से जोड देना । चौथ की संवत्सरी बाद में चली तो भी उसको सिद्ध करने वाला लम्बा चौडा पाठ कल्पसूत्र के प्रारंभ में जोड देना इत्यादि ।

**निबंध-४९**

## आचारांग निशीथ धारक परिज्ञान

***आचार प्रकल्प धारिणां चत्वारो भंगास्तद्यथा- सूत्र धरो न अर्थ धरः, अर्थ धरो न सूत्र धरः, सूत्र धरोप्यर्थ धरोऽपि, नो सूत्र धरोनाप्यर्थ धरः । अत्र चतुर्थ भंगो शून्यः । आद्यानां त्रयाणां भंगानां तृतीयो भंगवर्ती स उपाध्याय उद्दिश्यते । यतः सः उभयधारी तया गच्छस्य सम्यग् परिवर्धको भवति ।(यह मुख्य विधान हुआ) तदभावे द्वितीय भंग वर्त्यपि, तस्यापि अर्थ धारितया सम्यक् परिवर्धकत्वात् । न तु आद्यवर्ती । तथा च आह- सूत्रधर वर्जितानां आचार प्रकल्पिकानां गच्छं गच्छस्य परिवर्धना त्रिके तृतीय भंगे च । ततस्ते एव उपाध्याया स्थाप्या न प्रथम भंग वर्तिनः । एवं दशा कल्प व्यवहार धरादि पदानां अपि व्याख्या कर्तव्याः ।***

***यद्यपि पूर्वमाचार्यादयश्चतुर्दश पूर्वधरादयः आसीरन् तथापि इदानीं आचार्या(उपाध्यायादयश्च) युगानुरूपा दशा-कल्प-व्यवहार धरादयस्तपो नियम स्वाध्यायादिषु उद्युक्ता, द्रव्य क्षेत्र काल भावोचित यतना परायणा, भवंति ज्ञातव्याः ।- व्यवहार सूत्र उद्दे.३.सू.३ भाष्य टीका ।***

**संक्षिप्तार्थ :-** कम से कम आचार प्रकल्प धारणकरने वाला बहुश्रुत ही संघाडा की प्रमुखता करके विचरण कर सकता है उपाध्याय पद ग्रहण कर सकता है और दो अंग सूत्र ४ छेद सूत्र को धारण करने वाला ही आचार्य पद ग्रहण कर सकता है ।

(१) यहाँ धारण करने के सूत्र और अर्थ से भंग बना कर बताया कि जो सूत्र और अर्थ दोनों को धारण करने वाला होता है, वही वास्तविक योग्य होता है । वही उपरोक्त पदों को अंगीकार कर सकता है । यही राजमार्ग है । अपवाद से अर्थात् अन्य कोई भी सूत्र और अर्थ उभय को धारण करने वाला नहीं होने पर केवल अर्थ धारण करने वाले को(अन्य योग्याभाव में) योग्य माना जा सकता है और वह उक्त प्रतिष्ठा के कार्यों का वहन कर सकता है ।

यद्यपि पहले पूर्वधर ज्ञानी ही आचार्य होते थे किन्तु अभी युगानुरूप उपरोक्त हो जाने पर भी जो तप संयम में उद्यत एवं द्रव्य क्षेत्र काल भावोचित विवेक रखने में कुशल हो उसे आचार्यादि पद पर प्रतिष्ठित किया जा सकता है ।

**निबंध-५०**

## द्रव्य पूजा भाव पूजा परिज्ञान

**छज्जीव काय संजमेसु, दव्व थएसो विरुज्झई कसिणो ।**
**तो कसिण संजम विऊ, पुप्फाइयं न इच्छंति ॥१९३॥** *-आव. २ निर्युक्ति ।*

**अर्थ :-** द्रव्य स्तव करने पर पृथ्वी आदि छ काय की हिंसा त्याग रूप संपूर्ण संयम का सम्यग् पालन नहीं होता है । **(पुष्पादिनां लुंचन संघट्टनादिना कृत्स्न संयम अनुपपद्यते)** इसलिये संपूर्ण संयम प्रधान विद्वान मुनि 'पुष्पादि द्रव्यस्तव' की चाहना इच्छा भी नहीं करते हैं ।

**तर्क-** कहा जाता है कि द्रव्य स्तव करने में जो धन का त्याग होता है उससे शुभ अध्यवसाय होते हैं ।

**उत्तर-** 'तदपि यत्किंचित, व्यभिचारात्' वह तो कोईक में होवे अधिक में नहीं होवे और अविवेकी कम समझ वाले में भी नहीं होवे। देखा भी यह जाता है कि अधिकांश लोग मात्र यश कीर्ति के लिये ही करते हैं(या दिखावा परंपरा से) शुभ अध्यवसाय हो भी जाय तो वे तो भाव स्तव से हैं । क्योंकि शुभ अध्यवसाय में द्रव्य स्तव अप्रधान कारण है । प्रधान कारण तो भाव स्तव है । क्योंकि आरम्भ समारंभ तो कर्म फल को देने की प्रधानता वाले हैं ।

***भाव स्तव एव च सति तत्वः तीर्थस्य उन्नति करणं । भाव स्तव एवं तस्य सम्यग् अमरादिभिरपि पूज्यत्वात् तमेव च दृष्टवा क्रियमाणं अन्येऽपि***





***सुतरां प्रतिबुद्धयंते शिष्टाः, इति स्वपरानुग्रहो अपि इहैव इति गतार्थः ।*** इसके पूर्व गाथा १९२ में कहा हैं कि 'द्रव्य स्तव भी अनेक अपेक्षाओं से बहुत गुणकारी भी है; ऐसा कहना ना समझी का कथन है ।(अनिपुण मति वचनमिदं) । तीर्थंकर तो छः काय के हितकारी कथन करते हैं । **छः काय की रक्षा**, यही प्रधान मोक्ष साधन है ऐसा तीर्थंकर फरमाते हैं ।

**गाथा- *दव्वथओ भावथओ दव्वथओ बहुगुणति बुद्धि सिया।***
***अणिउणमई वयणमिणं, छज्जीव हिये जिणा बेंति ॥१९२॥***

***टीका- पृथ्वी कायादिनो हितं प्रधानं मोक्ष साधनमिति जिना तीर्थंकरा बूवते। वित्त का परित्याग, शुभाध्यवसाय, तीर्थ की उन्नति देख अन्य भी बोध पावे इस तरह स्व पर का अनुग्रह करने वाला है- द्रव्य स्तव । इसकी असारता बताने के लिये असारता ख्यापनाय आह- अनिउण मई वयणमिणं इत्यादि । यः प्रकृत्यैव असुंदरः स कथं श्रावकाणामपि युक्तः ॥***

***तस्मात् सति बोधि लाभे तप संयमानुष्ठान परेण भवितव्यं । न यत् किंचित चैत्यादि आलंबनं चेतसि आधाय प्रमादादिना भवितव्यं । तपः संयमोद्यमवतः चैत्यादि कृत्येषु अविराधकत्वात् तथा चाह- चेइय कुल गण संघे आयरियाण च पवयण सुए य । सव्वेसु वि तेण कयं, तवसंजमुज्जमंतेणं (११०१) इन सबके प्रति भक्ति आदि कृत्य करना उसी का है जो तप संयम में उद्यमवान है उसने इन सब के प्रति अपना भक्ति विनय कर दिया समझना चाहिए । यः तप संयमेषु उधमवान् वर्तते तेन एतेषु स्थानेषु कृत्यं (विनय भक्ति) कृतं ।***

**भावार्थ :-** छः काया जीवों की हिंसा रूप द्रव्य पूजा से संयम का सम्यग् पालन नहीं हो सकता है अतः सम्यग् संयम का ज्ञाता मुनि फूल फलादि से पूजा की कभी इच्छा भी नहीं करे !

द्रव्य पूजा से भावों की शुद्धि होना भी एकांत नहीं है और द्रव्य पूजा के बिना भी भावों की शुद्धि हो सकती है ।

भाव शुद्धि का प्रधान कारण तो भाव स्तुति और भाव पूजा है। और वही तीर्थ की उन्नति का कारण है ।

छः काया के जीवों की रक्षा करना यही मोक्ष का प्रथम साधन है । तीर्थंकर एवं श्रमण छः काया के हितकारी कथन ही करते हैं । छः काया की हिंसा प्रेरक वचन तीर्थंकर नहीं कह सकते ।

द्रव्य पूजा द्रव्य स्तव का महत्त्व बताने वालों के वचन अनिपुण

बुद्धि के वचन हैं । इसलिये बोध प्राप्त करने के पश्चात् संयम तप में पुरुषार्थ करना चाहिये किन्तु मूर्तिपूजा आदि के बहाने से संवर धर्म में आलसी नहीं होना चाहिये । संयम तप में जो उद्यमवंत होता है वह चैत्यादि कृत्यों का स्वतः आराधक हो जाता है अर्थात् जिसने तप संयम में उद्यम कर दिया है तो उसने चैत्य, आचार्य, उपाध्याय, गुरु, कुल, गण, संघ प्रवचन, श्रुत इन सब के प्रति कर्तव्य पालन अथवा विनय भक्ति कर दिया है, ऐसा समझ लेना चाहिये । यह मूर्तिपूजकों के मान्य निर्युक्ति ग्रन्थों में आये स्पष्ट उल्लेख का भावार्थ है । इससे कितना स्पष्ट है कि मूर्तिपूजा तप संयम धर्म गुणों में आलस या बहानावाजी की उत्पत्ति का निमितक भी है । उससे बहुत अधिक महत्त्व संवर प्रवृति का है । अतः संवर सामायिक आदि प्रवृतियों को छोड़कर जो केवल पूजा करके धर्म कर लिया, ऐसे संतुष्ठ अमरे बने रहते हैं, वे वास्तव में उक्त प्रमाणानुसार अनिपुण बुद्धि अर्थात् मूढ बुद्धि है ।

**निबंध-५१**

## पदार्थों के परठने सम्बन्धी परिज्ञान

### (द्विदल-मक्खन)

श्रमण सूत्र की चौथी पाटी के ५ समिति के पाठ में ५वीं समिति के विवेचन में आचार्य हरिभद्र सूरि ने अन्यत्र से संपूर्ण **पारिठावणिया निर्युक्ति** अपनी टीका में उद्रत की है । जिसमें अजीव का और जीव के एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के परठने के प्रसंग व विधिएँ बताई है -

**चाउलोदगमाईहिं, जलयर माईण होई सच्चित्ता ।**
**जल थल खह काल गयं,अचित्ते विगिंचणं कुज्जा ॥**

***तंदुलाम्बुना सह मत्स्यो मंडूकी वा समेतौ तौ चाल्य अंबुना सह जले नयेत । जल स्थल खगेषु कालगतेषु, अचित्त नो मनुज पारिष्ठापनिका स्यात् । मृतमत्स्य उंदुर काकादौ ।***

त्रस(विकलेन्द्रिय) जीव ऊरणिका(लट) आदि से संसक्त आहार पानी को शुद्ध करने की और खाने पीने की विधि तथा परठने की विधि बताई है । पानी के समान जीव से संसक्त छाछ की विधि कही है ।

दही, मक्खन त्रस जीव संसक्त हो उसकी विधि बताई है वह इस





प्रकार है - पानी निकाल कर पानी रहित दही व मक्खन को छाछ में या पानी में डाल दो, जीव होगा तो दिख जायेगा उन्हें परठ देना जीव न दिखे तो खा लेना । **संसक्त तक्रस्य अंबुवद विधि ।**

***दधि नवनीतयोस्तु अयं विधि- पूर्व जलं गालयित्वा पिंडी भूत दध्नः एकाउंडी तक्रादौ प्रक्षेप्या चेत्प्राणा स्युस्तदा प्रेक्ष्यंते ततस्त्यज्यते, न स्युस्तदा भुज्यते । नवनीतोऽपि एकाउंडी त्यादि कार्यः । तक्राभावे गोरस धावने क्षेप्या । तस्याभावे शीती भूते उण्णाप्सु, तस्याप्यभावे तंदुलाप्सु क्षिप्त्वा वीक्ष्य शुद्धे, भोज्यम् । अशुद्धयोर्विधिना त्यागं ।***

***दध्नि पात्र पतिते संसक्त भ्रांतौ दधिः पात्रतीरं आनीय पुनः पश्चात् कृत्वा दधि लिप्त तीरे जीवा ईक्ष्याः । इक्षुविकारे कक्कंबेप्येष विधिः । परसमुत्थंमप्येवं ।*** अर्थात् गृहस्थी के बर्तन में रहते शंका हो तो भी इस विधि से परीक्षा कर लेना ।

***रसज- रसजै संसंक्तं तु कांजिकादि(उदक) सपात्रं त्याज्यम्।***

**संसक्त जल में-** जीव परणित हो जाय तो तीन साधु देख कर फिर छान कर पीना अनुज्ञात है । परिणत न हुए हो तो पहले उन्हें निकालने की विधी से निकालना । ***धोवण में फंवारे(पानी के जीव) तथा धावन जले पूतरेषु सत्सु- छानकर थोडे पानी में उन जीवों को लेकर के यदि दाता वापस न ले तो अपकाय में यतना से परठ देना चाहिए ।***

पानी में कीडियां जीवित आ जाय तो तुरन्त छान कर विवेक करना । मक्खी हो तो देखते ही निकालना और मर जावे तो छान कर उपयोग लेना अन्यथा- ***मेधा उवहणंति मच्छियाहि वमी हवई ॥११॥- पर हत्थे भत्ते पाणे वा जइ मच्छिया मरई तं अणेसणिज्जं । संजय हत्थे, उद्धिरिज्जई, नेहे पडिया छारेण गुंडिज्जइ॥ -आवश्यक हरिभद्रीय टीका (पारिठावणिया निर्युक्ति)***

**सारार्थ :-** **१.** पानी में मेंडक मछली आ जाय तो उसे जल में ले जाकर अन्यत्र जल में परठना **२.** पशुपक्षी का मृत कलेवर उपाश्रय में हो तो विवेक पूर्वक यथास्थान परठना **३.** आहार में पानी में दही छाछ में और मक्खन तथा इक्षुकी काकब में त्रस जीव संसक्त है तो विवेक से निकाल कर खाना । यदि न निकल सके तो फिर खाना नहीं किन्तु उस वस्तु को परठ देना । **४.** त्रस जीव युक्त जल में यदि जीव परिणत होकर जीव रहित पानी हो जाय तो तीन साधु निरीक्षण करके फिर छानकर उपयोग में ले सकते **५.** पानी में फंवारे बारीक जीव जल के हों तो उन्हें थोड़े पानी

में निकाल कर दाता वापिस ले तो उन्हें दे देना, न ले तो अन्यत्र जल में यतना से परठ देना चाहिये **६.** रसज जीवोत्पत्ति युक्त आहार हो तो उसे परठ देना और ऐसा पानी आ जाय तो पात्र सहित परठ देना या मिट्टी के बर्तन में डालकर परठ देना **७.** पानी में कीडियाँ आ जाय तो तुरंत छानकर विवेक करना, मक्खी पड जाय तो तुरन्त निकाल देना । स्निग्ध पदार्थ हो तो मक्खी को राख में डालना । **८.** कीड़ी मक्खी आदि मर जाय तो पानी को छानकर उपयोग में लेना **९.** गृहस्थ के हाथ में रहे आहारादि देते समय उसमें मक्खी पड जाय और मर जाय तो वह आहार अनेषणीय है अग्राह्य है और साधु के प्राप्त किये आहार के पात्र में वहीं पर ही मक्खी गिर जाय तो तुरन्त निकाल देना चाहिये।

**निष्कर्ष-** (१) यहाँ मक्खन के संबंधी लेने का और संशोधन करने का एवं खाने या परठने का जो वर्णन है, उससे स्पष्ट है कि मक्खन को अभक्ष्य कहने की प्रथा इस टीका के कर्ता हरिभद्रसूरि के समय तक उत्पन्न नहीं हुई थी । बाद में ही किसी ने प्रचारित की है ।

(२) रसज जीवोत्पति वाले आहार के और जीव युक्त आहारादि परठने के इन अनेक प्रकरणों में **द्विदल** संबंधी किंचित भी कथन नहीं किया गया है । अतः यह द्विदल संबंधी अयुक्त एवं अनावश्यक कल्पना भी बाद में किसी की स्वच्छंद मति से उत्पन्न हुई है । २२ अभक्ष्यों की कल्पना भी इन व्याख्याकारों के बाद में ही चली है ।

(३) जल के जीवों को या फव्वारों को परठने की विधि से यह भी स्पष्ट होता है उन्हें कहीं भी जल में ही परठना चाहिये ।

**निबंध-५२**

## दशाश्रुतस्कंध की आठवीं दशा मूलपाठ परिज्ञान

(निर्युक्तिकार भद्रबाहु स्पर्शित)

***कप्पइ णिग्गंथाण वा णिगांथीण वा वासावासाणं सवीसराइए मासे वीईकंते पज्जोसवणं पज्जोसववित्तए ।१।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ णिग्गंथाण वा णिगांथीण वा सव्वओ समंता सकोसं जोयणं उग्गहं चिट्ठित्तए अहालंदमवि उग्गहे । ।२।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिगांथाण वा णिग्गंथीण वा पज्जोसवणाए इत्तरियं पि आहारं आहारित्तए ।३।***





***वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिगांथाण वा णिगांथीण वा अण्णयरिं विगई आहारित्तए ।४।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ णिगांथाण वा णिगांथीण वा संथारगाइं गिण्हित्तए वा धारित्तए वा ।५।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं कप्पइ णिग्गंथाण वा णिगांथीण वा तिण्णि मत्तागाइं गिण्हित्तए वा धारित्तए वा ।६।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिग्गंथाण वा णिग्गंथीण वा परं पज्जोसवणाओ गोलोम मेत्ताइं पि केसाइं उवाइणावेत्तए ।७।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिगांथाण वा णिगांथीण वा सेहं वा सेहीं वा पव्वावित्तए, णण्णत्थ पुव्वभाविएणं संविग्गेणं ।८।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं णिगांथाण वा णिग्गंथीण वा समिईसु गुत्तीसु सम्मं उवउत्ते भवित्तए ।९।***

***वासावासं पज्जोसवियाणं नो कप्पइ णिंग्गथाण वा णिंग्गथीण वा परं पज्जोसवणाओ अहिगरणं वइत्तए ।१०।***

**भावार्थः- १.** निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थियों को वर्षावास का एक महिना बीस दिन बीतने पर पर्यूषण करना चाहिये ।

**२.** वर्षावास में रहे हुए साधु साध्वियों को गमनागमन के लिये एक योजन और एक कोश का सीमित क्षेत्र रखना चाहिये । इससे बाहर गमनागमन नहीं करना चाहिये ।

**३.** चातुर्मास रहे हुए साधु साध्वियों को पर्यूषण के दिन किंचित भी आहार नहीं करना चाहिए

**४.** चातुर्मास काल में रहे हुए साधु साध्वी को किसी भी विगय का सेवन नहीं करना चाहिए ।

**५.** वर्षावास में साधु-साध्वियों को संस्तारक(पाट घास आदि) ग्रहण करना एवं उपयोग में लेना चाहिए ।

**६.** चातुर्मास में साधु साध्वी को तीन मात्रक ग्रहण करने कल्पते हैं, १.उच्चार मात्रक २.प्रश्रवण मात्रक ३.खेल मात्रक।

**७.** वर्षावास में रहे हुए साधु साध्वी को पर्यूषण के दिन गोरोम जितने बडे बाल रखना नहीं कल्पता है ।

**८.** चातुर्मास में रहे हुए साधु साध्वी को स्त्री पुरूष किसी को भी दीक्षा

देना नहीं कल्पता है किन्तु चातुर्मास के पूर्व से ही जो पूर्व भावित है उसे दीक्षा दे सकते हैं ।

**९.** चातुर्मास में संत सतियों को समिति गुप्ति में विशेष उपयोगवंत रहना चाहिये ।

**१०.** चातुर्मास में रहे साधु साध्वियों को किसी भी कलह को पर्यूषण के दिन पूर्ण समाप्त कर देना चाहिए । उसके बाद उस कलह को रखना या चलाते रहना नहीं कल्पता है ।

तीर्थंकरों का वर्णन, स्थविरावली, संवत-मिति के विकल्प, इत्यादि विषयों का निर्युक्ति में कथन नहीं है । निर्युक्ति में भी अंतिम पाँच गाथा प्रक्षिप्त हुई है ।

मूल पाठ में भी अनेकों प्रक्षेप किया जाना प्रमाण सिद्ध है तो निर्युक्ति में पाँच गाथा का प्रक्षेप कोई असंभव नहीं है । इस विषय में अन्य विविध प्रमाण तर्क युक्त जानकारी अन्य निबंधों मे देखें ।

**निबंध-५३**

## ऐतिहासिक प्रमुख घटनाओं का समय

**वीर निर्वाण संवत**

| | |
|---|---|
| ६४ | दस बोल विच्छेद । |
| २१४ | तृतीय अव्यक्तवादी निन्हव |
| २२० | चतुर्थ शून्यवादी निन्हव |
| २२८ | पंचम क्रियावादी निन्हव |
| ३३६ | प्रथम कालकाचार्य |
| ४५२ | द्वितीय कालाकाचार्य |
| ४७० | विक्रम संवत चला |
| ५४४ | छट्ठा निन्हव रोहगुप्त |
| ५८४ | सातवाँ निन्हव गोष्ठामाहिल |
| ५८४ | बज्र बाहू के स्वर्ग गमन समय १० पूर्व का ज्ञान चौथासंहनन, चौथा सस्थान विच्छेद। |
| ६०९ | सहसमल दिगंबरमत (शिवभूती) |
| ९८० | सूत्र लेखन वलभीपुर |





| | |
|---|---|
| ९९२ | लब्धियाँ विच्छेद |
| १००० | पूर्व का ज्ञान रहा । |
| १००९ | समस्त पूर्व विच्छेद |
| १००९ | वीरभद्र स्वामी देवर्द्धिगणि के पाट पर । २८वाँ पाट, १०५ वर्ष की उम्र, ५५ वर्ष आचार्य पद पर रहे । वीर निर्वाण १०६४ संवत ५१४ में दिवंगत हुए । |
| १६७० | खरतर गच्छ स्थापना |
| २००१ | लोकाशाह द्वारा शुद्ध धर्म, प्रवर्तन विक्रम संवत १५३१ |
| २०५२ | तपगच्छ के आनन्दविमलसूरि द्वारा क्रियोद्धार |
| २०७२ | आचंलिया गच्छ क्रियोद्धार |
| २०७५ | खरतर गच्छ क्रियोद्धार |
| २१८६ | धर्मदास जी की दीक्षा |
| २२८५ | रूगनाथ जी से भीखणजी का मतभेद |

**निबंध-५४**

## विशिष्ट प्रसिद्ध प्राचीन श्रमण परिज्ञान

**१. हरिभद्रसूरि-** संवत ७५० से ८२७ में । प्रधान टीकाकार हुए । अनेक ग्रन्थ (१४४४) रचे ।

**२. हेमचन्द्राचार्य-** जन्म ११४५ में, दीक्षा ११५० में, पदवी ११६६ में स्वर्ग १२२९ में ।

**३. मलधारी हेमचन्द्र-** ११६४ में विद्यमान ।अभयदेवसूरि के शिष्य।

**४. शय्यंभवाचार्य-** वीर निर्वाण संवत ९८ में स्वर्ग गमन

**५. श्यामाचार्य-** वीर निर्वाण संवत ३७८ से ३८६ में । पन्नवणा सूत्र की रचना की (इसमें संदेह भी है)। अपरनाम कालकाचार्य ।

**६.वादिवेताल शांति सूरि-** विक्रम संवत १०९६ में स्वर्ग गमन । उत्तराध्ययन टीकाकार ।

**७. शीलांकाचार्य-** शक् संवत ७९८ में और वि.सं.९३३ से विद्यमान थे। दो अंग सूत्रों के टीकाकार

**८. स्थूलभद्र-** वीर नि.सं.२१९ में स्वर्ग । इनकी बहिनों के लिए महाविदेह से चूलिका लाने की किंवदंति प्रचलित है ।

**९. सिद्धसेन दिवाकर**– वृद्धवादी के शिष्य । वीर नि.सं.५०० में स्वर्ग ।
**१०. समयसुंदर**– विक्रम संवत – १६८६ में विद्यमान ।
**११. संभूतिविजय**– वीर नि.सं.१५६ में स्वर्गगमन ।
**१२. संघदासगणी**– क्षमाश्रमण – पंचकल्प भाष्य और वसुदेवहिंडी के रचियता वि.सं.६०० से ६२० ।
**१३. स्कंधिलाचार्य**– वृद्धवादी के गुरु ।
**१४. वर्धमान सूरि**–विक्रम सं.१०८८ में ।उपमिति भव प्रपंच कथा रची ।
**१५. वज्रस्वामि**– वीर नि.सं.५४८ में स्वर्गगमन ।
**१६. वज्रसेन सूरि**– वज्रस्वामी के शिष्य वीर.नि.सं.५८५ में थे।
**१७. लब्धिसागर जी**– विक्रम सं.१५५७ में श्रीपाल कथा बनाई ।
**१८. रत्नप्रभसूरि**–विक्रम सं.१२३८ में थे । रत्नाकरावतारिका बनाई ।
**१९. यशोदेव सूरि**– पिंड विशुद्धि टीका एवं पाक्षिक सूत्र वृति बनाई। वि.सं.११७६ में ।
**२०.मुनि सुंदर सूरि**– विक्रम संवत १५०३ में स्वर्ग । हजार अवधान।
**२१. मानतुंग सूरि**– विक्रम सं.८०० में । भक्तामर रचनाकार ।
**२२. मल्लिसेन सूरि**– विक्रम संवत १२१४,स्याद्वाद मंजरी बनाई।
**२३. भद्रबाहु स्वामी**– वीर नि.सं.१७० में स्वर्ग । तीन छेदसूत्र बनाये ।
**२४. द्वितीय भद्रबाहु**– विक्रम सं.५५० से ६०० में निर्युक्तियाँ, भद्रबाहु संहिता, उपसर्ग हर स्तोत्र के रचनाकार, वराहमिहिर के भाई।
**२५.बप्पभट्ट सूरि**– विक्रम संवत ८०० में जन्म । ८०७ में दीक्षा, ८११ में आचार्य । सिद्धसेन के शिष्य ।
**२६.प्रद्युम्नसूरि** – विक्रम सं.८०० में । यशोदेव सूरि के शिष्य ।
**२७.प्रद्युम्नसूरि**– वि.सं.१३२२, कनकप्रभ सूरि के शिष्य । **विचारसार प्रकरण** ग्रंथ बनाया उसमें ४५ आगम के नाम संस्कृत श्लोकों में लिखें ।
**२८.पार्श्वचन्द्रसूरि**– वि.सं.१५९७, बालावबोध टब्बा ।
**२९. पादलिप्त सूरि**– आकाशगामिनि विद्या सिद्ध ।
**३०. नेमीचन्द्राचार्य**– वि.सं.१२००, वैर स्वामी के शिष्य ।
**३१. नेमीचन्द्र सूरि**– वि.सं.११२९, उत्तराध्ययन टीका करी ।
**३२. देवेन्द्र गणी**– प्रवचन सारोद्धार, पंचसंग्रह आदि बनाये ।





**३३. देवसूरि जी**– १२२६ में स्वर्ग। स्यादवाद रत्नाकर बनाया ।
**३४. देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण**– वीर निर्वाण ९८०, वि.सं.५१०, आगम लेखन कराया । देववाचक नाम । नंदी रचना की।
**३५. देवसेन भट्टारक**– वि.सं.९५१, दिगंबर, बहुत ग्रन्थ रचे ।
**३६. देवभद्रसूरि**– वि.सं.११६८ में । कथा रत्न कोश बनाया ।
**३७. देवगुप्त सूरि**– वि.सं.११९५ में । वृहत्क्षेत्र समास वृत्ति ।
**३८. तिलकाचार्य**– वि.सं.१२१६ में ।
**३९. जिनेश्वर सूरि**– अभयदेव सूरि के गुरु । खरतगच्छ का प्रारम्भ करने वाले, कथारत्न कोश वि.सं.१०८० में थे ।
**४०. जिनदासगणी महत्तर**– प्रमुख चूर्णीकार । हरिभद्रसूरि से प्राचीन। वि.सं.६५०-७५०, नंदी चूर्णि ७३२ में ।
**४१. जिनवल्लभसूरि**– वि.सं.११६०, अभयदेव सूरि के शिष्य ।
**४२. जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण**– जीतकल्प, विशेषावश्यक भाष्य, क्षेत्र समास, वृहत्संग्रहणी आदि बनाये । वि.सं.६५०-६० के आसपास है । जन्म ६१० में ।
**४३. गंधहस्ती सूरि**– प्रथम आचारांग की टीका प्रारम्भ करी । दूसरा नाम सिद्धसेनाचार्य तत्वार्थ भाष्य की टीका पूर्ण करी ।
**४४. कुंदकुंदाचार्य**– वीरनिर्वाण संवत १००० में ।
**४५. कालकाचार्य**– तीन हुए (१) वीरनिर्वाण सं.२८० में जन्म । दीक्षा ३०० में । ३३५ में पद । ३७६ स्वर्ग । पन्नवणासूत्र के रचनाकार (२) वीर नि.स. ४५३ में (३) वीर नि.सं.९९० में थे ।
**४६. कोट्याचार्य**– विशेषावश्यक भाष्य की अवशेष टीका पूर्ण करी ।
**४७. उमास्वातिवाचक**– वीर नि.सं.१००१, तत्वार्थ सूत्रकर्ता ।
**४८. उदयप्रभसूरि**– वि.सं.१२२० में । आरंभसिद्धि ग्रन्थ रचा।
**४९.आर्यरक्षित**– साडे नवपूर्वी । अनुयोगद्वार सूत्र रचनाकार।
**५०. अमृतचन्द्रसूरि**– वि.सं.९६२, दिगम्बर ।
**५१. अमितगति** – वि.सं.१०५० में थे । गुरु माधव सेन ।
**५२. अभयदेवसूरि**– वि.सं.१०८८ में आचार्य पद, ११३५ में देवलोक हुए । नवांगी टीकाकार ।

**५३. अगस्त्यसिंह सूरि-** आठवीं शताब्दि । दशवैकालिक चूर्णि की रचना की ।

**निबंध-५५**

## चुनिंदा संकलन एवं समीक्षा

(१) मूर्तिपूजक आगमोद्धारक मुनि श्री पुण्य विजयजी ने यह माना है कि कल्प सूत्र के समाचारी विभाग में, **अंतरावि से कप्पइ, नो से कप्पइ तं रयणिं उवाइणावित्तए ।** यह पाठ संभवतः आचार्य कालक के बाद में बनाया गया है ।'

**टिप्पण-** समाचारी विभाग का वह विस्तृत सूत्र ही घड़ाघडाया साफ दिख रहा है । इसका स्पष्टीकरण आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर से प्रकाशित आठवीं दशा के विवेचन में एवं चरणानुयोग ग्रंथ के समाचारी प्रकरण के टिप्पण में देखें । मू॰पू॰ तटस्थ चिंतक आगमोद्धारक मुनि श्री पुण्य विजयजी भी इस पाठ के प्रक्षिप्त दोष से युक्त होने में सम्मत है ।

(२) **प्रबंधं परिजात** पृ.१ में लिखा है कि **निशीथ** पूर्वश्रुत से पृथक किया और फिर पृष्ट दो पर लिखा कि संत सतियों की संख्या बढ़ी स्थिति ने पलटा खाया, नई अनेक समस्याएं खड़ी हुई, जिसे छेद सूत्र(दशा,कप्प, व्यवहार) सुलझाने में अपर्याप्त रहे, नवीन परिस्थितियों को काबू लाने, दोषों और दुष्प्रवृत्तियों को रोकने के लिए, निशीथसूत्र का निर्माण किया गया । आचार्य श्री भद्रबाहु स्वामी ने दो सूत्र में जो प्रायश्चित विधान किया था वह तात्कालीन निर्ग्रन्थ श्रमण-श्रमणियों के लिए ही पर्याप्त था, परन्तु बाद में.....।

**टिप्पण-** आज के अल्पज्ञ आचार्य भी अपने गच्छों की व्यवस्था चलाने के लिए साधारण नियमोपनियम बनाने में भी लंबे काल का विचार करके समाचारी बना सकते हैं, बीच में पूर्वधरों की रचना भी सैकड़ों हजारों वर्षों तक चली आई है एवं चलेगी । तब १४ पूर्वी भद्रबाहु की रचना को एवं विधानों को 'तत्काल के लिए ही पर्याप्त था' यह कहना कैसे उचित हो सकता है ? क्या ऐसी ही सूत्रों की रचना कहलाती है, वह भी आचर शास्त्रों की, वह भी गणधर कृत पूर्वों की और उससे उद्धृत व्यवस्थित किए सूत्रों की, वह भी १४ पूर्वी भद्रबाहु स्वामी की? कमाल कर रही है विद्वानों की कल्पना बुद्धि भी ।





वीर निर्वाण के ४०० वर्षों में ही कालदोष और अगणित परिवर्तन हो चुके थे तो २१०० वर्ष तक आगमों का क्या हाल होगा और कितनी बार नये आचार शास्त्रों के बनाने की कल्पना करेंगे ? वास्तव में ऐसी कल्पना करना ही योग्य नहीं है ।

समय की शिथिलता से शास्त्र परिवर्तन की कल्पना ऐसी है कि जो १४ पूर्वी के या गणधर के महत्त्व को अथवा तो 'उद्धृत' के महत्त्व को न समझने से होने वाली एक भूल है । अथवा समझते हुए भी उदय कर्म की भूल भूलैया से उस चिंतन की तरफ उपेक्षा या अलक्ष रह जाने से, होने वाली यह भूल है । जिसे सुधारने की अत्यन्त आवश्यकता है ।

(३) श्वेताम्बर साहित्य में विशाखागणि का नाम ही नहीं है बारहवीं सदी के बाद किसी अर्द्धदग्ध पंडित ने ये तीन गाथाएँ बनाकर किसी लेखक को दे दी उसने निशीथ पुस्तक में लिख डाली है २० उद्देशे के बाद प्रशस्ति रूप ।- **प्रबंध पारिजात ।**

**टिप्पण-** मुनि श्री कल्याण विजय जी का यह चिंतन योग्य प्रतीत होता है इसी तरह मद्य मांस विषयक पाठों के और अन्य असंगत बातों के लिए भी समझा जा सकता है । तभी आचारांग, दशवैकालिक, भगवती, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि सूत्रों की शुद्धि हो सकेगी ।

(४) अग्रावतार का कथन किसी भी शास्त्र में नहीं होने से सार्वजनिक विधि रूप से महत्त्व देने लायक नहीं है । अतः चोलपट्टक रखना ही आगम प्रश्नव्याकरण सूत्र से प्रमाणित है ।

(५) भद्रबाहु के सूत्र में साध्वियों को आचार प्रकल्प पढने का विधान होने से आर्य रक्षित ने विधान नहीं पलटा, किन्तु मौखिक आज्ञा लगा दी जिससे साध्वी को छेदसूत्र आज तक नहीं पढाया जाता-***प्रबंध पारिजात***

**टिप्पण-** चौदहपूर्वी की आज्ञा आज तक सूत्र में उपलब्ध रहे और उसके विपरीत साढे नौ पूर्वी की आज्ञा भी चलती रहे, ऐसे अघटित खोटे इतिहास उन पूर्वाचार्यों को भी बदनाम करते हैं और आगम और इतिहास के महत्त्व को भी नष्ट करते है ।

(६) आचार्य कालक एवं देवर्द्धि का विवाद समाप्त नहीं हो सका, अपने आग्रह पर दोनों अडे रहे । इसलिए कल्प सूत्र में ९८० और ९९३ दो संवत् लगाने पड़े ।' - ***'प्रबंध पारिजात'***

**टिप्पण-** सूत्र लेखन काल की दो साधुओं की उलझन को भद्रबाहु के सूत्र में, वह भी बीच मे फंसाने की क्या जरूरत पड़ी । वहाँ तो वह उस सूत्र का विषय ही नहीं था । कोई पाठ भेद का या वाचना भेद का कारण भी नहीं था । यदि होता तो भी जब अनेक संदिग्ध अनिर्णित विषय,सूत्रों से हटा दिये गये, तब यह तो कोई पाठ भी नहीं था । फालतु की दोनों की अपनी उलझन सूत्र के बीच में जबरदस्ती क्यों डाले ? और फिर वह उलझन आगे पार्त्तनाथ एवं नेमिनाथ के वर्णन में कहाँ गायब हो गई । देवर्द्धिगणि के द्वारा ऐसा पद्धति विरूद्ध कार्य करने की कल्पना क्यों ?

जब भद्रबाहु के सूत्र में तत्संबंधी कोई पाठ था ही नहीं । तो यह अप्रासंगिक चर्चा विवाद बीच में क्यों ? उलझन थी तो दोनों अपने मन में रखते, अन्य ग्रन्थ बनाकर उसमें विस्तार से डालते । ऐसा न करते हुए उन्हें यहां पर ही डालना क्यों जरूरी हो गया ?

**सबसे अंत में कल्पसूत्र लिखने** की कल्पना भी बिना महत्त्व की है । उस समय तो वह कल्पसूत्र दशाश्रुत स्कंध का अध्ययन ही था उसी में इसका नंबर आ गया था उसके बाद में तो अनेक सूत्रों का नंबर रहता । जब मूल सूत्र पाठों के विवादों मे भी उन आचार्यों के कोई आग्रह नहीं रहा था । किसी भी तरह समन्वय कर लिया गया था, तो यह तुच्छ दुराग्रह मूल सूत्र में लिखकर दोनों का सारे भविष्य के इतिहास में बदनाम होना कि एक बात के लिए समझौते की शर्त से दोनों आचार्य हट गये । ऐसी बिना जरूरत की मूर्खता वे क्यों करते ? वह भी १४ पूर्वी भद्रबाहू के सूत्र में, मूल पाठ में ?

अत: ये सारी इतिहास की कल्पनाएं(संवत सम्बन्धी) मूल में ही निराधार है अर्थात् न उस कल्पसूत्र का कोई ठिकाना है न उस संवत् मिति के पाठ का । तो उसके लिये प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यों(देवर्धि, कालकाचार्य, शांतिसूरि) को बदनाम करने में क्या लाभ ? कल्पसूत्र संबंधी करामातें मलयगिरी आचार्य के बाद की है। उसके पहले पर्यूषणाकल्प सूत्र नामक कोई सूत्र था ही नहीं, न कहीं उसका उल्लेख है । अत: संवत का विकल्प देवर्धि के नाम चढाना केवल स्वार्थान्धता है । ऐसी स्वार्थान्ध दशा में खुद की एवं खुद के बडेरे प्रतिष्ठित पूर्वाचार्यों की प्रतिष्ठा को धूमिल करने में भी शर्म नहीं आई यही भस्मग्रह के पूर्ण प्रभाव का असर था ।





(७) छेद सूत्र नहीं पढने सम्बन्धी आर्यरक्षित का प्रस्ताव उस समय सर्वसम्मत नहीं हुआ, स्कंदिलाचार्य की वाचना के समय भी नहीं हुआ, इसीलिए व्यवहार सूत्र में आज भी पढने का विधान है । तथापि १४०० वर्ष से साध्वियों को पढना बंद है इत्यादि । **- प्रबन्ध पारिजात**

**टिप्पण** - यह अंधश्रद्धा का इतिहास कैसे चल सकता है । १४०० वर्ष में कोई भी यह नहीं सोच सका कि १४ पूर्वी और गणधर की रचना के विपरीत भी आज्ञा लगाने का अधिकार किसी को हो सकता है ? क्या आर्यरक्षित जैसे प्रतिष्ठित आचार्य ऐसी मौखिक आज्ञा लगा सकते हैं ? जो सूत्र विधान के विपरीत होते हुए भी चलती रहे ।यह आर्यरक्षित को और अन्य साधुओं को गणधर और भद्रबाहु स्वामी की आशातना से कलंकित करना नहीं है ?

(८) जिनदास गणी कृत दशवै. चूर्णि में कही गई ध्यान की परिभाषा का खंडन अगस्त्य चूर्णि में किया गया है ।

(९) जिनदास गणी ने अनेक भाष्य गाथाओं का प्रयोग अपनी चूर्णियों में किया गया है एवं हरिभद्र सूरि ने चूर्णियों का उपयोग किया है । भाष्यकार जिनभद्र का उत्तरकाल विक्रम संवत ६४०-६० के आसपास है ।जिनदास गणि का ६५० से ७५० के मध्य है ।हरिभद्र का सत्ताकाल ७५० से ८२७ के मध्य है ।अगस्त्य सिंह सूरि जिनदास गणी के समकालीन या कुछ पश्चातवर्ती है अत: आठवी शताब्दि के होना संभव है ।

(१०) १४पूर्वी भद्रबाहुस्वामी के निर्युक्तिकार होने का कथन जो विशेषा-वश्यक भाष्य की टीका में है वह स्वोपज्ञ टीकांश में नहीं है किन्तु अन्य टीकाकार कोट्याचार्य की टीका में है । ऐसा पं. दलसुख मालवणिया ने स्थल निकाल कर बताया एवं समझाया है । कोट्याचार्य ८वीं ९वीं शताब्दि के हैं । हरिभद्रसूरि के समकालीन या कुछ पूर्ववर्ती है ।

(११) निशीथ उ. १९ के पाठ को लेकर यह कल्पना की गई है कि महाराष्ट में निशीथ की रचना हुई इसलिए अमांत मान्यता का प्रभाव सूत्र रचना में भी आ गया ।

**टिप्पण-** क्या आर्यरक्षित आदि पूर्वधारी प्रतिष्ठित आचार्य अनेक आगमों से विरूद्ध क्षेत्रिक मान्यताओं से प्रभावित हो सकते है ? और उसे सूत्र में सम्बद्ध कर सकते हैं ? ऐसी क्लिष्ट कल्पना न करके सही ढंग से सूत्र का अर्थ कर लेना ही पर्याप्त होता है। जिससे पूर्वाचार्या को कलकित

भी नहीं करना पड़े और आगमों से विपरीत प्ररूपणा भी न हो ।विशेष जानकारी के लिए ब्यावर से प्रकाशित निशीथ उ.१९ का विवेचन देखें।

(१२) अगस्त्य सिंह सूरि की दशवै. चूर्णि में अनेक भाष्य गाथाएं होना मुनिश्री पुण्यविजय जी ने स्वीकार किया है । भाष्यकार जिनभद्र गणी का वि.सं. ६१० में जन्म होना संभव है । ई. स. ६०९ में वे जीवित थे । ***-अगस्त्य चूर्णि की प्रस्तावना पृष्ठ ७ से ।***

(१३) इस प्रकार ७२ सूत्रों का लेखन देवर्द्धि द्वारा होने के बाद कालांतर से व्याख्याएं भी समय पर क्रम से लिखी गई अर्थात् पहले निर्युक्तियाँ, फिर भाष्य, फिर चूर्णियों की रचना हुई, जो उनके रचनाकारों के संवतों से स्पष्ट है ।

(१४) वराहमिहिर द्वारा-पंच सिद्धांतिका वि.सं. ५६२ में रची हुई है । इन्हीं वराहमिहिर के भाई भद्रबाहु स्वामी थे उन्हें १४ पूर्वी भद्रबाहू का भाई कह देना भ्रम है ।- ***वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ प्रस्तावना पृ. १७ के आधार से*** ।

**१.** विक्रम संवत ५१० में देवर्द्धि गणी कालकाचार्य शांतिसूरि आदि द्वारा आगम लेखन हुआ ।

**२.** वि. सं. ५६०-६०० में वराहमिहिर के भाई द्वितीय भद्रबाहु स्वामी निर्युक्तिकार हुए ।

**३.** वि. सं. ६००-६२० संघ दासगणि भाष्य एवं वसुदेवहिंडि के रचनाकार हुए ।

**४.** वि. सं. ६५०-६० जिनभद्रगणि भाष्यकार का उत्तर काल है इनका जन्म वि.सं. ६१० है ।

**५.** वि. सं. ६८० से ७५० जिनदास गणि चूर्णिकार । नंदी चूर्णि में ७३२ वि. संवत है ।

**६.** वि. सं. ७०० के बाद अगस्त्यसिंह सूरि ।

**७.** वि. सं. ७२० कोट्याचार्य विशेषावश्यक भाष्य के टीकाकार (अपूर्ण को पूर्ण की)

**८.** वि. सं. ७५०-८५० गंधहस्ति अपरनाम सिद्ध सेनाचार्य-तत्वार्थ भाष्य की टीका पूर्ण की एवं आचारांग टीका प्रारम्भ की ।

**९.** वि. सं. ७५७-८२७ हरिभद्रसूरि अनेक ग्रन्थ कर्ता एवं टीकाकार ।





**१०.** वि. सं. ९०० के बाद शीलांकाचार्य दो अंगों के टीकाकार हुए ।

**११.** वि. सं. ९५०-१००० - अभयदेवसूरि नवांगी टीकाकार हुए।

**१२.** वि. सं. १०५० से ११३० आचार्य मलधारि हेमचन्द्र तथा देवन्द्र सूरि और मलयगिरी आचार्य टीकाकार हुए ।

**१३.** वि. सं. १२००-१३०० में कलपसूत्र की संरचना हुई ।

**१४.** वि. सं. १३००-१४०० में कल्पांतर वाच्यों की रचना(कल्पसूत्र की टीकाएँ)

**१५.** वि. सं. १२००-१४०० पट्टावलियों आदि इतिहासों की रचना ।

शक संवत और विक्रम संवत में १३५ वर्ष अंतर होता है ।वीर संवत् और विक्रम संवत में ४७० वर्ष का अंतर होता है । वि.सं. और इस्वी सन् में ५७ वर्ष अंतर होता है ।सिद्धसेन गणि ने अकलंक देव के तत्त्वार्थ वार्तिक का खूब उपयोग किया है अकलंक देव ने प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक, धर्मकीर्ति का खंडन किया है सिद्ध सेनगणि के दादागुरु सिंहसूरि ने नयचक्र टीका में धर्मकीर्ति का कोई उल्लेख नहीं किया है । किन्तु विशेषावश्यक भाष्य से गाथाएँ उद्धृत की । भाष्यकार जिनभद्रगणी का और धर्मकीर्ति का समय निश्चित है अत:-

| | | |
|---|---|---|
| १. भाष्यकार का समय | - | वि.सं.६५० निश्चित |
| २. सिंहसूरि | - | वि.सं.६७४ अनुमानत: |
| ३. धर्मकीर्ति का | - | वि.सं.६८२-७०७ निश्चित |
| ४.अकलंक देव का | - | वि.सं.७५० अनुमानत: |
| ५. हरिभद्रसूरि | - | वि.सं.७५७ से ८२७निश्चित |
| ६. सिद्धसे गणी का | - | वि.सं.७७५ से ८६० (अनुमानत:) |

७. हरिभद्र सूरि ने तत्त्वार्थ भाष्य टीका में सिद्धसेन की टीका का अनुसरण किया है ।

**नोट**-इन वर्णनों की मूलत: जानकारी के लिए बृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना और जैन साहित्य का इतिहास(लेखक- पं. कैलाशचन्द जी शास्त्री) देखना चाहिए ।

(१५) संपूर्ण कल्पसूत्र के रूप में दशाश्रुतस्कंध सूत्र का आठवाँ अध्ययन होने के प्रचार में निम्न स्थल संदेह पैदा करने वाले होते हैं एवं उसे असत्य सिद्ध करते हैं - **१.** किसी भी आगम में संवत् मान्यता भेद अनावश्यक

एवं अनुपयुक्त होता है । इस चर्चा का छेद सूत्र से कोई सम्बन्ध ही नहीं है **२.** स्थविरावली गत वंदन स्तुति आदि वर्णन को आँख मीचकर भद्र बाहु का मान लेना, कह देना तो अंधश्रद्धा से ही हो सकता है **३.** समाचारी की रचना शैली एवं विषय वर्णन चौदह पूर्वी भद्रबाहु स्वामी द्वारा रचित सूत्र पाठों से व अन्य आगमों से विरूद्ध और असंगत लगते हैं **४.**उपसंहार वाक्य की रचना और भावार्थ भी भक्ति या स्वार्थ के अतिरेक से युक्त है और हास्यास्पद भी है।

(१६) कल्पसूत्र के लिये श्रद्धा या प्रचार कुछ भी हो किन्तु ७२-४५-३२ या ८४ आगमों की प्रचलित संख्या में कहीं भी इसका स्वतंत्र नाम नहीं है । निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णियाँ, टीका आदि मलयगिरि आचार्य तक के किसी भी व्याख्याग्रन्थ में इस सूत्र का नाम निशान तक नहीं है ।

(१७) आचार्य रामचन्द्र सूरी के विद्वान संत भी इसे पूर्ण शुद्ध एवं १२०० श्लोक प्रमाण भद्रबाहू का नहीं है यह तो लिखित स्वीकार करते हैं और किसी अन्य कृत चूलिका, परिशिष्ट और हस्त प्रत के शाइड टिप्पणों से मिक्स होने से अशुद्ध और विकृत होना भी स्वीकार करते हैं इससे भी संपूर्ण भद्रबाहू का होने की प्ररूपणा करने पर तो कुठाराघात होता है ।

अनेक कृत प्रक्षेप या स्वत: हुए प्रक्षेप ध्यान में आने के बाद उन स्थलों को उस सूत्र में रखते हुए, उस सम्पूर्ण सूत्र को मौलिक कर्ता के नाम से प्रचार करना और अक्षर-अक्षर का महत्त्व आगम के बराबर कहना, कभी भी उचित कृत्य नहीं कहा जा सकता है और जैन साधु के लिये तो ऐसा करना सर्वथा अनुचित ही होगा ।

कोई भी मंदिरमार्गी विद्वान संत १३वीं शताब्दी के पूर्व का ऐसा कोई प्रमाण बताने का प्रयत्न करे कि जिसमें इस पर्यूषणा कल्पसूत्र के १२०० श्लोक जितने का नाम सहित स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध हो ।

(१८) इस नूतन नामकरण युक्त कल्पसूत्र को व्यवस्थित करने वाले आचार्य ने दशाश्रुतस्कंध सूत्र के आठवें अध्ययन के नाम से प्रसिद्ध करने के लिये इसकी मौलिक रचना नहीं की थी । किन्तु बाद में इस स्वतंत्र सूत्र को छाद्मस्थिक दोष से आठवीं दशा के नाम से प्रसिद्ध किया गया और उसे जमाने के लिये आठवीं दशा के मूल में हस्तक्षेप भी किया । यह सुनिश्चित तत्त्व है ।





इसमें कारण यह है कि सूत्र की संकलना में प्रारंभ से तीर्थंकर वर्णन है । सूत्र की संकलना करने वाले आचार्य को आठवीं दशा के नाम से करना होता तो वे उसकी निर्युक्ति चूर्णि का अनुसरण करते। निर्युक्ति और उसकी चूर्णि में प्रारम्भ से 'पर्यूषणा की व्याख्या है, उसे वे १००० श्लोक के बाद नहीं रखते ।

(१९) आज आठवीं दशा में जो संक्षिप्त पाठ प्राय: प्रतियों में उपलब्ध है, दशाश्रुत स्कंध चूर्णि (चंपक सागर द्वारा संपादित) में भी वही संक्षिप्त पाठ उपलब्ध है किन्तु यह संक्षिप्त पाठ दशाश्रुत स्कंध की निर्युक्ति चूर्णि का अनुकरण करने वाला नहीं है । किन्तु स्वतंत्र बने प्रसिद्ध कल्प सूत्र का अनुकरण करने वाला है । यह दोष सूत्रकार या लिपि प्रारंभ काल का नहीं है किन्तु बीच के काल में अशुद्ध आगम हस्तक्षेप के प्रभाव का फल है । होशियारी करने वालों ने करी तथा चलाई भी इस स्वतंत्र सूत्र के महत्त्व प्रसिद्धि के लिये । किन्तु सावधानी युक्त होशियारी करते तो निर्युक्ति चूर्णि का खयाल भी करते । किन्तु उनकी यह भूल अन्वेषकों के लिये उपयोगी है । आठवीं दशा के उस उपलब्ध संक्षिप्त मूल पाठ में **तेणं कलेणं तेणं समएणं... (पाँच हस्तुत्तर कहकर) ....जाव भुज्जो उवदंसेइ ।** ऐसा संक्षिप्त पाठ है जिसकी कि निर्युक्ति एवं चूर्णी से ही अप्रामाणिकता स्पष्ट है । निर्युक्तिकार १०००-११०० श्लोक प्रमाण सूत्र पाठ को छोडकर आगे के पाठ से निर्युक्ति करे और उसकी चूर्णि करने वाले आचार्य भी उसकी ही प्रारंभिक रूप से व्याख्या करे और कोई स्पष्टीकरण न करे कि हम इतना सूत्र छोडकर आगे से निर्युक्ति चूर्णि इस कारण से कर रहे हैं इत्यादि । अत: आठवीं दशा का उपलब्ध संक्षिप्त प्रारम्भ और अंत दोनों ही अशुद्ध मानस से चलाया गया पाठ है किन्तु मौलिक नहीं है ।

(२०) गणधर तथा भद्रबाहू स्वामी के अन्य सूत्र भी उपलब्ध है, उनमें किसी भी बीच के अध्ययन में नवकार मंत्र का प्रयोग नहीं है। यहाँ तक कि तीन छेद सूत्रों में तो कोई मंगल पाठ का नाम निशान भी नहीं है । तो यह नवकार मंत्र युक्त नया प्रसिद्ध सूत्र श्री भद्रबाहु स्वामी का अक्षरश: १२०० श्लोक प्रमाण का प्रसिद्ध करना कैसे उचित है ? और इस मिश्रित बने सूत्र के लिए भगवान के द्वारा परिषद् में अनेकों बार अर्थ सहित व्याख्यान करने का कथन करना, इत्यादि उपसंहार वाक्य से

समझाना तो मानों मूर्खों को उल्लू बनाने का ही प्रयास है ।

(२१) निर्युक्ति गाथा ६२ में जो संकेत किया गया है वह संद्धिग्ध भी है विचारणीय भी है । उस गाथा में मंगल निमित्त भी कहा है । सोचने की बात यह है कि प्रारंभ की ६१ गाथा में एवं उसके आधार भूत मूल पाठ में बिना किसी मंगल के ही वर्णन है । मंगल की प्रथा वाले आदि मंगल तो अवश्य करते ही है मध्य या अंत मंगल में भजना या नास्ति होती है । किन्तु इस अध्ययन के लिये निर्युक्ति में आदि मंगल के बिना मध्य मंगल क्यों किया ?

वास्तव में इस दशा के मौलिक विषय की व्याख्या ६१ गाथा तक पूर्ण प्राय: हो जाती है और इस ६२ वी गाथा की चूर्णि में 'स्थविर गणधर' ऐसा वैकल्पिक पाठ स्वीकार किया गया है । (देखें पुण्य विजयजी कृत कल्पसूत्र चूर्णी) मूल पाठ के संक्षिप्त पाठ में भी जब निर्युक्ति व्याख्या से विपरीत घड कर रखा जा सकता है तो उसके सामने ६२ से ६७ तक पाँच निर्युक्ति गाथा को घडना या रखना कोई बडी बात या असंभव सा कुछ नहीं है ।

(२२) भगवान के मुख से बारंबार कहलाये जाने वाले अध्ययन में, उनके हजार वर्ष बाद वाले साधुओं के वंदन के पाठ घड कर असत्य प्ररूपणा कर लोगों को भगवान व भद्रबाहु रचित अध्ययन होने का ढोल पीटकर दैनिक समाचार पत्रों में छपाकर भ्रमित करना बहुत बडा जघन्य कृत्य है । यदि अनजान से हो तब तो वह क्षम्य है । (फिर भी पदवीधरों को अनुप्रेक्षणा का कर्तव्य भी निभाना आवश्यक होता है ।) अत: किसी मौलिक सूत्र में तीर्थंकर गणधर का वर्णन रहा होगा और वहीं से इस कल्प सूत्र में आकर वृद्धिंगत हुआ होगा, तो भी मौलिक तो इतना ही समझना कि..... **जाव गणधरा सावच्चा निरवच्चा वोच्छिण्णा ।** इतने को ही आगमिक मौलिक तीर्थंकर थेरावली या गणधरावली समझना । जिसका संकेत समवायांग से और पुण्य विजयजी संपादित इस अध्ययन की ६२ वीं निर्युक्ति गाथा की चूर्णि से स्पष्ट होता है ।

(२३) देवर्द्धिगणी खुद ही खुद को सूत्र में वंदन करे यह भी असंभव है अर्थात् वह अन्य कर्तृक है ***अत: देवर्द्धिगणी ने सुधार वधार कर स्थविरावली को अंतिम रूप दिया*** यह कथन भी व्यर्थ की कल्पना है । देवर्द्धिगणी और देववाचक एक ही व्यक्ति है ऐसा पूर्वाचार्यों का मत भी है । न भी माना





जाय तो भी ये समकालीन थे । इसे इन्कार करने में तो कोई प्रमाण नहीं हैं । देवर्द्धिगणी वीरनिर्वाण ९८० व ९९३ के मध्य में थे और आगम लेखन कार्य कराया तथा देववाचक भी नंदी में स्कंदिलाचार्य के बाद छ: महापुरूषों को वंदन गुण ग्राम करते हुए दुष्यगणी का कीर्तन करते हैं । इतिहास व काल गणना से दूष्यगणी को वंदन करने वाले इस समय को ही प्राप्त होते हैं । अत: नंदी रचना काल और आगम लेखन काल लगभग समकालीन होता है ।

देवर्द्धिगणी भद्रबाहु रचित आठवीं दशा में ऐसी मिश्रणता क्यों करे ? स्वतंत्र पर्यूषणा कल्प सूत्र बनाते तो ७३ आगम में ३ कल्पसूत्र की जगह चौथा पर्यूषणा कल्प सूत्र नाम और रखा जा सकता था । देवर्धिगणि सूत्र में खुद को वंदन क्यों करे ? इस कारण इस कल्प सूत्र को देवर्द्धि तक पहुँचाना उनसे सुधारा वधारा कराना इत्यादि कल्पना-परंपरा, महत्त्वशील नहीं है अपितु व्यर्थ ही है । जो उपरोक्त प्रमाण चर्चा से स्पष्ट है ।

(२४) इन इतिहास संग्रह करने वालों ने नंदी की युग प्रधानावली, व कल्पसूत्र की स्थविरावली के बाद श्री धर्मघोष सूरिकृत स्तोत्रगत पट्टावली को तीसरे नं. में लिया और उसकी रचना तेहरवीं शताब्दि की बताई है। **कहावली** ग्रन्थ की पट्टावली को तीसरे नं. में स्थान नहीं दिया है। अब इसका(कहावली का) नं. चौथा आदि होगा जिससे वह पट्टावली तेरहवीं शताब्दि के बाद अर्थात् १४वीं शताब्दि की रचना हो सकेगी ।इस प्रकार **१.**कल्प सूत्र की **२.** नंदी की **३.** स्तोत्रगत पट्टावली **४.** कहावलीगत पट्टावली यों इतिहास चिंतको की कल्पना है । वास्तव में नं. १ स्तोत्र गत है । नं.२ में कहावली गत पट्टावली है । नं.३ में कल्प सूत्रगत है ।

(२५) पुण्यविजयजी ने बृहत्कल्प भाष्य भाग ६ की प्रस्तावना में प्रमाण चिंतन सहित स्पष्ट निर्णय दिया है । वह उनके चिंतन अध्ययन परिश्रम का सही परिणाम है । उस प्रस्तावना के प्रकाशन के पूर्व किसी के निरीक्षण व उपालंभ से कुछ एकाध प्रमाण तर्क व पर बुद्धि प्रभाव से उसी में **आमुख** लिखा है जो विचारणा की कसौटी पर खरा नहीं उतरता है। उसके बाद के उनके द्वारा संपादित **दशवैकालिक चूर्णि** की प्रस्तावना से उसका कुछ निरसन हो जाता है । दशवैकालिक प्रस्तावना लेखक स्वयं मालवणियाजी ने प्रमाणचर्चा सहित एल.डी. में समझाया कि यह अगस्त्य चूर्णि भाष्यों के बाद की रचना है । पुण्य विजय जी को कुछ देवर्द्धि पूर्व

का भ्रम हुआ था, किन्तु ज्यादा चिंतन में नहीं गुजरा था, अन्यथा उनके ध्यान में आ सकता था कि अमुक पहलु मात्र से इसे, उस काल में नहीं ले जाया जा सकता है । निर्युक्तियों के द्वितीय भद्रबाहु की होना, देवर्द्धि के बाद की होना, विक्रम संवत ५५० वर्ष के बाद व वीरनिर्वाण १००० वर्ष के बाद होने का उनका आशय प्रस्तावना में सप्रमाण चर्चित है ।

**आमुख** में जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण के विशेषावश्यक भाष्य की श्वोपज्ञ टीका के प्रमाण को निरसन करते हुए श्री दलसुख मालवणिया ने सप्रमाण समझाया कि यह टीका बाद के व्याख्याकार कोट्याचार्य की है । जिनभद्रगणि की स्वोपज्ञ टीका भी है किन्तु अधूरी है उसे कोट्याचार्य ने पूर्ण की है । कोट्याचार्य की टीका के अंतरगत वह पुण्यविजयजी का **आमुख** का कथन है । वास्तव में पर प्रेरणा व उतावल में उन्होंने **आमुख** लिखा होने से यह भूल हुई है । सही चिंतन तो उनका प्रस्तावना' में स्पष्ट है । अतः निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, व्याख्याओं संबंधी यह ऐतिहासिक नोंध, चिंतन, निर्णय मूर्तिपूजक पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजयजी म.सा.व.पं. दलसुख मालवणिया के अनुभव से अविरूद्ध है, सम्मत है ।

(२६) प्रथम गाथा में जो प्राचीन भद्रबाहु को वंदन दशाश्रुत स्कुध की निर्युक्ति में किया है, उसको भी मुनि श्री पुण्य विजय जी ने अच्छी तरह समझाया है कि चूर्णीकार ने इस गाथा को निर्युक्तिकार की ही मानी है और उन्होने सूत्रकर्ता भद्रबाहू को वंदन किया है ऐसा बताया है । वे कोई उलझन में भी नहीं पडे कि निर्युक्ति गाथा में भद्रबाहु को वंदन कैसे ? अतः चूर्णिकर्ता के समय तक तो १४ पूर्वी भद्रबाहु के निर्युक्ति रचने का वातावरण नहीं था । तभी उन्होंने बिना किसी हिचकिचाट के कह दिया कि निर्युक्ति कर्ता सूत्र कर्ता भद्रबाहु को आदि मंगल रूप में वंदन करते हैं । पूज्य पुण्यविजयजी म.सा. ने यह भी कहा कि इस चूर्णी व्याख्या के होने से कोई कल्पना नहीं कर सकता कि यह तो कोई बाद की प्रक्षिप्त या भाष्य गाथा है । इतने पर भी कोई अपने आग्रह पोषण के लिये कुछ भी कल्पनाएं करता रहे और कल्पनाओं रहित मूल शुद्ध तत्व को दुराग्रह के कारण स्वीकार नहीं करे, साथ ही सही अन्वेषण तटस्थ विचारकों को अविश्वास पूर्ण मस्तिष्क वाला मानकर आत्म वंचना करे, उन लोगों का तो कोई भी उपाय नहीं हो सकता ।

(२७) हिमवंत थेरावली या कल्प थेरावली को नंदी पूर्व की रचना





कहने मात्र से कुछ सिद्ध नहीं हो सकता । कल्पसूत्र संबंधी तर्कों का उत्तर देना पहले आवश्यक है । अन्यथा जिस सूत्र का स्वतंत्र अस्तित्व और नामकरण नहीं था उसे प्राचीन प्रमाण कोटी में कैसे रखा जा सकता है। प्रकाण्ड इतिहास वेत्ताओं ने भी हिमवंत थेरावली को नंदी पूर्व की नहीं बताई है पट्टावली पराग आदि ग्रन्थों में देखा जा सकता है ।

(२८) शिलालेख और खुदाई के प्रमाण और उसका निर्णय भी भ्रम पूर्ण है । देवर्द्धिगणी के बाद प्रतिस्पर्धा से चले जैन-जैनेत्तर साधुओं, राजाओं आदि के संस्कारों, नकलों और करामातों का परिणाम है । अतः इसके पूर्व समय की कल्पना और इस विषय के वातावरण की कल्पना आदि बहुत अंधकार में है ।

(२९) देवर्द्धि के पूर्व हुई वाचनाओं का तात्पर्य मौखिक वाचना को संग्रहित कर व्यवस्थित चलाना मात्र समझना उचित है । "१५० वर्ष पूर्व संकदिलाचार्य ने समस्त पंचागी सहित आगम लिखवा कर सुरक्षित करवाये," यह कथन बहुत बाद की असंगत कल्पना मात्र है। क्योंकि तर्क होता है कि ऐसी कौन सी सुरक्षा थी जो १५० वर्ष में विलुप्त और पूर्ण विलुप्त हो गई और देवर्द्धि द्वारा की गई सुरक्षा आज १५०० वर्ष तक चल गई और कुल २०००० वर्ष तक भी चल जायेगी ?

यदि स्कंदिलाचार्य के समय पंचागी(मूल निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका) की रचना और सुरक्षा हो गई थी तो उन व्याख्याओं के रचनाकार तीन पूर्व से अधिक ज्ञानी थे, यह निश्चित होगा । उसकी लिपिबद्ध रचना उनके नाम से लिखित व मौखिक १५० वर्ष भी नहीं चली क्या? नंदी सूत्र कर्ता दूष्यगणी के शिष्य एक पूर्वधरों की रचना को श्रुत ज्ञान वर्णन में, उस ग्रन्थ या आगम के नाम सहित निर्देश करे और १४ पूर्वी से लेकर ३ पूर्वी तक के व्याख्या ग्रन्थों का स्वतंत्र सूत्र रूप से या पंचागी रूप में नाम निर्देश भी नंदी में नहीं करे, यह संभव नहीं है । अतः बाद की उठाई गई भ्रमित धारणाएँ है । कई नाम साम्य से व कई अन्य विचारों से चलाई गई धारणा परंपराएँ है । वास्तव में यह स्पष्ट निर्णय है कि देवर्द्धि के समय आगम लिपिबद्ध हुए उसके पहले अर्थ और परमार्थ केवल मौखिक गुरुपरंपरा में चलते रहे । जब आगम लिपिबद्ध हुए तो सर्व प्रथम आचार शास्त्रों की निर्युक्तियाँ, फिर भाष्य, चूर्णियाँ लिखित तैयार हुई । फिर अन्य सूत्रों की और भाष्यों की टीकाएँ, हरिभद्रसूरि,

शीलांकाचार्य, अभय- देवसूरि एवं मलयगिरि आदि द्वारा की गई । कई ने संकल्प या सहयोग या प्रारंभ मात्र किया या उनकी टीका प्रसिद्धि प्रचार न बढ़ने से लुप्त हुई । और प्रसिद्ध पर्युषणाकल्पसूत्र पर विद्धानों की कृपा दृष्टि मलयगिरि आचार्य के बाद में हुई । दशाश्रुत स्कंध की निर्युक्ति परक चूर्णी मौलिक है और स्वतंत्र पदव्याख्या चूर्णी अन्य कर्तृक है उसका अलगाव भी ग्रन्थ में स्पष्ट दिखाई देता है ।

(३०) धुवसेन राजा तीन होने का वर्णन मिलता है ।**प्रथम**-गुप्त संवत २०० से २३० में वीर निर्वाण संवत १०४६ से १०७६ में विक्रम संवत ५७६ से ६०६ में । **दूसरे**-विक्रम संवत ६४८ से ६९९ में वीर निर्वाण ११५४ से ११५९ में । **तीसरे**- विक्रम संवत ७०७ से ७११ में वीरनिर्वाण ११७७ से ११८१ में । धुवसेन राजा के पुत्र की मृत्यु विक्रम संवत ५८४ में । शास्त्र लेखन विक्रम संवत ५१० से ५२३ के बीच ।

(३१) गुप्त संवत, वलभी संवत, मैत्रक संवत ये तीनों पर्यायवाची है ।

(३२)''आजकल का पर्यूषणा कल्प बारह सौ श्लोक परिमाण वाला है परन्तु यह परिमाण मौलिक नहीं है ।...। वर्तमान में जो अंतिम अधिकार समाचारी रूप है उतना पर्यूषणा कल्प था उसका पठन श्रमण वर्ग काल ग्रहणपूर्वक रात्रि के समय में करते थे। इसकी उस समय नव वाचनाएँ नही थी और न यह चतुर्विध संघ की सभा में पढा जाता था ।''**-मू.पू. *मुनि श्री कल्याणविजय जी म.सा. ।***

(३३) **प्रबंधपारिजात** पृ.१५२- संदेह विषौषधि नामक **कल्प पंजिका** (कल्प टीका) में अपना मंगलाचरण करने के बाद लिखा है कि **पर्यूषणा कल्प की किन्हीं २ प्रतियों में मंगलार्थ पंच नमस्कार किया हुआ दृष्टिगोचर होता है**- केषुचिदादर्शेषु इस शब्दं से यह प्रतीत होता है कि पंच नमस्कार प्रारम्भ में नहीं था । यह बाद में जोड़ कर प्रक्षिप्त किया गया है ।

(३४) ८८ ग्रहों में भस्मराशि नामक तीसवां ग्रह है, जो भगवान के जन्म नक्षत्र पर आया हुआ था । उसकी स्थिति दो हजार वर्ष की होती है । यह वर्णन कल्पसूत्र के मूलपाठ में है । इस ग्रह दशा के कारण मूर्तिपूजा और यतियों का शिथिलाचार चला । इस ग्रहदशा के समाप्त होने पर ही स्थानकवासी धर्म प्रगटा ।

(३५) **तित्थोगालीय पइण्णा** हमने(कल्याण विजय)अच्छी तरह पढा है,





इसमें इन गाथाओं का नामोनिशान तक नहीं है । वास्तव में पूर्णमिक आंचलिक आदि नूतन (मूर्तिपूजक) गच्छ प्रवर्तकों ने इस प्रकार की अनेक नवीन गाथाऐं बनाकर तित्योगालीय पइण्णा, महानिशीथ आदि ग्रन्थों में प्रक्षिप्त करदी है । उसी प्रकार की कोई पुस्तक जिनप्रभसूरी को हाथ लगी और उसे प्रामाणिक मान लिया, किंतु उन्होंने वह ठीक नहीं किया । इन गाथाओं में सांवत्सरिक चातुर्मासिक तिथि के संबंध का विषय है । जिनप्रभसूरी तपागच्छी विद्वान थे ।

(३६) जिनप्रभसूरि ने **शुद्ध विकट** शब्द का अर्थ अचित्त बनाया हुआ जल और 'उष्ण विकट' शब्द से उष्ण जल किया है ।

(३७) **प्रबंध पारिजात** पृ.१५६ में टीका दी है जिसमें धोवण जलों का अर्थ बताया है । उसके अंत में लिखा है कि तेले से उपर की तपस्या वाले के शरीर में प्राय: देवता निवास करते हैं अत: शुद्ध गर्म जल ही पीना रहता है । अर्थात् उसके पूर्व तेले तक धोवण पीया जा सकता है ।

(३८) ४बार उपाश्रय प्रमार्जन- १.सुबह प्रतिलेखना के बाद २. आहार करने के पहले ३.आहार करने के बाद ४. चौथे प्रहर के अंत में ।

(३९) पन्यास संघविजय जी ने कल्प सूत्र प्रदीपिकावृति में शुद्धोदक का अर्थ गर्म जल या वर्णांतरादि प्राप्त शुद्ध जल लिखा है और उष्ण विकट को केवल उष्ण जल कहा है ।

(४०) **प्रबंध पारिजात** पृ.१६० में प्रादप्रोंछन का अर्थ रजोहरण करने का खंडन किया है । क्योंकि उपाश्रय बाहर जाते हुए श्रमण को अपने उपकरण गृहस्थ को भलाने की सूचना में पादप्रोंछन का नाम है । रजोहरण तो सदा साथ रखने का होता है और साधु के पास एक ही रहता है उसे छोड़कर जाने का तो प्रश्न ही नहीं होता है । किन्तु पादप्रोंछन तो छोटा सा एक हाथ प्रमाण का वस्त्र खंड होता है । इसे रजोहरण कह देना या मान लेना अविचारकता है ।

(४१) **प्रबंध पारिजात** पृ.१८९ पंक्ति ५ से- "स्कंदिलाचार्य ने तमाम सूत्र तथा निर्युक्ति आदि आगमों के व्याख्यांग लिखवा कर सिद्धांत की रक्षा की । नागार्जुन वाचक ने नष्टावशेष तमाम आगमों को पंचांगी सहित लिखवा कर सुरक्षित किया था ।"

तो फिर वह सुरक्षित व्याख्यांग देवर्द्धि तक भी नहीं रहे । उनके

द्वारा नंदी सूत्रोक्त श्रुतज्ञान में उल्लेख भी नहीं है । आज तक कोई उपलब्ध नहीं, किसी ने देखी पढी नहीं, रही भी नहीं, तो कहाँ गई । ऐसी कैसी सुरक्षा की ? और किस किस रचियता की वह पंचांगी निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका आदि थे ? कोई खुलासा ही नहीं किया । अत: यह १४वीं शताब्दि की लगाई गप्प मात्र हैं ।वास्तव में उक्त कल्पना केवल असत्य कल्पना ही है सत्य तत्व इसमें किंचित भी नहीं है।

(४२) सुविहित श्रमणों के द्वारा सभा में वांचन मान्य होने के बाद धीरे-धीरे तेरहवीं (१४वीं) शताब्दि से कल्पांतर्वाच्य (कल्प सूत्र व्याख्या) की सृष्टी हुई ।- ***प्रबंध पारिजात ।***

(४३) वराहमिहिर ने वि.सं.४६२ में पंचसिद्धांतिका ग्रन्थ बनाया उसकी प्रशस्ति में शक संवत ४२२ लिखा है । जिसमें १४० जोडने पर विक्रम संवत निकल जाता है ।

(४४) तित्थोगालिय पइण्णा, आवश्यक चूर्णी, आवश्य हरिभद्रीय टीका एवं परिशिष्ट पर्व आदि प्राचीन ग्रन्थों में भद्रबाहु का जीवन चरित्र वर्णित है । उसमें १२ वर्षी दुष्काल, नेपाल देश में रहना, महाप्राण ध्यान का आराधन, स्थूल भद्र आदि को वाचना देना, छेद सूत्रों की रचना का वर्णन, ***इत्यादि हकीगत आवे छे । पण वराहमिहिर ना भाई होवानो, निर्युक्तियों रचवानो, उपसर्गहर स्तोत्र, भद्रबाहु संहिता आदि रचवानों आदि ने लगतो कशोय उल्लेख नथी ।*** अर्थात् उक्त परिशिष्ट पर्व आदि की रचना के समय तक निर्युक्तिकार द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की मान्यता थी किन्तु प्रथम भद्रबाहु के लिये निर्युक्तिकार होने की एवं वराहमिहिर के भाई होने की मान्यता नहीं बनी थी ।- ***प्रबंध परिजात,***

(४५) केटलाक विद्वानों चौदपूर्वी भद्रबाहुनेज वराहमिहिर ना भाई सहोदर हता एम माने । साथे ज छेद सूत्र, निर्युक्ति, स्तोत्र और संहिता ना प्रणेता पण माने । परंतु आ कथन कोई रीते संगत नथी ।-**पुण्य विजय जी म.सा.**

(४६) स्थविर अगस्त्यसिंह की चूर्णि में तत्वार्थ सूत्र, आवश्यक निर्युक्ति, ओधनिर्युक्ति, व्यवहार भाष्य, कल्प(बृहत्कल्प)भाष्य आदि ग्रन्थों का भी उल्लेख है । इस चूर्णी में भाष्य गाथाएं भी उद्दत की हुई है ।

(४७) चूर्णि साहित्य में जिनदास गणी महत्तर का मूर्धन्य स्थान है । इनके विद्यागुरु प्रद्युम्न क्षमाश्रमण । जिनदास गणी, जिनभद्र गणी क्षमा-श्रमण से बाद में और हरिभद्र से पहले हुए, वि.सं.६५० से ७५० के बीच





में होना चाहिये । नंदी चूर्णी के उपसंहार में शक संवत-५९८ दिया इसके रचियता भी जिनदासगणी ही है । इन्होंने कितनी चूर्णियाँ रची यह ज्ञात नहीं है परंतु अभी ७ मिलती है - निशीथ, नंदी॰, अनु॰, आव॰, दशवै॰, उतरा॰, सूय॰।

(४८) जीतकल्प चूर्णी करने वाले सिद्ध सेन सूरि और वृहत्क्षेत्र समास की टीका करने वाले एक है । गंधहस्ति अलग है ।

(४९) जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण का काल विक्रम संवत ६५० से ६६० के आस पास का संभव है । इनकी नौ रचनाएँ मिलती है- १.विशेषावश्यक भाष्य २.उसकी टीका ३.वृहत्संग्रहणी ४.वृहत्क्षेत्र समास ५.विशषणवती ६.जीतकल्प ७.जीतकल्प भाष्य ८.अनुयोग चूर्णी ९.ध्यान शतक।

(५०) जीतकल्प भाष्य में - वृ.भाष्य, पंच कल्प भाष्य, पिंडनिर्युक्ति आदि की गाथाएं उद्दत की गई है ।

(५१) संघदासगणि- भाष्य कर्ता और वसुहिंडी के कर्ता यों दो हुए हैं । जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण भाष्य कर्ता ने अपने विशेषणवती ग्रन्थ में वसुदेव हिंडी की गाथाओं का उपयोग किया है । इनके निशीथ भाष्य में- वृहत्कल्प भाष्य, नंदीसूत्र, सिद्धसेन(गंधहस्ति) और गोविंद वाचक आदि के नाम आये हैं ।

(५२) सार यह रहा कि भाष्यकार प्राय: सभी देवर्द्धि काल के बाद के हैं अत: चूर्णियां भी इसके पहले की संभव नहीं है चाहे अगस्त्य सिंह की चूर्णी भी क्यों न हो । उसमें भी भाष्यों का उल्लेख है । अत: विक्रम की तीसरी शताब्दी का कथन(उतावली कल्पना मात्र) है । अगस्त्यसिंह सूरि के गुरु का नाम ऋषिगुप्त भी कहा है- **प्रबंध पारिजात पृ.४९० ।**

(५३) वृद्धवादी, यक्षसेन, देवगुप्त, यशोवर्धन क्षमाश्रमण के शिष्य रवि गुप्त, नेमिचन्द्र, जिनदास गणी क्षपक, सत्य श्री प्रमुख श्रुतधरों से महानिशीथ सूत्र का समर्थन कराया गया है जो संदेहास्पद है । वे श्रुतधर, समकालीन नहीं थे । वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर हरिभद्र सूरि से ३०० वर्ष पूर्व हुए हैं । कुछ नाम अप्रसिद्ध है । नेमिचन्द्र का समय ११ वीं सदी के पूर्वर्द्ध में पडता है तो जिनदास गणी निशीथ चूर्णी कर्ता विक्रम की आठवीं सदी के उत्तरार्ध में हुए हैं ।

(५४) महानिशीथ का हरिभद्रसूरि द्वारा उद्धार होना प्रमाणित नहीं हो सकता । क्योंकि इस सूत्र के बीच में हरिभद्र का नाम जिस श्रद्धा से दिया

है उससे भी स्पष्ट हो जाता है कि इसके कर्ता हरिभद्र के अतिरिक्त है ।

हरिभद्रसूरि के लगभग ६० ग्रन्थ पढे हैं किन्तु उसमें महानिशीथ के उद्धार की बात तो क्या उसका नाम निर्देश भी कहीं नहीं मिलता है। **- *मुनि कल्याणविजय ।*** अतः महानिशीथ सूत्र दीमक से खंडित कर दिया गया और आचार्य हरिभद्र ने इसको अन्यान्य शास्त्रों के पाठों से व्यवस्थित किया और फिर सिद्ध सेन आदि आठ श्रुतधर युगप्रधान आचार्यों ने उसे प्रमाणित ठहराया आदि दन्तकथा सत्य नहीं है । **- *प्रबंध पारिजात पृ.७१-७२***

(५५) नंदी में कालिक सूत्र की सूचि में 'कप्प' शब्द वृहत्कल्प सूत्र के लिये आया है । और उत्कालिक सूत्र सूचि में- चुल्लकल्प सूत्र और महाकल्प सूत्र के नाम आये है जिसमें मुनि श्री कल्याण विजय जी का मानना है कि महाकाल्प का विच्छेद हुए १००० वर्ष से भी अधिक हो गये और चुल्ल कल्प श्रुत को ही आज **पर्यूषणा कल्प सूत्र** कहते हैं। **-*प्रबंध पारिजात पृ.१३४ ।***

(५६) आचार्य हरिभद्रसूरि का टीकाकारों में सर्व प्रथम नाम आता है । उनका सत्ता समय वि.सं.७५७ से ८२७ का है । गुरु जिनभट्ट(या जिनदत्त) थे । आज हरिभद्र के ७५ ग्रन्थ मिलते हैं । १४४४ ग्रन्थ रचे नंदी, अनुयोग, दशवै, प्रज्ञापना, आव. आदि टीका मुद्रित है ।

(५७) कोट्याचार्य- हरिभद्र के समकालीन या पूर्ववर्ती है । विशेषावश्यक भाष्य पर नवीन वृति लिखी । जिनभद्र गणी की अपूर्ण स्वोपज्ञ भाष्य की टीका को पूर्ण किया है । उनके प्रति श्रद्धा स्मरण किया है । परंतु हरिभद्र सूरि का कहीं भी नाम नहीं दिया (अतः हरिभद्र के समकालीन या परवर्ती होंगे । हेमचन्द्राचार्य ने प्राचीन टीकाकार के रूप में कोटयाचार्य का उल्लेख किया । इनका समय विक्रम की आठवीं सदी है तो शीलांकाचार्य का नौंवी दसवीं सदी है । अतः दोनों प्रथक प्रथक है प्रभावक चारित्र में दोनों (शीलांकाचार्य कोट्याचार्य को एक कर दिया।

(५८) शीलांकाचार्य- प्रभावकचारित्रानुसार इनका समय नौंवीं दसवीं सदी माना जाता है । इन्होंने आचारांग प्र.श्रु. स्कंध की वृति गुप्त संवत ७७२ (ई१०९२) भादवा की ५ को पूरी करी ।

(५९) निर्युक्ति परिभाषा- **सूत्रार्थयो परस्परं नियोजने संबंधनं निर्युक्ति** -





**आ.नि.८३; निश्चयेन अर्थ प्रतिपादिका युक्ति निर्युक्तिः ।१। आचा.१/२/१;** सूत्र और अर्थ का निश्चित सम्बन्ध बताने वाली व्याख्या को निर्युक्ति कहते हैं ।

(६०) गोविंदाचार्य की गोविंद निर्युक्ति का उल्लेख- बृ.भा., अनु. चूर्णी य निशीथ चूर्णी में मिलता है ।

(६१) श्री हरिभद्र सूरि, श्री सिद्धसेनाचार्य (गंध हस्ति) एवं श्री कोट्याचार्य ये तीनों लगभग समकालीन भी थे ।

(६२) जिनभद्रगणी क्षमा श्रमण से हरिभद्रसूरि १०० वर्ष बाद हुए किन्तु १५वीं १६वीं शताब्दि में बनी पट्टावलियों में जिनभद्रगणी को हरिभद्र सूरि का पट्टधर शिष्य बता दिया यह एक भ्रमित परंपरा चल पडी है ।

(६३) नमि साधु ११२२ वि.सं. में हुए । वे आवश्यक वृत्तिकार हुए

(६४) आव॰ नि॰ गाथा ११२० तथा १३४६ में नंदी सूत्र का कथन है।

(६५) मूर्तिपूजक मुनि श्री अमर विजय जी के शिष्य चतुरविजयजी ने निर्युक्तियों को द्वितीय भद्रबाहु की रचना मानी है । ***'मंत्राधिराज-चिंतामणी-जैन स्तोत्र संदोह' प्रस्तावना पृष्ट १२-१३ प्रकाशक साराभाई मणीलाल नवाब, अहमदाबाद सन् १८३६.***

(६६) पंचकल्प भाष्य व चूर्णीकार ने ४ छेद सूत्र भद्रबाहु रचित माने हैं।

(६७) श्वेतांबर साहित्य में विशाखा गणि का नाम ही नहीं बारहवीं सदी के बाद किसी अर्थदग्ध पंडित ने ये तीन गाथाएँ बना कर किसी लेखक को दे दी उसने निशीथ पुस्तक में लिख डाली है । जो २० वें उद्देशे की चूर्णी के बाद प्रशस्ति रूप में जोड दी गई है । जो आज भी है ।

(६८) चूर्णीकार लिखते है कि सूई आदि चारों औपग्रहिक उपकरण है। इनमें से एक एक उपकरण आचार्य के पास रहना चाहिये । शेष साधु भी उन्हीं से अपना कार्य कर सकते है । यदि शेष साधुओं को आवश्यक होवे तो बाँस या सिंग के उपकरण रख सके, लोहे के नहीं ।

**(६९) पुरिम चरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाण तित्थम्मि ।**
**इहं परिकहिया जिण गणहराण थेरावली चरित्तं ।६२।**

**चूर्णी- अवि बद्धमाण तित्थम्मि जिणं गणधरावलिया सव्वेसिं च जिणाणं समोसरणाणि परिकहिज्जंति** । समवायांगसूत्र का भलावण पाठ भी उपयोगी है देखने लायक है । ***दशा. द. ८, नि.गा.६२***

(७०) मुनि श्री पुण्य विजय जी ने वृहत्कल्प भाष्य भाग ६ प्रस्तावना में लिखा है उसे भी ध्यान में ले लें —

***"अहीं प्रसंग वशात् एक बात स्पष्ट करी लइए के चौदपूर्वी भगवान भद्रबाहुना जमाना ना निर्युक्ति ग्रन्थों ने आर्य रक्षित ना जमाना मां व्यवस्थित कराय अने ते फरी थी पछीना जमाना मां व्यवस्थित करवां मां आवे, एटलू ज नहीं पण ए निर्युक्ति ग्रन्थों मां उत्तरोत्तर गाडा भरी ने वधारा घटाडो करवा मां आवे आ जात नी कल्पना करवी जराय युक्ति संगत नहीं । कोई पण मौलिक ग्रन्थ मां आवा फेर फार कर्या पछी ए ग्रन्थ ने मूल पुरूष ना नाम थी प्रसिद्ध करवा मां खरेज एना प्रणेता मूल पुरुष नी तेमज पछीना स्थविरों नी प्रामाणिकता दूषित ज थाय छे । वस्तुतः विचार करवा मां आवे तो कोई पण स्थविर महर्षि प्राचीन आचार्य ना ग्रन्थ मां अनिवार्य रीते व्यवस्थित करवानी आवश्यकता ऊभी थतां, तेमां सम्बन्ध जोडवा पूरतो घटतो उमेरो के सहज फेर फार करे ऐ सह्य होई सके । पण तेने बदले ते मूल ग्रन्थ कार ना जमाना पछी बनेली घटनाओं ने, के तेवी बीजी अयुक्त बावतो ने, मूल ग्रन्थ मां नवेसर पेसाडी दे, ऐथी ए ग्रन्थ नो मौलिक पणु, गौरव, के प्राणाणिकता उज्वलसे खरो ? आपणे निर्विवाद पणे कबूल करवू जोइए, के मूल ग्रन्थ मां एवो नवो उमेरो क्यारेय पण वास्तविक व मान्य नहीं करी शकाय । कोई पण महर्षि एवो उमेरो करे पण नहीं, अने ते जमाने ना बीजा स्थविरो पण तेने स्वीकारे नहीं ।"***

**टिप्पण**– इसलिये निर्युक्तियों में अनुचित फेरफार करना न मान कर बाद में हुए द्वितीय भद्रबाहु की ही संपूर्ण रचना मानना सुसंगत होता है । वैसे ही कल्पसूत्र के विषय में समझना और निर्णय करना चाहिये अर्थात् बाद में रचा हुआ मान लेना चाहिये । किन्तु ऐसा नहीं कहना कि पूरा अक्षर-अक्षर चौदह पूर्वी भद्रबाहु का बनाया हुआ है और फिर देवर्द्धिगणी ने जो मन भाया वही जोड़ा और बाद में भी किसी के मन भाया जो जोड़ा। यथा– ९८० ९९३ का संवत मिति लगाना आदि और देवर्द्धि के लिये वंदना की गाथा बनाना आदि ।

(७१) ***"अहीं एक बात खास ध्यान मां राखवा जेवी छे के आजना जैन आगमों मां मौलिक अंशो घणा घणा छे एमा शंका नथी, परन्तु जेटलु अने जे कांई छे बधु य मौलिक ज छे । एम मानवा के मानाववा नु प्रयत्न करवों ए सर्वज्ञ भगवंतों ने दूषित करवा जेवी वस्तु छे ।"***

***"आज ना जैन आगमों मां एवा घणा घणा अंशो छे, जे जैन आगमों ने पुस्तकारूढ़ करवामां आव्या त्यारे के ते आस पास उमेराएला के पूर्ति***





***कराएला छे । केटलाक अंशो एवा पण छे जे जैनेतर शास्त्रों ने आधारे उमेराएला होई जैन दृष्टि थी दूर पण जाय छे । इत्यादि अनेक बाबतो जैन आगम ना अभ्यासी गीतार्थ गंभीर जैन मुनि गणे विवेक थी ध्यान मां राखवा जेवी छे।"–बृह. भाष्य भाग. ६– प्रस्तावना पृ.६५ से ।***

**टिप्पण:**– शास्त्रोद्धारक मूर्तिपूजक पूज्य श्री पुण्यविजयजी म.सा.ने मौलिक आगमों में भी गीतार्थ मुनियों को विवेक बुद्धि रखने का निर्देश किया है तो अन्य आगमेत्तर ग्रन्थों व्याख्याओं में अंध बुद्धि का आग्रह करना और विवेक बुद्धि का निषेध करना कदापि किसी के लिये भी उचित नहीं समझना चाहिए ।

इसी अनुभव के आधार से लिपि दोष, दृष्टि दोष और परंपरा भेद आदि मुख्य कारणों से **विवेक बुद्धि रखने का** निर्देश किया जाता है। जो अन्य आगम मनीषियों से सम्मत होने से एक निराबाध सत्य है ।

**सार :** – निर्युक्तियाँ तो द्वितीय भद्रबाहु स्वामी की बनाई हुई है और भ्रम से प्रथम(प्राचीन) भद्रबाहु स्वामी की मानी जा रही है जिससे अनेक असंगत बाते खडी होती है । फिर असत्कल्पनाएँ की जाती है । अतः भ्रमित मान्यता का ही परित्याग कर देना चाहिये ।

आगम तो मौलिक रूप से गणधर कृत ही है । उसमें हुए लिपि दोष या सुधार वधार या प्रक्षेपों को यथावत समझ कर विवेक बुद्धि से तत्व निर्णय करना चाहिये अर्थात् निर्युक्तियों के वास्तविक कर्ता को और आगमों में हुई विकृतियों को सरलता पूर्वक स्वीकार करना चाहिए ।

(७२) **क्या उत्तराध्ययन भगवान महावीर की अन्तिम वाणी है?**

समवायांग में छत्तीस अपृष्ट-व्याकरणों का कोई भी उल्लेख नहीं है । वहाँ इतना ही सूचन है कि भगवान महावीर अंतिम रात्रि के समय पचपन कल्याणफल-विपाक वाले अध्ययनों तथा पचपन पापफल विपाक वाले अध्ययनों का व्याकरण कर परिनिर्वृत्त हुए । छत्तीसवें समवाय में भी जहाँ पर उत्तराध्ययन के छत्तीस अध्ययनों का नाम निर्देश किया है वहाँ पर भी इस संबंध में कोई चर्चा नहीं है कि ये अध्ययन भगवान ने अंतिम देशना में फरमाये ।

उत्तराध्ययन शब्दतः भगवान महावीर की अंतिम देशना ही है यह साधिकार तो नहीं कहा जा सकता ।कल्पसूत्र में उत्तराध्ययन के अध्ययनों को अपृष्ट-व्याकरण अर्थात बिना किसी के पूछे स्वतः कथन

किया हुआ शास्त्र बताया है किन्तु वर्तमान के उत्तराध्ययन में आये हुए केशीगौतीय, सम्यक्त्व-पराक्रम अध्ययन जो प्रश्नोत्तर शैली में हैं वे चिन्तकों को चिन्तन के लिये अवश्य ही प्रेरित करते हैं। केशीगौतमीय तेवीसवें अध्ययन में भगवान महावीर का जिस भक्ति और श्रद्धा के साथ गौरवपूर्ण उल्लेख है वह भगवान स्वयं अपने लिए किस प्रकार कह सकते हैं ? अर्थात् नहीं कह सकते । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तराध्ययन में कुछ अंश स्थविरों ने अपनी और से संकलित किया हो । और प्राचीन और अर्वाचीन अध्ययनों को वीर निर्वाण की एक सहस्त्राब्दी के पश्चात् देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने संकलन कर उसे यह रूप दिया हो । -

***उपा. देवेन्द्रमुनि कृत -जैनागम साहित्य मनन और मीमांसा ।***

**टिप्पणः-** आचार्य श्री देवेन्द्र मुनि जी का यह अनुमान भी उत्तराध्ययन सूत्र का रचना समय वीरनिर्वाण दसवीं सदी का बता रहा है जो कि प्रश्नव्याकरण सूत्र के **महावीर भासियाइ, आयरिय भासियाइं** आदि अध्ययनों से संकलित कर बनाये जाने के कथन का समर्थक ही है । जिससे यही सिद्ध होता कि प्रश्न व्याकरण सूत्र के अध्ययनों का संकलन होने से ये अध्ययन गणधर सुधर्मा रचित है । इसीलिए यह सूत्र कालिक श्रुत में गिनाया गया है । और प्रमुखता की अपेक्षा भगवान महावीर स्वीम की अंतिम देशना के नाम से प्राचारित हो गया है ।

**निबंध-५६**

## ऐतिहासिक महत्व के प्रश्न विद्वानों से
## (मूर्तिपूजक विद्वानों से)

(१) **पज्जोसवणा कल्प सूत्र** का अलग अस्तित्व कब हुआ ?

(२) किस आगम में या निर्युक्ति में, भाष्य में, चूर्णी में, टीका में इसका स्वतंत्र रूप में अस्तित्व होने का निर्देश मिलता है ?

(३) नंदी सूत्र रचनाकार ने श्रुतज्ञान में इस स्वतंत्र सूत्र को किसी नाम से कहा है ?

(४) निर्युक्तियों में नंदिसूत्र का निर्देश मिलता है तो क्या नंदी सूत्र की रचना के बाद निर्युक्तियाँ बनी ?

(५) उपलब्ध स्वतंत्र अस्तित्व के पर्युषणाकल्पसूत्र के आदि पाठ नमस्कार मंत्र का अस्तित्व स्वीकार में भी मतभेद है ? व्याख्याकारों ने इस विषय





में विभिन्नताएँ दिखाई है, अतः प्रक्षिप्त होना स्पष्ट है या नहीं?

(६) दशाश्रुतस्कंध के आठवें अध्ययन के नाम से उपलब्ध स्वतंत्र पर्युषणा कल्प सूत्र में उस सूत्र व उस अध्ययन के नाम का मुख्य विषय सबसे अंत में है, प्रारंभ में करीब १००० श्लोक प्रमाण वर्णन अन्य है । जबकि निर्युक्ति में प्रारंभ से ही मुख्य विषय की व्याख्या है और १००० श्लोक जितने मूल पाठ के लिये केवल एक ६२ वीं गाथा में शंकेत मात्र है । ऐसा क्यों ? इसमें भी कुछ रहस्य हो सकता है ?

(७) भगवान ने सभा में कथन किया, १४ पूर्वी भद्रबाहू स्वामी ने गुंथन -निर्युहण किया, उतना ही आठवाँ अध्ययन रूप यह स्वतंत्र कल्प सूत्र है ? या कुछ प्रक्षिप्त होकर बढा हुआ रूप है ?

(८) दशाश्रुतस्कंध के रचियता भद्रबाहू स्वामी वीर निर्वाण दूसरी शताब्दि में हुए है । उस सूत्र का आठवाँ अध्ययन कहे जाने वाले स्वतंत्र अस्तित्व धारी सूत्र में वीर निर्वाण ९८० व ९९३ का विवाद किसने और कब प्रक्षेप किया और क्यों आवश्यक हुआ प्रमाणिक पुरूषकृत सूत्र को विकृत बनाने का ? उसे आज तक भद्रबाहू के सूत्र और उनके शब्दों के नाम से स्वीकार करना क्या मूर्खता या गडरिया प्रवाह नहीं है ?

(९) भद्रबाहू के बाद के आचार्यों आदि की स्तुति और वंदन नमस्कार भी भद्रबाहू कृत कहे जाने वाले सूत्र में मानने में क्या असत्य का पाप नहीं लगेगा ? उसे १२०० श्लोक से अलग क्यों नहीं रखा जाता है ? प्रक्षेपों को जानते मानते हुए भी १२०० श्लोक प्रमाण भद्रबाहु का बनाया कहना उचित है ? और इसे भगवान ने सभा में कहा, यह पाठ भी साथ में जोडे रखना उचित है ?

(१०) भगवान ने ऐसा यह १२०० श्लोक का उपलब्ध आठवाँ अध्ययन परिषद् में फरमाया, यह गले उतर सकता है ? भगवान ने बारंबार यह फरमाया था तो क्या एक ही दिन में या अनेक दिनों में ?

(११) दशाश्रुत स्कंध के आठवें अध्ययन का गृहस्थ के सामने वांचन करना भी निशीथ सूत्र एवं उसकी निर्युक्ति, चूर्णी आदि से गुरु चौमासी प्रायश्चित का कार्य है ऐसा सिद्ध होता है । यदि उस आठवें अध्ययन में तीर्थकरों का वर्णन हो तो उसे गृहस्थ को सुनाने में सूत्रकार व व्याख्याकार प्रायश्चित कथन और विवेचन करे यह कैसे संभव हो सकता है ?

(१२) जिस सूत्र व अध्ययन के लिये आगमकार व्याख्याकार गृहस्थों को सुनाने का प्रायश्चित कहे, और जिसे कालिक सूत्र कहे, उसी अध्ययन को स्वतंत्र सूत्र का अस्तित्व देकर कोई उत्कालिक कर दे, फिर भी भद्रबाहु का कहते रहे और तीसरे प्रहर में वांचन करे, वह भी गृहस्थ परिषद् में, ऐसा दुस्साहस भी अपने पूर्वाचार्यों से कराना । यह सब कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? यह सब करना मानो जीवित मक्खी जानकर निगल जाना नहीं है ?

(१३) चौदह पूर्वी भदूबाहू स्वामी निशीथ सूत्र के १०वें उद्देशे में अपर्युषणा में पर्युषणा करने का तथा पर्युषणा के दिन पर्युषण न करने का गुरु चौमासी प्रायश्चित कहे वे इस आठवी दशा में ऐसा क्यों कहे कि पहले पर्युषणा करने में कोई दोष नहीं है ?

(१४) क्या भद्रबाहू स्वामी की रचना में और भगवान के मुख से कहलाये जाने वाले इस अध्ययन मे ऐसा कथन उपयुक्त है कि ''श्रमण भगवान महावीर ने पर्युषणा किया वैसे ही(एक महिना बीस दिन बाद) गणधर करते, वैसे ही गणधर शिष्य करते, वैसे ही स्थविर करते, वैसे ही आज के साधु करते, वैसे ही हमारे आचार्य उपाध्याय करते, वैसे **हम** भी करते'' इत्यादि भाव पर्युषणा कल्प सूत्र के समाचारी वर्णन के आदि सूत्र में है । निर्युक्तिकार ने ऐसी परंपरा युक्त मूल पाठ की व्याख्या नहीं की है । तो भी इस पाठ को भगवान व भद्रबाहु के नाम से माना जाना कैसे उचित कहा जा सकता है ? हमारे आचार्य उपाध्याय करते वैसे हम करते यह, **हम** कहने वाले कौन है । स्वयं तीर्थकर के कथन में भी आगम में **अहं पुण गोयमा, तयाणं अहं गोयमा** ऐसे प्रयोग है तो इस पाठ में **वयं** कहने वाले कौन है ? ऐसी कल्पित श्रंखला युक्त रचना भद्रबाहू की हो सकती है या प्रक्षिप्त है ?

(१५) नंदी सूत्र में ७२ आगमों के नाम है तो ४५ मानने का क्या कारण है । करीब २० प्रकीर्णक आज भी उपलब्ध है तो १० ही को आगम क्यों माना जाता है १० को क्यों नहीं ? नंदी सूत्र में नाम होते हुए भी उन प्रकीर्णक को आगम नहीं माना जाता, इसका कारण क्या है ?

(१६) हरिभद्रसूरि, मलयगिरी, आचार्य हेमचन्द्र आदि युगप्रधान धुरंधर विद्वानों की उपलब्ध रचनाओं को आगम में क्यों नहीं गिना जाता है ? पंचांगी के अतिरिक्त भी अनेक ग्रन्थ है ।





(१७) सूर्य प्रज्ञप्ति में मांस भोजन विषयक पाठ के प्रक्षिप्त होते हुए भी उसको क्यों मानते ?

(१८) आचारांग सूत्र का आठवाँ अध्ययन कम होते हुए भी अर्थात् इस सूत्र के खंडित होने पर भी इसे आगम में क्यों मानते ?

(१९) प्रश्न व्याकरण में नंदी व समवायांग कथित विषय न होते हुए भी आगम में क्यो माना जा रहा है ?

(२०) ४५ आगम में कितने ही आगम के रचनाकार का, उसके रचना समय का इतिहास अनुपलब्ध होते हुए भी आगम में क्यों और किस आधार से गिना जाता ?

(२१) वृहत्सग्रहणी गाथा १५४ में **सूत्र** की परिभाषा दी है उसके अनुसार आगम का निर्णय किया जाता है क्या ? यदि किया जाय तो ५-१० आगम ही मानने पडेंगे ? तब ४५ कैसे होंगे । अथवा वृहत्संग्रही की परिभाषा को खोटी मानेंगे ?

(२२) गणधर या १४ पूर्वी आदि के रचित आगम का पूर्ण विषय बदल कर नाम वही रह जाय तो वह आगम में गिना जा सकता?

(२३) गणधर या १४ पूर्वी के रचित आगम का कुछ अंश घट जाय विच्छेद हो जाय तो वह आगम गिना जा सकता ?

(२४) गणधर या १४ पूर्वी के सूत्र के मूल पाठ में जिसके जो मन भाया बढा दिया, संवत् लगा दिये जाय, अनेक गाथाएँ एवं गद्य पाठ रूप स्तुति वंदन आदि बढा दिये जाय, अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये चौथ की संवत्सरी हेतु पर्यूषण के पाठ को बढा दिया जाय, ऐसे विकृत बने शास्त्र (कल्पसूत्र) को १४पूर्वी के नाम से अक्षर-अक्षर पूरा १२०० श्लोक का आगम माना जाय, उसे मूर्खता समझना या विद्वता ? और ऐसी परूपणा करने को पाप समझना अथवा धर्म समझना ? ऐसी प्ररूपणा करने वालों को श्रमण कहना या श्रमण भगवान की आज्ञा के चोर कहना ?

(२५) महानिशीथ और कल्प सूत्र में अनेक शब्द अनेक वाक्य अनेक अंश मौलिक सूत्र कर्ता के नहीं होते हुए भी सूत्र के मूल पाठ में रखे जाकर विकृतियो से भरे पडे ऐसे सूत्रों को आगम रूप में स्वीकार किया जाता है तो फिर हरिभद्रसूरि आदि की शुद्ध अनेक रचनाओं को ४५ से बाहर क्यों रखा गया है ? अनेक प्रकीर्णको को नंदी सूची में नाम होते हुए भी ४५ से बाहर क्यों रखा जाता है ?

(२६) लिपि काल की हुई भूलों को जानबूझ कर भी प्रमाणिक पुरूषों के आगम रूप की मान कर उनकी प्रामाणिकता को कलंकित करना योग्य है ? सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, पर्युषणा कल्पसूत्र और महानिशीथ सूत्रों के अनेक पाठ स्पष्ट रूप से मौलिक रचना को और मौलिक रचनाकार को दूषित करने वाले उपलब्ध है, उन्हें उन प्रमाणिक पुरूष के रचित आगम के मूल पाठ के वाक्य रूप में सम्मिलित ही स्वीकारा जाता है, साथ ही ऐसे उन वाक्यों को,मौलिक नहीं है विकृति से प्रविष्ट हो गये हैं, यह भी माना जाता है । ऐसे लकीर के फकीर रहने की क्या आवश्यकता है ? अर्थात् विकृति से प्रविष्ट भी मानना और फिर मौलिक पाठ में सम्मिलित रखे रहना कदापि उचित कर्तव्य नहीं माना जा सकता । तो फिर संपादन, प्रकाशन या नकल में, अकल से न्याय क्यों नहीं किया जाता है। पाठ क्यों नहीं सुधारा जाता ।

(२७) भगवती के अंतिम मंगल प्रशस्ति को अभयदेवसूरि स्वयं लिपिकर्ता की बताकर व्याख्या भी नहीं करते हैं । फिर भी आज के संपादक उसे गणधर रचित मूल पाठ में क्यों स्वीकार करते ? यह लाचारी आगम सेवा में उचित है कि जान बूझ कर लहियों के वाक्य मूल पाठ में रखे जाय ? क्या ऐसे व्यक्तियों को आगम प्रकाशन संपादन का अधिकार उचित है ?

(२८) ठाणांग में अनेक जगह देवों के चैत्य वृक्ष कहे हैं- ठाणांग सूत्र ठाणा ४ उद्द. ३ सूत्र ४४८ । २४ तीर्थकरों के अशोक वृक्ष के सिवाय चैत्य वृक्ष भी कहे है । तो देवों के और देवाधिदेवों के चैत्यवृक्ष के वृक्ष में चैत्य क्यों लगा है उसका शब्दार्थ और तात्पर्यार्थ उद्धरण प्रमाण टीका ग्रन्थ आदि सहित स्पष्ट करावें ।

(२९) नंदी सूत्र और ठाणांग सूत्र में द्वीप सागर प्रज्ञप्ति सूत्र का नाम मिलता है और वह सूत्र प्रकाशित उपलब्ध भी है तो उसे आगम में क्यों नहीं माना है ।

(३०) स्थानकवासी तेरापंथी आदि विभिन्न समुदायों में जिसतरह ३२ सूत्र की मान्यता के सूत्रों के उन नामों में कोई मत भेद या विकल्प नहीं है, किन्तु वे ही ३२ नाम सर्व मान्य है । वैसे ही मूर्ति पूजकों में एकरूपता क्यों नहीं है । और ४५ मानने में भी यत्र तत्र विभिन्न विकल्प क्यों दिये जाते हैं अर्थात् पंचकल्प, जीतकल्प, पाक्षिक सूत्र , ओघ निर्युक्ति तथा





पिंड निर्युक्ति के लिए गणना भेद है अर्थात् कहीं ४६ नाम लिखते हैं कहीं ४७ नाम भी और संख्या ४५ ही कहते हैं तब कहीं किसी को छोडते, कहीं किसी को गिन लेते हैं। ऐसा क्यों ?

(३१) **१.** दस प्रकीर्णक के सिवाय नहीं मानने में क्या कारण है ? **२.** और दस को मानने में क्या हेतु है । नंदी सूत्र में जो नहीं है उन्हें १० में क्यों माना है ? **३.** प्रकीर्णकों के रचियता का नाम ही ज्ञात नहीं है तो उन्हें आगम में मानने का क्या आधार है ? उनका काल भी ज्ञात है क्या ?

(३२) हरिभद्र सूरि तो बहुत बडे प्रकांड विद्वान ज्ञानी प्रभावक संत शिरोमणि युग प्रधान आचार्य हुए है, उनके बनाये ग्रन्थ साहित्य अनेक है उनको आगम नहीं मानने में क्या हेतु है ?

(३३) ध्यान शतक को आगम क्या नहीं मानते है ? जो हरिभद्रसूरि के भी पूर्व आचार्य जिनभद्र गणी क्षमाश्रमण द्वारा रचित है ।

(३४) **सुत्तं गणहर रइयं, तह पत्तेय बुद्ध रइयं च ।**
**सुयकेवलिणा रइयं, अभिन्न दस पुव्विणा रइयं ।१५६।**

**अर्थ-** गणधर, प्रत्येक बुद्ध, १४ पूर्वी से १० पूर्वी तक के ज्ञानी गीतार्थ श्रमणों द्वारा की गई रचना को सूत्र या आगम कहा जा सकता।

यह वृहत्संग्रहणी की गाथ है इसके अनुसार आपकी आगम मानने की मान्यता है या नहीं ? यदि यह गाथा और ग्रन्थ मान्य है तो ४५ आगम की सिद्धि कैसे कर सकते ? और यह गाथा और ग्रन्थ मान्य नहीं तो किसी आचार्य की रचना को आगम मानो और किसी प्रामाणिक पुरूष के एक भी ग्रंथ को आगम नहीं मानो इसका कारण क्या है ? इसमें क्या रहस्य है ?

(३५) क्या मंदिर बनाने का उपदेश साधु दे सकता है या सचित्त फूल पानी और अग्नि के पाप से पूजा करना कह सकता है ? क्या वर्तमान के मंदिरमार्गी साधु इन क्रियाओं की प्रेरणा करते है या उनके पूर्वाचार्यो ने ऐसी प्रेरणा की थी ? और ऐसी प्रेरणा करने वालों का पहला महाव्रत दूषित होना माना जा सकता है ?

(३६) क्या देवलोक की शास्वत प्रतिमा में इस अवसर्पिणी के प्रथम और अंतिम तीर्थकर का नाम आना उचित है ? या यह मंदिर मार्गियों की सूत्र में पाठ प्रक्षिप्त करने की आदत का प्रभाव है?

(३७) मुहपोत्तियं, मुख वस्त्रिका या मुँहपति नाम कहते हुए भी उसे रूमाल के समान हाथ में या कमर से रखना क्या उचित है ?

(३८) बोलते समय मुखवस्त्रिका को हाथ में ही नहीं ले और मुँह के सामने हाथ ले जाने का प्रयत्न भी नहीं करे तो भी ऐसे साधु अपने आप को जिनाज्ञा में होना या साधु होना कह सकते ?

(३९) क्या कोई मंदिर मार्गी जैन साधु होकर के भी स्वछंदमति से एक पुस्तक बनावे, उसे स्थानकवासियों के नाम से छपावे, प्रेस का नाम नहीं दे, लेखक का अर्थात् खुद का नाम नहीं दे, जब कि उन पुस्तकों की सप्लाई वह स्वयं करे, करावे, प्रेषक में खुद का गाव का पता न देकर दूसरों की किसी की स्टांप छाप लगावे और स्टांप छाप अपने पास रखे, पोस्ट आफिस की छाप से चोरी पकड़ा जावे तो झूठ बोल कर सफाई पेश करे, इत्यादि कृत्य करने वालों को सच्चा निडर जैन साधु या लेखक कहा जा सकता है ? या यह समझना कि वह स्वयं ही अपने को चोर, धूर्त-शिरोमणी, डरपोक और महाकपटी, प्रपंची, दुर्मति वाला कहा जाने के कर्तव्य कर रहा है ? **प्रमाण के लिये देखे-शंकाए सही समाधान नहीं प्रथमावृति ।** इस प्रश्न नं ३९ का जवाब मंदिर मार्गी विख्यात रामचन्द्रसूरि की संप्रदाय के आचार्य भुवनभानु सूरि, गुणरत्न सूरि और जितेन्द्र सूरि के शिष्यों को देना चाहिए क्योंकि ये ही अपने भक्तों द्वारा उत्कृष्टाचारी और सडे दिमांग वाले कहे जाते है अथवा हिंडौन सीटी के कर्पूर एण्ड कंपनी के मिलिभगत के लोग भी इसका जवाब देने की हिम्मत करेंगे।

(४०) वराहिसंहिता बनाने वाले वराहमिहिर निर्युक्ति कर्ता भद्रबाहु स्वामी के छोटे सगे भाई थे ?

(४१) वराहिसंहिता और पंचसिद्धांतिका ग्रन्थ की रचना का काल उसके अंत में लिखा है ? या नहीं ? लिखा है तो क्या लिखा है बतावे?

(४२) किस बारहवतधारी श्रावक ने मूर्ति पूजा की थी शास्त्र में ४५ आगम या ७२ आगम में बतावें ।

**नोंट-** इन प्रश्नों का सरलता युक्त जवाब पत्र द्वारा संपर्क सूत्र के स्थान पर लिखित दिया जा सकता है । यदि किसी को पुनः प्रश्न पूछना भी हो तो पहले इनका लिखित जवाब देना आवश्यक होगा, तभी वह प्रति प्रश्न पूछने के योग्य अधिकारी गिना जायेगा । अन्यथा वितंडावादी एवं





निंदक विद्वेषी ही गिना जायेगा और प्रश्न पूछने का अनधिकारी होगा ।

सामान्य पाठकों को ज्ञात रहे कि इन उक्त प्रश्नों का समाधान अपनी अपेक्षा से यत्र तत्र कर दिया गया है । किन्तु मूर्तिपूजक जैन अपनी क्या अपेक्षा रखते हैं और किस तरह समाधान करते हैं इस आशय से ये प्रश्न दिये गये हैं ।

**ज्ञातव्य :-** उपरोक्त अनेक प्रश्न मूर्तिपूजक विद्वान संतों से लिखित मौखिक पूछे गये हैं उत्तर न आने से अथवा संतोष पूर्ण उत्तर न आने से ये प्रश्न यहां संकलित किये गये हैं यथा- **१.**स्व. आचार्य रामचन्द्रसूरि के विद्वान संतों से अहमदाबाद में **२.**आचार्य भद्रंकरसूरिजी विद्या शाला वाले अहमदाबाद **३.**पन्यास चन्द्रशेखर विजय जी धारागिरी **४.**आचार्य भुवनभानु सूरीश्वर जी म.सा. एवं उनके शिष्य मंडली से-हुबली **५.** आचार्य जितेन्द्रसूरी के शिष्य-घाणेराव **६.**धुरंधरविजय जी म.सा. आबू पर्वत **७.** आचार्य जिनप्रभविजय डीसा वाले-अहमदाबाद इत्यादि **८.** त्यागमूर्ति श्रावक शिरोमणी श्री जौहरीमल जी सा पारख-रावटी(जोधपुर)

• • • • • • • • • • • • • • • •

**निबंध-५७**

## सांवत्सरिक विचारणा संवाद

**जिज्ञेश-** संवत्सरी पर्व की प्राचीन तिथी कौनसी है ?

**दिनेश-** भादवा सुदी पंचमी ।

**जिज्ञेश-** आजकल चौथ की संवत्सरी भी होती है वह क्यों?

**दिनेश-** ऐसा एक कथानक प्रचलित है कि किसी एक क्षेत्र के चातुर्मास में एक राजा के आग्रह से एक आचार्य को चौथ की संवत्सरी करनी पड़ गई थी, उसी को परम्परा बनाकर आज तक भी कोई चौथ की संवत्सरी करते हैं ।

**जिज्ञेश-** चौथ की संवत्सरी कौन मनाते है ?

**दिनेश-** श्वेताम्बर मूर्तिपूजक समाज ।

**जिज्ञेश-** पाँचम की संवत्सरी कौन मनाते है ?

**दिनेश-** श्वे. स्थानकवासी समाज एवं श्वे. तेरापंथी समाज ।

**जिज्ञेश-** दिगंबर समाज संवत्सरी कब मनाते है ?

**दिनेश-** दिगम्बर समाज भी संवत्सरी भादवा सुदी पंचमी की मनाते थे, किन्तु उन्होने संवत्सरी के बाद नव दिन आराधना के रखे एवं धीरे-धीरे

भादवा सुदी पंचमी का महत्व कम होकर धर्माराधना के अन्तिम दिन चतुदर्शी का महत्व अधिक हो गया और उसी दिन के लिए संवत्सरी का सा महत्व प्रचलित हो गया । फिर भी उनका पर्युषण पर्वाराधन भादवा सुदी पंचमी से ही प्रारम्भ होना माना जाता है ।

**जिज्ञेश**– जैन के चार मुख्य फिरके है उसमें चतुर्थी वाले कितने है एवं पंचमी वाले कितने है ?

**दिनेश**– श्वे. मूर्तिपूजक के अतिरिक्त तीनों जैन फिरके भादवा सुदी पंचमी की संवत्सरी पर्व मानने वाले है । श्वे. मूर्तिपूजक में भी कोई समुदाय पंचमी की मान्यता वाले हैं ।

**जिज्ञेश**– चतुर्थी की संवत्सरी मानने वाले भी क्या पंचमी की प्राचीनता एवं मौलिकता स्वीकार करते हैं ?

**दिनेश**– हाँ, चतुर्थी की संवत्सरी मनाने वाले सभी सूज्ञ साधक पंचमी की मौलिकता एवं प्राचीनता सहर्ष स्वीकार करते हैं एवं चतुर्थी का मनाना भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के सैकडों वर्ष बाद चलाई गई परम्परा मानते हैं ।

**जिज्ञेश**– एक आचार्य ने एक नगर में चतुर्थी की संवत्सरी कारण वशात् की थी तो उसे सदा के लिए परम्परा क्यों बनाई ?

**दिनेश**– समाज में ऐसी परम्पराएँ यों ही चल पड़ती है । पीछे की समाज उसे ध्रुव सिद्धांत बना लेती है । इसका कारण अविचारकता एवं भक्ति का अतिरेक ही समझना चाहिए ।

**जिज्ञेश**– चतुर्थी की संवत्सरी करना क्या आगम विरूद्ध है ? उसका कोई प्रायश्चित्त है ?

**दिनेश**– चतुर्थी की संवत्सरी करना आगम आज्ञा का उल्लंघन करना है एवं उसका शास्त्र में प्रायश्चित कहा है ।

**जिज्ञेश**– इसका आगम प्रामण क्या है ?

**दिनेश**– निशीथ सूत्र उद्देशक १० का ३६ एवं ३७ वाँ सूत्र है ।

**जिज्ञेश**– उस सूत्र में क्या वर्णन है ?

**दिनेश**– निशीथसूत्र के इन दो सूत्रों का आशय इस प्रकार है–1.संवत्सरी का जो निश्चित दिन है उस दिन संवत्सरी पर्व आराधना नहीं करना एक अपराध है ।2.संवत्सरी के निश्चित दिन संवत्सरी पर्व आराधना न करके अन्य किसी भी दिन संवत्सरी पर्व की आराधना करना भी अन्य





अपराध है ।इन दोनों अपराधों को करने वाला श्रमण गुरु चौमासी प्रायश्चित का भागी होता है।

**जिज्ञेश**– संवत्सरी का निश्चित दिन तो आजकल चतुर्थी और पंचमी दोनों प्रचलित है न ? तो प्रायश्चित किसको आता है ?

**दिनेश** – निशीथ सूत्र का यह पाठ तो अतिप्राचीन एवं गणधर रचित है तथा चतुर्थी की परम्परा तो वीर निर्वाण के सैकडों वर्ष बाद की मानी जाती है । पंचमी की निश्चित तिथि ही आगम कालीन है । और आगम निशीथ सूत्र का उक्त विधान भी पंचमी की अपेक्षा ही है ।

**जिज्ञेश**– पंचमी का स्पष्ट प्रमाण क्या है ?

**दिनेश**– चतुर्थी या पंचमी किसी भी दिन संवत्सरी मनाने वाले सभी साधक पंचमी को मौलिक, प्राचीन एवं आगम कालीन सहर्ष स्वीकार करते है अर्थात् पंचमी की मौलिकता स्वीकार करने में सभी साधक ए क मत है, उसके लिए किसी का विरोध है ही नहीं । यह सत्य हकीगत है । यही पंचमी की प्राचीनता का प्रबल प्रमाण है।

आगम में संवत्सरी का एक निश्चित दिन होने का निर्देश है और आगम की व्याख्या में अनेक स्थानों पर **भादवा सुदी पंचमी** का ही निर्देश किया गया है । प्रचलित चतुर्थी के लिए भी एक राजा और एक आचार्य का घटित कथानक दिया जाता है उसमें भी पंचमी की ही मौलिकता स्पष्ट होती है एवं चतुर्थी तो बहुत बाद में चलाई गई परम्परा से है, यह भी स्पष्ट है ।

**जिज्ञेश**– निशीथ सूत्र में निश्चित तिथी की संवत्सरी आराधना करने के अतिरिक्त अन्य संवत्सरी सम्बन्धी क्या-क्या विधान है ?

**दिनेश**– निशीथ सूत्र उदेशक १० में अन्य भी संवत्सरी सम्बन्धी विधान है, वे ये है–1.संवत्सरी के दिन तक श्रमण को लोच अवश्य कर लेना चाहिए । गो रोम से छोटे बाल हो तो लोच करना आवश्यक नहीं है । 2.संवत्सरी के दिन श्रमण को चौविहार उपवास करना आवश्यक है । उसे किंचित भी आहार या पानी संवत्सरी के दिन सेवन नहीं करना चाहिए।3.पर्यूषण कल्प नामक दशाश्रुत स्कंध सूत्र का आठवाँ अध्ययन है जिसका संवत्सरी के दिन वाचन श्रवण चिंतन मनन करना आवश्यक है उसे गृहस्थ परिषद में नहीं सुनाना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** निशीथसूत्र के इन विधानों में संवत्सरी प्रतिक्रमण संबंधी विधान नहीं है क्या ?

**दिनेश–** वहाँ निशीथ सूत्र में उपरोक्त साध्वाचार के विशेष विधान है । प्रतिक्रमण सम्बन्धी वहाँ कोई विधान नहीं है । प्रतिक्रमण तो श्रमणों का सामान्य आवश्यक विधान है अत: विशेष विधानों में उनके कथन की कोई आवश्यकता भी नहीं है ।

**जिज्ञेश–** श्रमण-श्रमणियों को संवत्सरी प्रतिक्रमण करना विशेष कर्तव्य नहीं है क्या ?

**दिनेश–** चौवीसवें तीर्थंकर के शासन में श्रमण श्रमणियों को नित्य उभयकाल प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है जिससे श्रमण नित्य ही व्रत शुद्धि एवं क्षमापना भाव में उपस्थित होता है । यह प्रतिक्रमण धर्म वाले श्रमणों का दैवसिक ध्रुवाचार है । इसीलिए संवत्सरी आराधना के इन विषयों में इसका अलग से कथन नहीं किया गया है ।

**जिज्ञेश–** पक्खी, चौमासी एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण का जो अलग महत्त्व माना जाता है वह किस अपेक्षा से ?

**दिनेश–** श्रावक वर्ग में उभयकाल नित्य प्रतिक्रमण करना आवश्यक नहीं होता है । कुछ श्रावक ही नित्य प्रतिक्रमण करते हैं किन्तु अधिकांशत: पाक्षिक, चौमासी या संवत्सरी प्रतिक्रमण करने वाले होते है । अत: उनकी बहुलता के लक्ष्य से श्रावक समाज की अपेक्षा पाक्षिक, चौमासी एवं संवत्सरी प्रतिक्रमण का महत्त्व समझना चाहिए।

**जिज्ञेश–** ज्ञाता सूत्र के पाँचवें अध्ययन में श्रमणों के लिए भी पर्व दिन चौमासी, पक्खी के प्रतिक्रमण सम्बन्धी वर्णन है न ?

**दिनेश–** ज्ञाता सूत्र में वर्णित श्रमण २२वें तीर्थंकर के शासनवर्ती थे। दूसरे तीर्थंकर से २३वें तीर्थंकर तक के शासनवर्ती श्रमणों को नित्य दैवसिक, रात्रिक-प्रतिक्रमण करना आवश्यक नहीं होता है । इसलिए श्रावक वर्ग के समान उनके भी पर्व तिथियों को विशेष रूप से प्रतिक्रमण होता है । इस अपेक्षा से ही ज्ञाता सूत्र का वह वर्णन है ।

**जिज्ञेश–** निशीथ सूत्र के अतिरिक्त अन्य किसी आगम में संवत्सरी सम्बन्धी कुछ भी विधान है ?

**दिनेश–** समवायांग सूत्र समवाय ७० में कुछ विधान है जिसका आशय





यह माना जाता है कि चौमासे का एक महिना बीस दिन बीतने पर एवं सित्तर दिन शेष रहने पर संवत्सरी पर्व आराधना करना चाहिए । इसके अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई विषय नहीं है । इस सूत्र की टीका में भी भादवा सुदी पंचमी का ही कथन किया गया है ।

**जिज्ञेश–** कल्प सूत्र में भी संवत्सरी सम्बन्धी विधान है न ?

**दिनेश–** कल्प सूत्र ३२ आगम में नहीं है एवं ४५ आगम में भी इस सूत्र की गिनती नहीं की जाती है । वह दशाश्रुत स्कंध के आठवें अध्ययन के नाम से अन्य अनेक उचित अनुचित मिश्रणों का पिंड बनाया गया सूत्र है । इस कल्पसूत्र का प्रथम सूत्र संवत्सरी विषयक है जो तर्क संगत भी नहीं है । आगम विपरीत भी है एवं मनगढंत बनाया गया सूत्र है । इस विषय की अन्य विस्तृत जानकारी इसी पुस्तक में देखनी चाहिए।

**जिज्ञेश–** स्थानकवासी, तेरापंथी एवं दिगम्बर ये तीनों जैन फिरके वाले पंचमी को स्वीकार करने वाले हैं तो भी ये कभी चतुर्थी को और कभी पंचमी को संवत्सरी करते हुए देखे जाते हैं । स्थानकवासी समाज की विभिन्न समुदायें भी एक ही वर्ष में चतुर्थी, पंचमी, दो संवत्सरी मनाते हुए देखी जाती है तथा संवत्सरी पर्व की एकता अनकेता के नाम से इन पंचमी पक्षवालों में भी आपस में विवाद क्यों खड़े होते रहते है ?

**दिनेश–** इनमें दो विभाग है, एक विभाग प्रतिक्रमण के समय पंचमी के घडीपल होने का आग्रह रखता है ।दूसरा विभाग पचांग में लिखी पंचमी को स्वीकार करता है । यही विवाद और विभेद का मुख्य कारण है।

**जिज्ञेश–** इन दोनों विभागों में कौन किधर है ?

**दिनेश–** श्वे. तेरापंथ, स्थानकवासी श्रमण संघ एवं प्राय: दिगम्बर समाज का एक सम्मिलित संगठन है । जो पंचांग में लिखी पंचमी को संवत्सरी करने के निर्णय में संकल्प बद्ध है । यह पहला विभाग है ।

दूसरे विभाग में शेष बची हुई स्थानकवासी की कुछ स्वतन्त्र संप्रदाएँ है । वे अस्त तिथि की प्रमुखता से पर्व करती है । इसे अपनी प्राचीन(२००-२५० वर्षकी) परम्परा समझती है एवं प्रतिक्रमण के समय घड़ियों पलों में पंचमी आने का ध्यान रखती है । इस कारण ये समुदाय कभी पंचांग में लिखी चतुर्थी को संवत्सरी करती है कभी पंचांग में लिखी पंचमी को संवत्सरी करती है ।

**जिज्ञेश–** स्थानकवासी श्रमण संघ वाले भी कभी चतुर्थी को संवत्सरी करते हुए देखे जाते हैं, ऐसा क्यों ? ये तो महासंघ में बंधे हुए है न ?

**दिनेश–** इनमें भी कई प्रमुख श्रमण परम्परागत अस्ततिथि की मान्यता वाले हैं । वे कभी पूर्व संस्कारों के प्रवाह में आ जाते हैं तब चतुर्थी को संवत्सरी करते हुए देखे जाते हैं ।

**जिज्ञेश–** प्रतिक्रमण के समय घड़ी पल पंचमी का देखना उचित है ?

**दिनेश–** ऊपर बताया गया है कि श्रमणों के लिए संवत्सरी का आगमिक महत्त्व उपवास आदि कर्तव्यों के लिए है, प्रतिक्रमण के लिए नहीं । आगम में संवत्सरी के प्रतिक्रमण करने सम्बन्धी प्रायश्चित्त न कह कर उपवास न करने का प्रायश्चित कहा है । अतः पंचमी के घडीपाल को प्रतिक्रमण के लिए खोजना उचित नहीं है । उपवास के योग्य पंचमी का दिन कौनसा है यह खोजना एवं सोचना चाहिए ।

**जिज्ञेश–** पंचमी की घडिएं साडे चार बजे समाप्त हो जाए तो प्रतिक्रमण के समय पंचमी के घडी-पल देखने वाले प्रतिक्रमण कब करते?

**दिनेश–** ऐसी परिस्थिति में वे कई लोग कभी साडे चार बजे ही प्रतिक्रमण कर लेते हैं ।

**जिज्ञेश–** असमय में प्रतिक्रमण करना उपयुक्त है क्या ?

**दिनेश–** नहीं । ऐसा करने से हास्यपात्र बनना पड़ता है ।

**जिज्ञेश–** शास्त्र में संवत्सरी का उपवास करना प्रमुख कर्तव्य है तो उसे पंचमी के घडी पल से करने का ध्यान रखना चाहिए क्या ?

**दिनेश–** घड़ी-पल की पंचमी से उपवास किया जाना सम्भव भी नहीं है और ऐसा उपवास जैन मान्यता से विपरीत और हास्यास्पद होता है ।

**जिज्ञेश–** ऐसा क्यों ?

**दिनेश–** चौथ के दिन ४बजे पंचमी की घड़ियाँ चालू होकर दूसरे दिन ३बजे समाप्त हो जाए तो घडीपल की पंचमी करने वाला चतुर्थी को चार बजे तक खाएँगा और पंचमी को ३ बजे बाद पारणा कर लेगा । इस प्रकार आगम से चतुर्थी का भी उसके उपवास नहीं होगा और पंचमी का भी नहीं होगा ।अतः उपवास तो पंचांग में लिखी तिथी से ही करना ठीक होता है । वही पंचाँग की तिथि निश्चित तिथी होती है । घडी पल से उपवास करना तो जैन क्या, जैनेत्तर समाज भी मान्य नहीं करती है ।





**जिज्ञेश–** क्या अस्ततिथि के आग्रह वाले ऐसी स्पष्ट प्रमाणयुक्त वार्ता को नहीं समझ सकते ।

**दिनेश–** प्रतिक्रमण और उपवास में से आगम में उपवास का महत्व है यह जब तक नहीं समझे, वहाँ तक वे प्रतिक्रमण की प्रमुखता में उलझे रहने के कारण इस वार्ता को सहज समझ ही नहीं सकते एवं स्वीकार भी नहीं कर सकते हैं ।

**जिज्ञेश–** उदय अस्त के सम्बन्ध में आगम या ग्रंथों में कुछ कथन है।

**दिनेश–** ३२ आगमों में अथवा ४५ आगमों में ६ पर्व तिथियों का एवं चातुर्मासी, संवत्सरी पर्व दिन का निर्देश है किंतु उदय-अस्त, घडी-पल आदि के हिसाब का कोई निर्देश या संकेत भी नहीं है । ***प्राचीन जैन ग्रंथो में उदय तिथि को अर्थात् प्रचलित व्यवहारिक तिथि को ही पर्वाराधन मनाने की प्रेरणा की गई है उसी की औचित्यता बताई गई है ।***

**जिज्ञेश–** जैन ग्रंथ के उन वाक्यांशों को अर्थ सहित स्पष्ट करावें ?

**दिनेश–** ***धर्म कर्मादिषु (प्रगट) तिथिरूपा तिथिरेव ग्राह्या । तिथिश्च प्रातः प्रत्याख्यान वेलायां या स्यात सा प्रमाणम् । सूर्योदयानुसारेणेव लोके पि दिवसादि व्यवहारात् । आहुरपि –***

**गाथा –** **चाउम्मासि य वरिसे, पक्खी य पंचअट्ठमीसु ।**
**ताओ तिहिओ जासिं, उदेइ सूरो न अण्णाओ ।१।**
**पूआ पच्चक्खाणं, पडिक्कमणं तह य नियम गहणं च ।**
**जीअे उदेइ सूरो, तीए तिहिए उ कायव्वं ।२।**
**उदयम्मि जा तिहि सा पमाणं, इयराए कीरमाणीऐ ।**
**आणाभंग अणवत्था, मिच्छत्त विराहणं पावे ।३।**

**भावार्थ–** धर्म कार्यों में जो व्यवहारिक तिथि होती है वही तिथि स्वीकार करनी चाहिए । चातुर्मासी, संवत्सरी, पंचमी, अष्टमी, पक्खी आदि की वे ही तिथिएँ होती है जिनमें सूर्य उदय होता है, अन्य तिथि नहीं । पूजा प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, नियमग्रहण आदि उदय तिथि-व्यवहारिक तिथि के अनुसार करना ही प्रमाणिक होता है । अन्य अव्यवहारिक तिथि को उक्त कार्य करने से आगम आज्ञा भंग करने का दोष लगता है एवं अन्य भी अनेक दोष लगते है । – ***अभिधान राजेन्द्र कोष भाग ३ तिहि शब्द ।***

**जिज्ञेश–** यह प्रमाण कहाँ से प्राप्त किया है ?

**दिनेश-** स्था. जैन कोन्फ्रंस का प्रमुख पत्र **जैन प्रकाश** ३ फरवरी १९९१, के पाक्षिक पत्र में प्रकाशित श्रमण संघीय महामंत्री श्री सौभाग्य मुनिजी म.सा. **कुमुद** के निबंध से प्राप्त किया है ।

**जिज्ञेश-** घड़ी-पल देखकर ही पर्व तिथि का निर्णय करने की परंपरा जो चल रही है उसे छोड देना कहाँ तक उचित है ?

**दिनेश-** परंपराएँ तो कई बनती रहती है एवं बदलती रहती है । कोई भी ऐसी समुदाय नहीं है जो कि यह दावा कर सके कि हमारी समुदाय में ५०-१०० वर्ष में कोई भी परंपरा नहीं बदली गई । अत: यहां परम्परा का तर्क एवं आग्रह महत्त्वपूर्ण नहीं है ।

**जिज्ञेश-** क्या परम्पराओं का कुछ भी महत्व नहीं है ? कोई भी परंपरा बदली जा सकती है ?

**दिनेश-** 1.कोई भी परंपरा किसी भी आगम से विपरीत है तो समझ में आते ही उनका परिवर्तन करना सर्वथा उचित है । उसका आग्रह रखना सर्वथा अनुचित है । 2. कोई परंपरा के संबंध में आगम में न सम्मति है और न विरोध है, उस परंपरा के संबंध में क्षेत्रकाल की अपेक्षा हानिलाभ एवं समाज की शांति, एकता आदि का विचार कर निर्णय करना चाहिए 3. जो परम्परा आगम सम्मत है, आगम आज्ञा एवं भगवादाज्ञा रूप है, उसका परिवर्तन करना या उसके परिवर्तन का नया सिद्धान्त बनाना जिन शासन का महान अपराध है । यह अधिकार किसी को भी नहीं होता है, किन्तु व्यक्तिगत या अल्प समय के लिए परिस्थिति वश उस परंपरा में अपवाद सेवन करना एवं प्रायश्चित्त ग्रहण करना जिनशासन में क्षम्य है।

**जिज्ञेश-** संवत्सरी के इस प्रकरण में परंपरा में उक्त तीन विकल्पों में कौनसा विकल्प उपस्थित है ?

**दिनेश-** निशीथ सूत्र के प्रमाण से संवत्सरी पर्व के दिन उपवास की मुख्यता होने से घडी पल देखने की परंपरा प्रथम विकल्प में आती है । तदनुसार उन्हें संवत्सरी का भादवा सुदी पंचमी का उपवास व्रत प्रचलित एवं पंचांग में लिखी पंचमी को ही करना चाहिए और भ्रांति से चली परंपरा को त्याग देना चाहिए ।आगमाधार रहित प्रतिक्रमण की प्रमुखता वाली परंपरा दूसरे विकल्प में आती है । तदनुसार भी समाज की एकता एवं हानि-लाभ का विचार कर परिवर्तन करना संभव है ।





अत: घडी पल प्रतिक्रमण के लिए देखने में चली आई परंपरा को परिवर्तन करने में कोई भी दोष नहीं समझना चाहिये ।

**जिज्ञेश-** किसी को पंचमी के वर्ष में २४ उपवास का नियम हो तो उसे घडी पल की पंचमी या अस्त तिथि की पंचमी देखना चाहिए क्या ?

**दिनेश-** उसे पंचांग में लिखी पंचमी को ही सभी उपवास करने चाहिए ।

**जिज्ञेश-** घडी-पल से एवं अस्त तिथि से संवत्सरी करने वाला जब चतुर्थी की संवत्सरी करेगा तो पंचमी का उपवास कब करेगा ?

**दिनेश-** वह साल के २३ उपवास तो पंचांग में लिखी पंचमी को करेगा और भादवा सुदी पंचमी का उपवास वह चतुर्थी की संवत्सरी को करेगा एवं पंचमी का पारणा कर लेगा या तो पंचमी का बेला कर लेगा ।

**जिज्ञेश-** पंचमी को किसी के ब्रह्मचर्य पालन का नियम हो एवं हरी का त्याग हो तो वह क्या करेगा ?

**दिनेश-** घडी-पल से चतुर्थी की संवत्सरी करने वाला ये दोनों नियम चतुर्थी संवत्सरी को भी पालन करेगा एवं दूसरे दिन पंचाग में लिखी पंचमी को भी पालन करेगा ।

**जिज्ञेश-** उसके संवत्सरी की पंचमी अलग और त्याग प्रत्याख्यान आदि की पंचमी अलग यों अलग-अलग करना संगत हैं ?

**दिनेश-** उपर दिए गये प्रमाणों के अनुसार सभी धार्मिक व्रत नियम उपवास आदि करने रूप पर्व दिन की तिथि पंचाग में लिखी तिथि को ही स्वीकार करना उचित होता है एवं वैसा करने पर ऐसी उपरोक्त कोई असंगतता उत्पन्न नहीं होती है ।

**जिज्ञेश-** अपने इस वार्तालाप का सारांश क्या रहा ?

**दिनेश-** संवत्सरी का प्रमुख कर्तव्य साधु का चौवीहार उपवास शास्त्र निशीथ में वर्णित है । अन्य भी कर्तव्य शास्त्र में है। किंतु प्रतिक्रमण की प्रमुखता नहीं है । इसलिए संवत्सरी की पंचमी तिथि उपवास की अपेक्षा ही समझनी चाहिए । अत: प्रतिक्रमण के समय के लिए घडी-पल देखकर कभी चतुर्थी और कभी पंचमी की यों अस्थिर तिथि की संवत्सरी नहीं करके स्थिर तिथि पंचांग में लिखी पंचमी को ही संवत्सरी पर्व की आराधना करनी चाहिए ।

**जिज्ञेश-** ऐसा करने से छट्ठ की घडियों में प्रतिक्रमण होगा न ?

**दिनेश-** इसमें कोई बाधा नहीं है । किसी भी शास्त्र से विरोध नहीं है अपितु उपवास तो सदा पंचमी का ही होगा, जिससे आगम आज्ञा की आराधना होगी ।

उपवास आदि रूप निशीथ सूत्र की आज्ञा एक निश्चित्त तिथि की अपेक्षा है और वह तिथि भादवा सुदी पंचमी सर्वमान्य एवं प्राचीन है । प्रतिक्रमण के समय पंचमी देखने वाले श्रमण शास्त्राज्ञा वाला पंचमी का उपवास कभी चतुर्थी को करते है जिसका उद्देशक १० सूत्र ३७ में गुरुचौमासी प्रायश्चित्त कहा है ।

किंतु छट्ठ की घडियों में प्रतिक्रमण होने पर तो किसी भी शास्त्र पाठ से प्रायश्चित नहीं आता है और नहीं किसी शास्त्राज्ञा का उल्लंघन होता है । प्रसिद्ध चतुर्थी का उपवास करके प्रसिद्ध पंचमी का उपवास नहीं करना, स्पष्ट ही शास्त्राज्ञा का उल्लंघन है ।

**जिज्ञेश** - पर्व दिनों के आराधना कार्य क्या प्रसिद्ध तिथि से नहीं करके अस्त तिथि से एवं घडी पल से ही करने चाहिए ?

**दिनेश** - वह कल्पना आगम सम्मत तो है ही नहीं तथा व्यवहार संमत भी नहीं है । क्योंकि आगम में पर्व तिथियाँ ६ बताई गई है अष्ठमी दो, चतुर्दशी दो, अमावश, पूनम । तथा दो पंचमी दो एकादशी और बीज (द्वितीया) दो, ये भी पर्व तिथियाँ जैन समाज में मान्य है । इन सभी पर्व तिथियों को उपवास पौषध तथा अन्य विविध त्याग नियम श्रमण वर्ग एवं श्रमणोपासक वर्ग में होते हैं । वे सभी लोग इन पर्व तिथियों के व्रताराधन प्रसिद्ध तिथि से ही करते हैं । अस्ततिथि से नहीं करते हैं । यह सत्य हकीगत है ।

अत: अस्ततिथि से पर्वतिथि के व्रताराधना की कल्पना में सत्यता या वास्तविकता नहीं है और घड़ीपल से पर्व-तिथि के व्रताराधना की बात भी पूर्णत: व्यवहार विरूद्ध एवं आगम विरूद्ध है । अर्थात् पंचमी अष्टमी चतुर्दशी आदि जब जिस घडीपल से प्रारंभ होकर जिस घडी-पल में पूर्ण हो उस मध्यकालीन समय में उस तिथि का व्रत, नियम, उपवास, पौषध-व्रत आदि करना मूर्खता पूर्ण ही होगा ।

जैसे पंचमी के घडीपल, दिन के दो बजे प्रारंभ हुए और दूसरे दिन १२ बजे पूर्ण हुए तो उपवास, हरी-त्याग, पौषध, मौन व्रत





आदि किस प्रकार किया जाएगा ? ऐसी घडीपल की तिथि का उपवास आदि निंदा के पात्र होंगे ।

अत: अस्ततिथि और घडीपल से पर्व तिथि के व्रताराधन नहीं करके प्रसिद्ध तिथि से ही करने चाहिए ।

**जिज्ञेश-** पंचमी तिथि क्षय या वृद्धि होने पर क्या करना चाहिए ?

**दिनेश-** आगमोक्त अन्य पर्व तिथियों के वृद्धि या क्षय होने पर जो निर्णय लिये जाते हैं अर्थात् उस तिथि का व्रत-नियम एवं उपवास आदि किया जाता है, वैसे ही भादवा सुदी पंचमी के वृद्धि या क्षय होने पर निर्णय कर लेना चाहिए ।

**जिज्ञेश-** पर्युषण में अट्ठाई कौन से दिन आनी चाहिए ?

**दिनेश-** आगम में केवल संवत्सरी के एक दिन का ही उल्लेख एवं तत्संबंधी विधान है । अत: उसका सही निर्णय करना ही पर्याप्त है। फिर उसके हिसाब से सात दिन पूर्व किसी भी तिथि को अठाई करने में कोई शास्त्र से विरोध नहीं आता है ।

**जिज्ञेश-** पर्युषण में पक्खी आदि कौन से दिन आनी चाहिए ?

**दिनेश-** इसका भी संवत्सरी के दिन से कोई प्रतिबंध नहीं है ।अन्य पक्खी दिवसों के निर्णय अनुसार इस पक्खी का भी निर्णय कर लेना चाहिए । अर्थात् पर्यूषण में पक्खी दूसरे दिन आवे या तीसरे दिन आवे अथवा चौथे दिन । इसमें कोई भी आगम से विरोध नहीं होता है ।

**जिज्ञेश-** उक्त चर्चा के अनुसार पक्खी आदि का निर्णय भी अस्त तिथि घडीपल से नहीं करना चाहिए क्या ?

**दिनेश-** पक्खी आदि पर्व दिन भी श्रमण के लिए उपवास व्रत नियम आदि की प्रमुखता से ही होते है । अत: पक्ष का अंतिम दिन अमावश पूनम जब पंचाग अनुसार हो अर्थात् प्रसिद्ध अमावश पूनम को ही पक्खी पर्व स्वीकार करना चाहिए ।

**जिज्ञेश-** अमावश या पूनम का क्षय या वृद्धि हो तो तब क्या करना ?

**दिनेश-** जैसा अन्य अष्टमी आदि पर्व तिथियों के क्षय होने से उस तिथी के व्रत नियम आदि किए जाने का व्यवहार होता है उसी तरह पक्खी पर्व के लिए भी समझ लेना चाहिए । ध्यान यही रखना चाहिए कि पक्खी पर्व दिन के बाद दूसरे दिन अगला पक्ष आ जाना चाहिए । क्योंकि

पक्खी पर्व का मतलब यह है कि पक्ष के अंतिम दिन की आराधना ।

**जिज्ञेश-** जब भादवा महिना वृद्धि होवे अर्थात् जिस वर्ष दो भादवा महिना होवे तो भादवा सुदी पंचमी की संवत्सरी प्रथम भादवा में करना चाहिए या दूसरे भादवा में ?

**दिनेश-** जब अन्य महिने बढते है तब उन महिनों में आने वाले पर्व जिस तरह किए जाते है उसी तरह भादवा महिना बढ़ने पर संवत्सरी पर्व की आराधना करना चाहिए ।

**जिज्ञेश-** अन्य महिने बढ़ने पर कौन से पर्व कब किए जाते है यह भी स्पष्ट करें ?

**दिनेश- आषाढ़** महिना दो होने पर आषाढ़ी चौमासी दूसरे आषाढमें की जाती है । श्रावण महिना दो होने पर रक्षाबंधन दूसरे श्रावण में किया जाता है ।**भादवा** महिना दो होने पर गणेश चतुर्थी दूसरे भादवा में की जाती है ।दो भादवा होने पर ऋषि पंचमी दूसरे भादवा में होती है । **कार्तिक** दो होने पर कार्तिक चौमासी पर्व दूसरे कार्तिक में मनाया जाता है । **फाल्गुन** दो होने पर फाल्गुनी चौमासी दूसरे फाल्गुन में की जाती है । **चैत्र** दो होने पर महावीर जयंति, आयंबिल ओली आराधना दूसरे चैत्र में की जाती है । **वैशाख** दो होने पर अक्षय तृतिया दूसरे वैशाख में की जाती है ।

इसलिए भादवा दो होने पर भादवा सुदी पंचमी का संवत्सरी पर्व दूसरे भादवा में ही करना चाहिए ।

**जिज्ञेश-** दो श्रावण हो तो संवत्सरी कब करनी चाहिए ?

**दिनेश-** संवत्सरी भादवा मास का पर्व दिन है श्रावण महिना दो हो या एक, संवत्सरी के लिए तो भादवा की पंचमी ही निश्चित तिथि है और निश्चित तिथि का परिवर्तन कर पर्व आराधना करने का निशीथ सूत्र में प्रायश्चित्त है । अत: भादवा मास और पंचमी तिथि के परिवर्तन करने को अनागमिक समझना चाहिए ।

**जिज्ञेश-** आषाढी चौमासी से पचासवें दिन संवत्सरी करना चाहिए ऐसा शास्त्र में है न ?

**दिनेश-** यह तो एक कल्पित कल्पना है । पचास या उनपचास दिन ऐसी कोई संख्या किसी भी आगम में नहीं है । इसके लिए जिस किसी आगम





का नाम लिया जाता है वह तो उस शास्त्र के नाम से केवल कल्पित कल्पना मात्र है ।

**जिज्ञेश-** महिने बढ़ने पर ये पर्व दूसरे महिने में क्यों किये जाते है ?

**दिनेश-** महिना बढ़ने पर पहला महिना नपुंसक मास कहा जाता है। बढ़ने वाले महिने को ऊपर निर्दिष्ट सभी पर्वो में गौण-नगण्य किया जाता है और दूसरे महिने को ही वास्तविक महिना माना जाता है । इस विषय में अन्य भी सूक्ष्म चर्चाए हैं वे अन्यत्र से जाननी चाहिए।

**जिज्ञेश-** धर्म कार्य तो पहले ही करना चाहिए उसे आगे के लिए नहीं करना चाहिए ?

**दिनेश-** कोई भी कार्य का जो निश्चित दिन है उससे पहले-पहले करते जाने से अव्यवस्था होती है । जबकि चौमासी, महावीर जयंति, अक्षय तृतीया आदि किसी के लिए भी ऐसा पहले महिने में करने का संकल्प नहीं किया जाता है । तो केवल संवत्सरी के लिए ऐसा संकल्प क्यों करना चाहिए । जब कि इसके लिए तो, एक निश्चित दिन ही करना, परिवर्तन नहीं करना, ऐसी आगम आज्ञा है एवं परिवर्तन करने का गुरुचौमासी प्रायश्चित्त भी निशीथ सूत्र में कहा है । अत: यदि धर्मकार्य पहले करने का विकल्प महत्त्वशील होता हो तो उपरोक्त सभी पर्व भी महीना बढ़ने पर पहले महीने में किए जाने चाहिए किन्तु ऐसा नहीं किया जाता है अत: यह कथन महत्त्वशील नहीं है ।

**जिज्ञेश-** इस पिछली अपनी चर्चा का सार क्या हुआ ?

**दिनेश-** कोई भी महिना या तिथि बढ़े तो संवत्सरी पर्व की निश्चित तिथि भादवा सुदी पंचमी को परिवर्तन नहीं करना चाहिए । प्रतिक्रमण के समय घड़ीपल देखने की उलझन में नहीं पड़ना चाहिए । प्रसिद्ध तिथि से ही पर्व दिन के उपवास पौषध आदि व्रत नियम करने चाहिए जिस तरह अन्य महिनों के धार्मिक पर्व करने का निर्णय लिया जाता है उसी तरह सरलता पूर्वक संवत्सरी पर्व का भी निर्णय कर लेना चाहिए ।

**जिज्ञेश- आगामी वर्ष २०४९** की भादवा सुदी पंचमी कब है ?

**दिनेश-** पंचांग में ३१ अगस्त को गणेश चतुर्थी भादवा सुदी चौथ लिखी है और १ सितम्बर को भादवा सुदी पंचमी ऋषि पंचमी लिखी है ।

**जिज्ञेश-** इस वर्ष घड़ी पल की अस्त की पंचमी कब है ?

**दिनेश-** इस वर्ष भादवा सुदी चतुर्थी के दिन सूर्यास्त के समय चौथ ही होने से पंचांग में गणेश चतुर्थी लिखी है अत: उस दिन ता. ३१ अगस्त को अस्त के घड़ी पल की पंचमी नही हैं ।

एवं भादवा सुदी पंचमी के दिन सूर्यास्त के पूर्व ही पंचमी समाप्त हो जाती है । अत: उस दिन भी घड़ी पल की अस्त तिथि की पंचमी नहीं है । फिर भी पंचाग में सूक्ष्म गणित के अनुसार ऋषि पंचमी भादवा सुदी पंचमी को ही लिखी है ।

**जिज्ञेश-** ऐसी स्थिति में इस वर्ष संवत्सरी अस्त तिथि की मान्यता वाले और प्रसिद्ध तिथि की मान्यता वाले एक ही दिन पंचमी को करेंगे ? क्योंकि चौथ के पूरे दिन तो पंचमी है ही नहीं ।

**दिनेश-** अपनी-अपनी परम्परा में आग्रह को लेकर कई चौथ को ही पाँचम मानेंगे और चौथ को संवत्सरी करेंगे और कोई ऋषि पंचमी एवं प्रसिद्ध पंचमी की संवत्सरी करेंगे । यों इस प्रकार इस वर्ष भी संवत्सरी पर्व में विभेद रहेंगे ।

**जिज्ञेश-** तो हमें किस दिन करनी चाहिए ?

**दिनेश-** जिस क्षेत्र में एवं समाज में हम रह रहे हों उस समाज की एकता शान्ति समाधि जिस तरह रहे, प्रेम वात्सल्यता जिस तरह बढे, उसी दिन हमें संवत्सरी पर्व की आराधना करनी चाहिए एवं संपूर्ण जैन समाज को प्रसिद्ध पंचमी की संवत्सरी करने की प्रबल प्रेरणा मिले ऐसा प्रयत्न जारी रखना चाहिये । जिससे संपूर्ण जैन समाज की स्थाई एकता एवं जिनाज्ञा की सच्ची आराधना हो सके ।

**तिथि निर्णय(राजेन्द्र कोष से) पारासर स्मृति आदि में :-**

**आदित्योदय वेलायां, या स्तोका पि तिथि र्भवेत् ।**
**सा संपूर्णा इति मन्तव्या, प्रभूता नोदयं विना ॥**

**अर्थ-** सूर्योदय के समय अल्प समय मात्र भी जो तिथि हो उसे ही संपूर्ण तिथि रुप में मान्य करनी चाहिए । सूर्योदय के समय न हो और बाद में अनेक घंटे भी हो तो भी वह तिथि मान्य नहीं की जा सकती ।

**उमास्वाति वाचक प्रघोषश्चैवं उच्यते -**

**क्षये पूर्वा तिथि कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।**
**एवं पौषधादिना पर्व दिवसा, आराध्या इति पर्व कृत्यानि ॥**





**अर्थ -** कोई भी तिथि क्षय होती है तो उस तिथि के धर्म कार्य पूर्व की तिथि के दिन करने चाहिये । किसी भी तिथि के वृद्धि होने पर दूसरे दिन उस तिथि के कार्य करने चाहिए । इस प्रकार मान्य करके ही पौषध आदि के द्वारा पर्व दिनों की आराधना करनी चाहिए- ***उमास्वातिवाचक वचन प्रमाण्याद् वृद्धौ सत्यां स्वल्पापि अग्रेतना तिथि: प्रमाण्यम् ।***

**अर्थ-** उमास्वाति आचार्य के वचन को प्रमाण करके तिथि के वृद्धि होने पर दूसरे दिन अल्प समय ही वह तिथि हो तो भी अगले दिन ही पर्व तिथि माननी चाहिए ।- ***अभिधान राजेन्द्र कोश भाग-४, 'तिहि' शब्द ।***

## सुलझे विचार

**- श्र.सं. महामंत्री श्री सौभाग्यमलजी म.सा.**

यद्यपि हमारी परंपरा अस्त तिथि की रही है किन्तु इससे बहुत अव्यवस्था हो गई है । कभी चौथ, कभी पंचमी, कभी चतुर्दशी, कभी पूर्णिमा, यों प्रत्येक पर्व में दुविधा फैल गई है । अब समाज विस्तृत हो चुका हे, प्रोग्रेसिव भी सभी स्थायित्व चाहते है। सभी जगह तिथियों के बदलाव के निर्णय शीघ्र पहुँच भी नहीं पाते है । अत: सारे स्थानकवासी समाज को एक मत से उदय तिथि स्वीकार कर लेना चाहिए ।

श्वे. मूर्तिपूजक जैन उदय तिथि के आधार पर चतुर्थी की संवत्सरी निश्चित रुप से कर लेते हैं, श्वे. स्था. तेरापंथी जैन भी उदय के आधार पर पंचमी कर लेते हैं सभी जैन समाज स्थायी तिथि की मान्यता रखते हैं केवल स्थानकवासियों में ही यह दुविधा है- कभी चौथ, कभी पंचमी । यह स्थिति समाप्त होनी चाहिए । मनन करें ।

**निबंध-५८**

## मासिक धर्म में अस्वाध्याय और विवेक

**( निशीथ सूत्र उद्देशक-१९, सूत्र-१५)** स्वय का अस्वाध्याय दो प्रकार होता है- १. व्रण स ब धी २. ऋतुधर्म स ब धी। इसमें भिक्षु के एक प्रकार का एव भिक्षुणी के दोनों प्रकार का अस्वाध्याय होता है।

शरीर में फोड़े, फुन्सी, भग दर, मस्सा अदि से जब रक्त या पीव बाहर आता है तब उसका अस्वाध्याय होता है। उसकी शुद्धि करके १०० हाथ के बाहर परठकर स्वाध्याय किया जा सकता है। शुद्धि करने के बाद भी रक्त आदि निकलता रहे तो स्वाध्याय नहीं किया जा सकता। किन्तु उसके एक-दो या उत्कृष्ट तीन पट वस्त्र के बाँधकर परस्पर आगम वा चनी ली दी जा सकती है। तीन पट के बाहर पुनः खून दिखने लग जाए तो फिर उन्हें शुद्ध करना आवश्यक होता है।

ऋतुधर्म का अस्वाध्याय तीन दिन तक रहता है। किन्तु व्यवहार सूत्र के उद्देशक ७ सूत्र १७ में अपने अस्वाध्याय में परस्पर वा चना लेने देने का विधान किया गया है। उसकी भाष्य में विधि इस प्रकार बताई है कि रक्त आदि की शुद्धि करके आवश्यकतानुसार एक दो अथवा उत्कृष्ट सात वस्त्र पट लगाकर साधु-साध्वी परस्पर आगमों की वा चणी दे-ले सकते हैं। प्रमाण के लिये देखें- ***व्यव.उद्दे.७ भाष्य गा.३९०-३९४ तथा निशीथ भाष्य गा. ६१६७-६१७० तथा अभि. राजेन्द्र कोश भाग-१ पृ. ८३३ 'असज्झाइय' शब्द।***

उपरोक्त सूत्र १४ और १५ में वर्णित सभी अस्वाध्याय आगमों के मूल पाठ के उच्चारण से ही सम्बन्धित जानने चाहिए। क्यों कि उनकी भाषा 'देव-वाणी' है और अस्वाध्याय का प्रमुख कारण देवों के उपद्रव होने से सम्बन्धित है।

अतः मासिक धर्म आदि अवस्था में आगमों के अर्थ वाचन या अनुप्रेक्षा, पृच्छा, व्याख्यान श्रवण आदि करने का निषेध नहीं है तथा गृहस्थ को सामायिक आदि स वर प्रवृत्ति एव नित्य-नियम तथा प्रभु स्तुति-स्मरण का निषेध भी नहीं है।

आगम स्वाध्याय के नियमों को यदि सामायिक प्रतिक्रमण आदि धर्म प्रवृत्तियों के लिए भी लागू किए जावे तो यह प्ररुपणा का अतिक्रमण होता है





एव अकारण समस्त धर्मक्रियाओं में अ तराय होता है। एक विषय के नियम को अन्य विषय में जोड़ना अनुचित प्रयत्न है।

व्यव॰ उद्दे॰-७ में जब स्वय आगमकार मासिक धर्म आदि के अपने अस्वाध्याय में आगम की वा चणी अर्थात् अर्थ पढ़ लेने का भी विधान करते हैं तो फिर किसी भी आचार्य के द्वारा सामायिक, प्रतिक्रमण, प्रभु स्मरण, नमस्कार म त्र एव लोगस्स आदि के उच्चारण का निषेध किया जाना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता है।

क्यों कि ऐसी आगम विपरीत मान्यता रखने पर स वत्सरी महा पर्व के दिन भी सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, व्याख्यान श्रवण, मुनि दर्शन एव नमस्कार म त्रोच्चारण आदि सभी धार्मिक प्रवृत्तियों से व चित रहना पड़ता है। सभी प्रकार की धर्म प्रवृत्ति से व चित गृहस्थ पर्व दिनों में भी सावद्य प्रवृत्ति एव प्रमाद में ही स लग्न होते है। इसलिए ऐसी प्ररूपणा करना सर्वथा अनुचित है।

अतः अपनी अस्वाध्याय में श्राविकाएँ विवेकपूर्वक सामायिक प्रतिक्रमण आदि क्रिया करें तो इसमें कोई दोष नहीं समझना चाहिए और गृह कार्यों से निवृत्ति के इन ३ दिनों में उनको स वर आदि धर्म क्रिया में ही अधिकतम समय व्यतीत करना चाहिए। साध्वियों को मूलपाठ के स्वाध्याय के अतिरिक्त अन्य अध्ययन, श्रवण, सेवा, तप, आत्मचिंतन, ध्यान आदि में समय व्यतीत करना चाहिए।

**निबंध-५९**

## अस्वाध्याय का मर्म एव विवेक

**( निशीथसूत्र उद्दे॰१९, सूत्र-१८)** अस्वाध्याय में स्वाध्याय के निषेध करने का प्रमुख कारण यह है कि भग॰ श॰५. उद्दे॰४ में देवों की अर्ध मागधी भाषा कही है और यही भाषा आगम की भी है। अतः मिथ्यात्वी एव कुतुहली देवों के द्वारा उपद्रव करने की सम्भावना बनी रहती है।

अस्वाध्याय के इन स्थानों से यह भी ज्ञात होता है कि स्पष्ट घोष के साथ उच्चारण करते हुए आगमों की पुनरावृत्ति रूप स्वाध्याय करने की पद्धति होती है। इसी अपेक्षा से ये अस्वाध्याय कहे हैं। किन्तु इसके भाषा तरित हुए आगम का स्वाध्याय करने में अस्वाध्याय नहीं होता है। अस्वाध्याय के सम्बन्ध में विशेष विधान यह है कि आवश्यक सूत्र के

पठन-पाठन में अस्वाध्याय नहीं होता है क्यों कि यह सदा उभयकाल स ध्या समय में अवश्य करणीय होता है। अतः नमस्कार म त्र, 'लोगस्स' आदि आवश्यक सूत्र के पाठ भी सदा सर्वत्र पढ़े या बोले जा सकते हैं।

किसी भी अस्वाध्याय की जानकारी होने के बाद शेष रहे हुए अध्ययन या उद्देशक को पूर्ण करने के लिए स्वाध्याय करने पर प्रायश्चित्त आता है।

तिर्यंच प चेन्द्रिय या मनुष्य के रक्त की जल से शुद्धि करना हो तो स्वाध्याय स्थल से ६०हाथ या १००हाथ दूर जाकर करनी चाहिए। तेइन्द्रिय चौरेन्द्रिय के खून या कलेवर का अस्वाध्याय नहीं होता है।

औदारिक सम्बन्धी अशुचि पदार्थों के बीच में राजमार्ग हो तो अस्वाध्याय नहीं होता है। उपाश्रय में तथा उसके बाहर ६० हाथ तक अच्छी तरह प्रतिलेखन करके स्वाध्याय करने पर भी कोई औदारिक अस्वाध्याय रह जाय तो सूत्रोक्त प्रायश्चित्त नहीं आता है।

अतः भिक्षु दिन में सभी प्रकार की अस्वाध्यायों का प्रतिलेखन एव विचार करके स्वाध्याय करे और रात्रि में स्वाध्याय काल प्रतिलेखन करने योग्य भूमि अर्थात् जहाँ पर खड़े होने पर सभी दिशाएँ एव आकाश स्पष्ट दिखे, ऐसी तीन भूमियों का शाम को प्रतिलेखन करे। वर्षा आदि के कारण से कभी मकान में रहकर भी काल प्रतिलेखन किया जा सकता है।

बहुत बड़े श्रमण समूह में दो साधु आचार्य की आज्ञा लेकर काल प्रतिलेखन करते हैं, फिर सूचना देने पर सभी साधु स्वाध्याय करते हैं। बीच में अस्वाध्याय का कारण ज्ञात हो जाने पर उसका पूर्ण निर्णय करके स्वाध्याय ब द कर दिया जाता है।

स्वाध्याय आभ्यन्तर तप एव महान् निर्जरा का साधन होते हुए भी अस्वाध्याय में स्वाध्याय करने पर जिनाज्ञा का उल्ल घन होता है। मर्यादा भ ग आदि से कर्म ब ध होता है, कभी अपयश एव उपद्रव भी होता है। इसलिए स यम विराधना की एव प्रायश्चित्त की प्राप्ति होती है। ***-निशीथ चूर्णि प्रस्तुत सूत्र।***

अतः स्वाध्याय प्रिय भिक्षु को अस्वाध्यायों के सम्बन्ध में भी सदा सावधानी रखने के कर्तव्यों का आवश्यक रूप से पालन करना चाहिए। स्मरण रहे कि यह नियम केवल अर्धमागधी भाषा वाले कालिक





एव उत्कालिक सूत्रों के मूल पाठ की अपेक्षा है। आवश्यक सूत्र(प्रतिक्रमण सूत्र) के लिए अस्वाध्याय सम्बन्धी कोई कर्तव्य नहीं है एव सूत्रों की व्याख्या, भाषा तर, अर्थ चिंतन, वा चन चथा अन्य स वर धर्म प्रवृत्ति आदि के लिए भी अस्वाध्याय सम्बन्धी कोई नियम नहीं है।

**निबंध-६०**

## चैत्य शब्द का अर्थ

**(व्य॰ उद्दे॰१, सूत्र-३३)** सूत्र में 'सम्म भावियाई' शब्द का प्रयोग किया गया है टीकाकार ने उसका अर्थ करते हुए 'जिन वचनों से भावित अन्तःकरण वाला' ऐसा अर्थ किया है।

'चेइय' शब्द के अनेक अर्थ शब्दकोश में बताये गए है उसमें ज्ञानवान और भिक्षु आदि अर्थ भी 'चेइय' शब्द के किये हैं। अनेक सूत्रों में तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के लिए 'चेइय' शब्द का प्रयोग किया गया है वहाँ उस शब्द से भगवान को 'ज्ञानवान' कहा है।

उपासकदशा अ॰१ में श्रमणोपासक की समकित सम्बन्धी प्रतिज्ञा का पाठ है। उसमें अन्य तीर्थिक से ग्रहण किये चैत्य को अर्थात् साधु को वन्दन नमस्कार एव आलाप-स लाप करने का तथा आहार-पानी देने का निषेध है। वहाँ स्पष्ट रूप से 'चेइय' शब्द का भिक्षु अर्थ में प्रयोग किया गया है। वहाँ चैत्य से आलाप स लाप करने का आगम कथन विशेष मननीय है। क्यों कि मूर्ति से आलाप स लाप नहीं हो सकता।

प्रस्तुत सूत्र में प्रयुक्त 'चेइय' शब्द का अर्थ मूर्तिपूजक समुदाय वाले 'अरिह त भगवान की मूर्ति' भी कहते हैं किन्तु वह टीकाकार के अर्थ से विपरीत है तथा पूर्वापर सूत्रों से विरुद्ध भी है। क्यों कि टीकाकार ने यहाँ अतःकरण शब्द का प्रयोग किया है वह मूर्ति में नहीं हो सकता। सूत्र में सम्यक् भावित चैत्य का अभाव होने पर अरिह त सिद्ध की साक्षी के लिए गाँव आदि के बाहर जाने का कहा है। यदि अरिह त चैत्य का अर्थ मन्दिर होता है तो मन्दिर में ही अरिह त सिद्ध की साक्षी से आलोचना करने का कथन होता, गाँव के बाहर जाने के अलग विकल्प देने की आवश्यकता ही नहीं होती।

अतः 'चेइय' शब्द का प्रस्तुत प्रकरण में 'ज्ञानी' सम्यग् दृष्टि अथवा समझदार पुरुष ऐसा अर्थ करना ही उपयुक्त है।

समवाया ग सूत्र में तीर्थंकरों को जिस वृक्ष के नीचे केवलज्ञान उत्पन्न होता है उसे 'चैत्य वृक्ष'अर्थात् ज्ञानोत्पति स्थल का वृक्ष कहा है। तात्पर्य है कि मौलिक गणधर रचित आगमों में एव विशाल शब्द कोशों में भी 'चैत्य' शब्द का अर्थ 'ज्ञान' सूचित्त किया गया है। प्रस्तुत प्रकरण में भी 'ज्ञानी' सम्यग् दृष्टि अर्थ ही अपेक्षित हैं एव उचित है।

**निबंध-६१**

## जैनधर्म का नकशा

**प्रश्न :** दिगम्बरों का त्याग धर्म कैसा है ?

**उत्तर :** यह अेक ओगड पंथ जैसा अर्थात् अज्ञानियों छद्मस्थों का चलाया हुआ धर्म है । वे भगवान महावीर और गणधरों की प्राप्त परंपरा के आगमों की उपेक्षा करते हैं और नये जोडे जोडाये आग्रह बुद्धि से तीर्थंकर महावीर से निरपेक्ष बुद्धि से, स्वछंद मति से बनाये ग्रंथों से, अपनी विकृत बुद्धि से शुचिधर्मीपने के सिद्धांतो से दूषित आचारों, नियमों और निर्ग्रंथ प्रवचन के विरुद्ध समझ को पकडे हैं ।यथा-

**(१)** नंगे रहने का एकांतवाद, फिर भी स्त्रियों के टोले को साथ में रखकर साध्वी-आर्यिका की गिनती भेजकर बाबुलाल जैन उज्जवल से चातुर्मास सूचि में (धन के प्रलोभन द्वारा) छपवाते हैं।

**(२)** पूछने पर स्पष्ट कहते-लिखते कि स्त्री शरीर में साधुपणा नहीं, महाव्रत नहीं, अहिंसा का पूर्ण पालन नहीं, अपरिग्रह नहीं, तीन संघयण नहीं, मोक्ष नहीं यह हमारा सिद्धांत था, है, रहेगा । बाबुलाल जो चातुर्मास सूचि में छापता है उसे नहीं देखो, उसका तो अपना धंधा है ।

**(३)** कच्चे पानी को छानने मात्र से अचित्त मान कर पी जाते है ।

**(४)** आधाकर्मी आदि दोषों से भरी खाद्य सामग्री मेहमान की तरह खडे होकर स्त्री के संघटे युक्त खाते हैं । ४२ दोष गोचरी के टालना नहीं और अपने घर के अनेक नियम- बिल्ली आजावे तो, छींक आ जावे तो खाना बंद कर देना आदि अनेक खोटे खोटे नियमों का ढोंग करना ।

**(५)** विहार में अपरिग्रही साधु कहलाकर, नग्न शरीर रखते हुए भी ट्रक भरे समान लिये फिरना और सारी सुविधा साथ में ।

**(६)** द्रव्य स्त्री शरीर में मोक्ष नहीं, साधुपना नहिं किंतु पुरुष शरीरी अंदर में स्त्रीवेद के उदय की बिंडबना वाले को साधुपना और मोक्ष कह देते





जबकि भाव से कोई भी वेदवाला मोक्ष नहीं जाता । भाव वेद तो ९में गुणस्थान में समाप्त हो जाते मात्र द्रव्य शरीर ही रहता है । फिर भी पुरुष शरीर से स्त्रीलिंग सिद्ध मानने की आगम विपरीत, जिनमत विपरीत धारना ग्रंथों में भरी रखते हैं । और ऐसे ग्रंथो के प्रमाणधर के वास्तविक आगमों की उपेक्षा करते हैं।

**(७)** ब्रह्मचारी कहलाकर स्त्रियों के संघट्टे से खाते, उनसे अपना नंगा शरीर पुँछवाते, अपने कार्य माताजी से करवाते, पडोस में माताजी साध्वियों-औरतो को रहने देते हैं, जो रात्रि में भी आवागमन कर सके ।

**(८)** खुले मुँह बोल कर भगवती सूत्र से विरुद्ध आचरण कर सावध भाषा बोलते हैं बेधडक ।

**(९)** स्त्री को छ संघयण पूरे नहीं मानकर भी सभी नरकों देवलोकों में जाना मानते हैं। देवलोको की संख्या भी आगम विपरीत मानते हैं । अनाज को भी अचित मानते हैं ।

**(१०)** स्त्रियो के शरीर पर खुद हाथ, मोरपींछी रख देते है और उन्हें पाँव छूने देते है ।

**(११)** एक समय खाना-पीना करके भी कई साधु आचार्य पेट की तौद बढाये रखते जिससे नंगे बेढंगे दिखते है । नंगे रहते हुए भी बस्ती के भीतर फिरते, जाते-आते रहते हैं ।

**प्रश्न : जैन श्वेतांबर और दिगंबर में किसी मे साधुपणा सच्चा होता है या सभी दिखने के साधु होते हैं ?**

**उत्तर :** उपर बताये अनुसार **दिगंबरों में** महाव्रत का कोई ठिकाना ही नहीं होता है उनमें मूलगुण और उत्तरगुण के अनेक दोष भरे पडे हैं । खोटी प्ररूपणा आगम विपरीत भी करते रहते हैं । भगवतीसूत्र शतक २५ अनुसार उनमें किसी १ में भी साधुपणा नहीं हो सकता है।

**मंदिरमार्गी साधु** हिंसाधर्म प्रेरक और अनुमोदक तथा ऐसों के सहवासी होने से महाव्रतधारी होना शक्य नहीं है । क्योंकि नित नये पापों का पोषण करने के प्रेरक और आरंभ के प्रेरक बनकर नये-नये मंदिर पूजा के पापारंभ में पडे रहते हैं, ऐसे पापारंभी धर्म को निर्वद्य धर्म मानने के कारण इनमें भी महाव्रतधारी होने की या सम्यक्त्वी होने की कल्पना भी नहीं की जा सकती ।

स्थानकवासी में भी अनेक गच्छों में आत्मार्थीपण खतम सा है, मनमोजीपना, स्वच्छंदता भरपूर है, आगम नियमों की उपेक्षा है, मेल परीषहरूप भगवंत की आज्ञा की उपेक्षा है । विभूषावृति से चिकने कर्म बांधकर घोर संसार में पडने की वृति करके दशवैकालिक अध्ययन-६ अनुसार साधुपणे से भ्रष्ट होते हैं ।रात्रिविहार करने वालों में तथा आधाकर्मी आहार-पाणी करने वालो में साधुपणे की कल्पना भी करना भगवत् आज्ञा विपरीत है ।

इसके सिवाय दिखने के शुद्ध आचार वाले श्रमण भी एक दूसरे से आपस में रागद्वेष से भरे रहते हैं, निंदा के जैसे पापों का त्याग भी नहीं कर सकते । गांव-गांव, घर-घर, श्रावक-श्राविका में मेरे-तेरे की परिग्रहवृति से युक्त होते हैं, यों मूर्छा परिग्रह वाले १८ पाप के भी पूर्णत: त्यागी वास्तव में वे नहीं होते हैं । कषाय कलुशता, संप्रदाय की फूट-फाट में उनके मन की आत्मा की परिणति में वास्तविक रूप से कभी सवंत्सरी की सच्ची आराधना भी नहीं हो पाती है । उनमें अनंतानुबंधी कषाय की पुष्टि होती रहती है । जिससे वे वैर, द्वेष रखते रहते है उसे वे बढाते ही रहते है छोडने का नाम नहीं लेते । वे समभावी नहीं विषम परिणामी अंदर से होने के कारण उनके लोग ९० प्रतिशत मिथ्यात्वदशा ही भोगते है । अत: वहाँ साधुपणा तो क्या समकित भी रहना मुश्किल है अर्थात् वे अपने आपको उत्कृष्टाचारी मानने वाले विषमभावी राजनीति को धर्म में घुसाकर प्राय: सच्चे मिथ्यात्वी की दशा भोगने वाले ही श्रावक साधु होते हैं। ये स्थानकवासी परस्पर पूर्ण अंतरंग समभावी नहीं होने से कहने के साधु मात्र होते है और कितनी ही छोटी-मोटी आगम आज्ञा का पालन नहीं करते हुये अपने दुराग्रह एवं अहं से प्रायश्चित्त प्रश्चात्ताप नहीं करने से वे साधुपने से कोसों दूर रहकर वास्तव में वेशमात्र के साधु रहते हैं ।

उपरोक्त स्पष्टीकरण के उपरांत भी अपवाद स्वरूप अपनी-अपनी अंतरंग जागृति सावधानी युक्त कुछेक परम पवित्र हदयी भगवान की आज्ञा को इमानदारी से पालन करने वाले महामना, आत्मार्थी, हलुकर्मी, ज्ञानियों के ज्ञान में सच्चे साधु हों तो वे एक प्रतिशत भी मुश्किल से हो सकते हैं ।

यह वर्तमान के समस्त(१४०००)जैनी साधुओं का नक्शा दिखाया





गया हैं इस दर्पण के अंदर अपना कालामुख दिखे तो कोई ज्यादा काला करने का प्रयत्न (गुस्सा करके) नहीं करेगा अपितु आगम आज्ञारूप पानी से अपने मुँह की कालिमा को धोकर साफ स्वच्छ चहेरा बनाने का प्रयत्न कर लेखक द्वारा सूचित अपवित्र साधुता से उपर उठकर सच्ची साधुता कर दिखायेगा और मुक्ति का अधिकारी बनेगा, उसे ही लाख-लाख धन्यवाद के साथ यह लेखन समाप्त किया जाता है ।

**स्थानकवासियों की दशा :-**

(१) कई साधु अपने मूल स्थानवासी सिद्धांत के लोपक बनकर भगवान महावीर आदि तीर्थंकरों के मूर्ति मंदिर के खंडन के सिद्धांत वाले होकर भी अपने गुरुओं के पगलिये, स्टेच्यु, समाधि स्थल, चित्रगृह-शाला, गुरु की गादी आदि बनाकर भक्तों से वंदन करवाते है और स्थानकवासी धर्म लजाते है तथा मंदिरमार्गी लोगो से निंदा करवाने का हत्था बनते हैं।

(२) कोई स्थानक आदि मकानों, संस्थाओं के भवन बनवाकर महारंभी बनकर स्थानवासी धर्म लजाकर मंदिर मार्गी लोगों को निंदा का चान्स देते हैं ।

(३) रात्रिविहार कर जिनाज्ञा के लोपक होते हैं ।

(४) वाहन प्रयोग कर साधु धर्म की विडंबना करते हैं । अर्थात् विलचेयर, कार एवं एरोप्लेन में अकारण (गाढागाढी कारण बिना) घूमते फिरते है धर्म प्रचार के नाम या कपट प्रपंच करके ।

(५) अपने ही टूटे हुये विभागरूप साधु संघ से द्वेष रखकर सदा कलुषता निंदा भाव रखते हैं । अमानवीयता निर्दयता करके अनुकंपा धर्म का भी नाश करते हैं । तथा गांव में चातुर्मास हो तो उनका मुँह देखना भी धर्म नहीं समझते है और कषाय त्याग के उपदेश की बातें करते हुये संवत्सरी घरबैठे मनाते हैं ।

(६) प्राय: संप्रदायों में कोई न कोई साधु-साध्वी एक दूसरे को काटने में और हलका दिखाने में लगे रहते हैं।

(७) कोई भैरवभवानी की मूर्ति मंदिर बनाकर पूजा आरती करवाकर अखाडा जमाते हैं और स्थानकवासी धर्म लजाते है ।और गुजरात को भी बदनाम करते है ।

(८) कई लोग परस्पर एक दूसरे संप्रदाय से कुत्ते बिल्ली जैसा वैरभाव

रखते हैं तो भी उपर से मंदिर दिगंबर संप्रदाय से शान के साथ मिलने बैठने का ढोंग दिखाते हैं ।

(९) श्रमणसंघ एक होते हुए भी समकित और बाडाबंदी को पकडे हैं ।

(१०) चौथे व्रत से भ्रष्ट साधुओ को भी रागी लोग अंतरंग पोषण देते हैं । छिपाकर शान रखते हैं ।

(११) आधाकर्मी पानी और निमंत्रण या आदेश ओर्डर पूर्वक का खाना लाकर भी कई साधु-साध्वी खाने लगे है ।

(१२) टिपन मंगवाकर विहार का खाना खाते और खोटी प्ररूपणा करते हैं । आगम में ऐसा विहार करने की मनाई है फिर भी अपने को शान के साथ धर्मप्रचार के साधु मानते हैं ।

**निबंध-६२**

## आत्म निरक्षणीय समाचारिक आगम आज्ञाएँ

### [सकारात्मक-नकारात्मक अपना चहेरा देखने सुधारने हेतु]

**साध्वाचार के सकारात्मक आगम निर्देश :-** १८ पाप त्याग, ५ महाव्रत पालन, ५ समिति पालन, ५२ अनाचार वर्जन आदि अनेक आचार निर्देश प्रसिद्ध है । फिर भी इनसे निकट सबन्ध वाले कुछ आगम विषयों का संग्रह इस प्रकार है-

**१. जो परिभवइ परं जणं, संसारे परिवत्तइ महं ।**
**अदु इंखिणिया उ पाविया, इति संखाय मुणी न मज्जइ ॥**
**-सूय.श्रु.१ अ.२, उ.२, गा.२ ।**

**अर्थ-** दूसरों की निन्दा करना, पराभव (अवहेलना आदि) करना पाप है । ऐसा करने वाला महान संसार में परिभ्रमण करता है ।

**२. न परं वइज्जासि अयं कुसीले, जेणं च कुप्पिज्ज न तं वइज्जा । दशवै. अ. १० गा. १८ ।**

**अर्थ-** यह कुशीलिया है, ऐसा नहीं बोलना और जिससे दूसरों को गुस्सा आवे वैसे निंदक शब्द भी नहीं बोलना ।

**३. निद्दं च न बहु मणिज्जा, सप्पहासं विवज्जए ।**
**मिहो कहाहिं न रमे, सज्झायम्मि रओ सया ॥- दशवै.अ.८ गा.४८**

**अर्थ-** आपस में बातें करने में आनन्द नहीं आना, स्वाध्याय में सदा लीन





रहना, निद्रा को ज्यादा आदर नहीं देना और हंसी ठट्ठा का त्याग करना ।

**४.** मुँह फाड़-फाड़कर अर्थात् आवाज करते हुए हंसने से प्रायश्चित्त आता है । **निशीथ-४ ।**

**५.** प्रतिलेखन करते हुए आपस में बातें करना नहीं, पच्चक्खाण भी कराना नहीं ।**-उत्तरा. अ. २६ गा.२६ ।**

**६.** सुबह शाम दोनों वक्त उपधि प्रतिलेखन करना । **आव. ४ ।** पात्र पुस्तक आदि किसी भी उपकरण की एक ही बार प्रतिलेखन करने का कोई भी आगम प्रमाण नहीं है । मात्र परम्परा को आगम पाठ के सामने महत्वहीन समझना चाहिये ।

**७.** चारों काल में स्वाध्याय नहीं करे तो चौमासी प्रायश्चित्त । **निशीथ. उद्दे. १९ । आव. ४- असज्झाए सज्झाइयं, सज्झाए न सज्झाइयं । काले न कओ सज्जाओ, अकाले कओ सज्झाओ ॥** तात्पर्य यह है कि सेवा कार्य के सिवाय और गुरु आज्ञा के सिवाय आगम स्वाध्याय करना प्रत्येक साधु-साध्वी को अपना आवश्यक कर्तव्य समझना चाहिए और इसका पालन न हो तो निशीथ, अनुसार चौमासी प्रायश्चित्त लेना चाहिये ।

**८.** पोरिसी आ जाने के बाद भी कालिक सूत्र की स्वाध्याय करे तो चौमासी प्रायश्चित्त । यथा- दीपावली के दिन उत्तराध्ययन की स्वाध्याय। **-निशीथ-१९ ।**

**९.** आगमोक्त क्रम के विपरीत वाचणी दे तो प्रायश्चित्त ।**-निशीथ-१९ ।**

**१०.** प्रथम आचारांग सूत्र की वाचणी दिये बिना कोई भी आगम निर्दिष्ट सूत्र की वाचणी देवे तो प्रायश्चित्त । **-निशीथ-१९ ।**

**११.** आचार्य उपाध्याय के वाचणी दिये बिना या आज्ञा दिये बिना कोई भी सूत्र पढ़े तो प्रायश्चित्त । **निशीथ- १९।**

**१२.** दस बोल युक्त भूमि हो वहीं परठना ।**-उत्तरा. अ. २४ गा. १७-१८**

**१३.** रास्ते चलता बातें नहीं करना ।- **आचारांग २-३-२ ।**

**१४. चरे मंद मणुविग्गो, अवक्खित्तेण चेयसा । दशवै. ५, १, २ ।**

उतावल से चलना, असमाधि स्थान है, -दशा.द.१ । समाज में उतावल से अर्थात् तेज चलने वाले प्रसंशा प्राप्त कर खुश होते हैं, यह अज्ञान दशा का परिणाम है । आगम में उसे पापीश्रमण कहा गया है। **उतरा. अ.१७ गा. ८ ।**

**१५.** थोड़ी सी भी कठोर भाषा बोलने का मासिक प्रायश्चित्त; निशीथ॰२। गृहस्थ या साधु को कठोर वचन अथवा उसकी कोई भी प्रकार की आशातना करना लघु चौमासिक प्रायश्चित्त का कार्य है। निशीथ-१४ व. १३, । रत्नाधिकों को कठोर वचन कहे या कोई भी प्रकार की आशातना करे तो गुरु चौमासी प्रायश्चित्त- **निशीथ- १० ।**

**१६.** दर्शनीय दृष्यों को देखने व वादिंत्र आदि के स्थलों में सुनने के लिए जावे या मकान के बाहर आकर देखे तो लघुचौमासी प्रायश्चित्त। **-निशीथ-१२ तथा १७ ।**

**१७.** रोगातंक के समय आहार का त्याग करना चाहिए । **-उत्तरा॰अ॰ २६, गा॰ ३४-३५ ।**

**१८.** जल्दी खाना, अति धीरे खाना, मुंह से आवाज करते हुए खाना- पीना, नीचे गिराते हुए खाना, स्वाद के लिए संयोग मिलाना आदि परिभोगेषणा के दोष है ।- **प्रश्न॰अ॰६ ।**

**१९.** साधु-साध्वी को तीन जाति के पात्र रखना कल्पता है ।**-ठाणांग-३** इसके सिवाय धातु हो या कांच, दांत, वस्त्र, पत्थर आदि कोई भी नहीं कल्पते हैं ।- **निशीथ- उद्दे॰११।**

**२०.** आचार्य, उपाध्याय की विशिष्ट आज्ञा बिना विगय खाने का भी प्रायश्चित्त आता है ।**-निशीथ उ॰४।**

**२१.** अन्य साधु कार्य करने वाले हों तो कोई भी सेवा कार्य सीवन आदि साध्वी से कराना नहीं कल्पता है । अन्य साध्वी कार्य करने वाली हो तो साध्वी, साधु के द्वारा अपना कोई भी कार्य नहीं करा सकती है । चाहे कपड़ा सीना हो या बाजार से लाना या आहार औषध आदि लाना देना । **-व्यवहार उद्दे॰५ ।**

**२२.** स्वपक्ष वाले के अभाव की स्थिति बिना साधु-साध्वी को आपस में आलोचना, प्रायश्चित्त करना भी नहीं कल्पता है ।**-व्यव. उ. ५ ।**

**२३.** साधु-साध्वी दोनों को एक दूसरे के उपाश्रय में जाना बैठना आदि कोई भी कार्य करना नहीं कल्पता है । वाचणी लेना देना हो व स्थानांग कथित पाँच कारण हो तो जा सकते हैं इसके सिवाय केवल दर्शन करने, सेवा(पर्युपासना)करने, इधर उधर की बातें करने आदि के लिए जाना नहीं कल्पता है ।**-बृहत्कल्प उद्दे. ३, सू. १, २ । व्यव. उ. ७ । ठाणा. अ. ५ ।**





**२४.** जो साधु मुख आदि को वीणा रूप बनावे और उनसे वीणा रूप में आवाज निकाले तो प्रायश्चित्त आता है ।**-निशीथ- ५ ।**

**२५.** किसी के दीक्षार्थी या साधु के भाव पलटाने व अपना बनाने का गुरू चौमासी प्रायश्चित्त । **-निशीथ- १० ।**

**२६.** गृहस्थ का औषध उपचार करे या उसे बतावे तो प्रायश्चित्त । **-निशीथ- १२ ।**

**२७.** विहार आदि में गृहस्थ से भण्डोपकरण उठवावे या गृहस्थ के घर पर रखे तो प्रायश्चित्त ।**-निशीथ- १२ ।**

**२८.** ४० वर्ष से कम उम्र वाले तरुण, नवदीक्षित और बाल मुनि इन साधुओं को बिना आचार्य उपाध्याय के रहना नहीं कल्पता है । क्यों कि ये श्रमण दो से संग्रहित होने पर ही समाधिवन्त रह सकते है अर्थात् आचार्य और उपाध्याय दो की इन पर संभाल रहना आवश्यक है।**व्य॰उद्दे॰३ ।**

इन तीनों को आचार्य उपाध्याय से युक्त ही होना सूत्र में कहा है। अत: मात्र स्थविर की नेश्राय से या केवल एक पदवीधर की निश्राय से इनका सदा के लिए रहना आगम विपरीत है । अर्थात् किसी भी विशाल गच्छ को आचार्य उपाध्याय व प्रवर्तिनी की पद व्यवस्था के बिना लम्बे समय तक रहना नहीं कल्पता है । **-व्यवहार सूत्र, उद्दे. ३ ।**

**२९.** संघाड़े का मुखिया बनकर विचरने वाले में ६ गुण होने चाहिए ।- **ठाणा.६ ।** उसमें एक यह भी है कि बहुश्रुत होना चाहिए । जघन्य- सम्पूर्ण आचारांग एवं निशीथ सूत्र अर्थ सहित कंठस्थ धारण करने वाला बहुश्रुत कहलाता है।**-निशीथ॰ चूर्णि, गा-४०४।-बृहकल्प भा॰ गा॰ ६९३**

**३०.** अपने परिवारिक कुलों में "बहुश्रुत" ही गोचरी जा सकता है अन्य नहीं। **-व्यव॰ ६ ।** बड़े आज्ञा दे दे तो भी अकेले नहीं जा सकता। साथ में या स्वयं बहुश्रुत होना चाहिए ।

**३१.** योग्य अयोग्य सबको एक साथ वाँचणी देना प्रायश्चित्त का कारण है । - **निशीथ-१९ ।**

**३२. प्रतिक्रमण- तच्चिते, तम्मणे, तल्लेसे, तदज्झवसिए, तत्तिव्वज्झवसाणे, तदट्ठोवउत्ते, तदप्पियकरणे, तब्भावणा भाविए, अणत्थ कत्थई मणं अकरेमाणे,** इस तरह एकाग्रचित्त होकर करने से भाव प्रतिक्रमण होता है अन्यथा नींद और बातों में या अस्थिर चित्त में द्रव्य प्रतिक्रमण होता

है।-**अनुयोगद्वार सूत्र का २७वाँ सूत्र ।** कहा भी है- द्रव्य आवश्यक बहु किया गया व्यर्थ सहु । अनुयोग द्वार देख जाओ रे ॥भवि भाव आवश्यक अति सुखदाई रे ।टेर॥

अतः प्रक्रिमण में नींद और बातें करना क्षम्य नहीं हो सकता है।

**३३.** आहार की कोई वस्तु भूमि पर या आसन पर रखे तो प्रायश्चित्त। **निशीथ.उद्दे.१६।**

**३४.** मकान बनाने के कार्य में साधु को भाग नहीं लेना चाहिए । - **उत्तरा. अ.३५, गा. ३-९ ।**

**३५.** साधु कोई भी वस्तु के क्रय विक्रय की प्रवृत्ति करता है तो वह वास्तविक साधु नहीं होता है । क्रय विक्रय महा दोषकारी है । - **उत्तरा. अ. ३५, गा. १३, १४, १५ । आचा. १, २, ५ ।**

**३६.** आहार बनने बनवाने में भाग नहीं लेना, अग्नि का आरंभ बहुत प्राणी नाशक है । **-उत्तरा. अ. ३५, गा.१०, ११, १२ ।**

**३७. विभूसावत्तियं भिक्खू, कम्मं बंधइ चिक्कणं ।**
**संसार सायरे घोरे, जेणं पडइ दुरुत्तरे ॥ -दशवै. अ. ६ गाथा ६६ ।**

अत्यंत आवश्यक स्वास्थ्य दृष्टि से एवं असहनशीलता के विचार से की जाने वाली प्रवृति को विभूषा नहीं कहा जा सकता। अच्छा दिखने की भावना व टीप टाप की वृति को विभूषा का प्रतीक समझना चाहिए । **गाहावईणामेगे सूई समायारा भवइ भिक्खू य असिणाणए, मोयसमायरे से, तग्गंधे दुग्गंधे, पडिकूले पडिलोमे यावि भवइ ।-आचा. २, २, २।** ऐसे आगम पाठ, अच्छा दिखने की वृति के पक्षकार नहीं है । -उत्तराध्ययन अ.२, गाथा. ३७ में **जाव शरीर भेओति, जलं काएण धारए** कथन से मैल परीषह सहने की विशिष्ट प्रेरणा है ।

**३८. सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं॥ -आव.** । अठारह पाप का करने कराने व भला जानने का जीवन पर्यन्त त्याग होता है । क्रोध करना, झूठ-कपट करना व निन्दा करना एवं आपस में कलह करना ये सभी स्वतंत्र पाप है । इनका सेवन करके जो साधु प्रायश्चित्त आलोचना भी नहीं करते उपेक्षाभाव से शुद्धि करने में लापरवाही चलाते हैं वे शिथिलाचारी की कोटि में जाते हैं ।

**३९.** गृहस्थ को बैठो, आवो, यह करो, सोवो, खड़े रहो, चले जावो आदि बोलना भिक्षु को नहीं कल्पता है । **-दशवै. अ. ७, गा. ४७ ।**





**४०.** मार्ग में हरी-घास, बीज, अनाज आदि कोई भी सचित चीजें हो तो अन्य मार्ग होते हुए उस दोष युक्त मार्ग से नहीं जाना और अन्य मार्ग न हो तो पांव को आड़ा टेड़ा या पंजों के बल करके पाँव को संभाल-संभाल कर यथाशक्य बचाव करते हुए चलना अर्थात् पूरे पांव को धरते हुए आराम से नहीं चलना । **-आचा. २, अ. ३।**

**४१.** एषणा के ४२ दोष टालकर आहार, वस्त्र पात्र, शय्या आदि ग्रहण करना चाहिए । **उत्तरा. अ. २४ गा. ११ ।** ये दोष युक्त ग्रहण करने पर गुरूचौमासी, गुरूमासी व लघुचौमासी आदि प्रायश्चित्त आते हैं। **निशीथ. उद्दे.१, १०, १३, १४ आदि ।**

**४२.** खुले मुंह से बोलना सावद्य भाषा है अर्थात् मुंहपति से मुँह ढके बिना किंचित भी नहीं बोलना । **भग. श. १६ उद्दे.२ ।**

***इन आगमोक्त निर्देशों के तथा और भी ऐसी अनेक आज्ञाओं के विपरीत यदि अपनी प्रवृत्ति है और प्रायश्चित्त शुद्धि भी नहीं की जाती है तो ऐसी स्थिति में अपने को शिथिलाचारी नहीं मानकर शुद्धाचारी मानना, अपनी आत्मा को धोखा देना होता है । यदि शिथिलाचारी का कलंक पसंद न हो तो उपरोक्त आगम निर्देशों के अनुसार चलने की और अशुद्ध प्रवृति या परम्परा को छोड़ने की सरलता व ईमानदारी धारण करनी चाहिए ।***

## आगम निर्दिष्ट आत्म निरक्षणीय दूषित प्रवृत्तियाँ :-

**(१)** कारण अकारण का विचार किए बिना, प्रवृति रूप तृतीय प्रहर के अतिरिक्त समय में (चतुर्थ प्रहर) आहार लाना या खाना। **-उत्त. २६ ।**

**(२)** अकारण विगय युक्त आहार करना अथवा आचार्य आदि की आज्ञा बिना विगय खाना । **-निशी. ४ ।**

**(३)** मार्ग में चलते समय किसी से वार्तालाप करना । **-आचा. श्रु.२, अ. ३ ।**

**(४)** कीड़ियों आदि जीवों से युक्त अर्थात् जीवों की अधिकता वाले उपाश्रय में ठहरना । **-आचा. श्रु.२, अ. २ ।**

**(५)** मल-मूत्र परठने की भूमि से रहित उपाश्रयों में ठहरना । **-आचा. श्रु.२, अ.२, उद्दे.२, दशवै. ८ ।**

**(६)** कोई आवे नहीं, कोई देखे नहीं ऐसे स्थानों के बिना एवं निषिद्ध स्थलों में मल-मूत्रादि का परित्याग करना ।**-उत्त.२४;निशीथ.३,१५।**

(७) पुस्तकों और शास्त्रादि को पास में रखना और उन उपकरणों की उभय काल प्रतिलेखन नहीं करना । **-निशी॰ उद्दे॰२ तथा आव॰ अध्य॰४।**

(८) सामान्य रूप से कोई भी लेखन कार्य करना । पुस्तक प्रकाशन करवाना, या प्रकाशन कार्य में भाग लेना अर्थात् संशोधन भूल सुधार करना या संपादन करना, प्रकट या गुप्त रूप से प्रेरणा करना ।

(९) आपरेशन करवाना, सावद्य चिकित्सा एवं गृहस्थ से सेवा लेना । **-आचा॰ श्रु॰२ ,अ॰ १३, उत्त॰२, गा॰ ३२ ।**

(१०) गृहस्थों को किसी भी प्रयोजन से आने-जाने तथा बैठने के लिये या कोई भी कार्य करने का कहना या प्रेरणा करना। **-दश॰७, गा॰४७ ।**

(११) अल्प वर्षा में या संपातिम जीवों के गिरने के समय गोचरी आदि जाना । **-दशवै॰५ ।**

(१२) जल्दी-जल्दी चलना या पूर्ण रूप से अप्रमार्जित भूमि में चलना। **-दशा॰१, दशवै॰ ५ ।**

(१३) सुख पूर्वक ग्रामानुग्राम नहीं विचर कर उग्र(लम्बे-लम्बे) विहार करना । **-भगवती आदि सूत्र ।**

(१४) आधाकर्मी या मिश्र जात दोष युक्त गर्म पानी या धोवण पानी ग्रहण करना । **-आचा॰श्रु॰२, अ॰१ ।**

(१५) क्षुधा आदि कारण का विचार किए बिना आहार करना एवं रोग-आतंक आदि कारण होने पर भी आहार त्याग नहीं करना, किन्तु औषध उपचार करना, डाक्टरों-वैद्यों की भीड़ इकट्ठी करना । **-उत्त॰२६**

(१६) सभी उपकरणों की या पात्रोंऔर पुस्तकों की दोनों समय प्रतिलेखन नहीं करना या प्रतिलेखन प्रमार्जन विधि से नहीं करना ।**-आव॰४** ।

(१७) परपरिवाद-दूसरों का अवगुण अपवाद निंदा करना अर्थात् १५वाँ पाप का सेवन करना । किसी का तिरस्कार, बहिष्कार, इन्सल्ट करना, झूठे आक्षेप लगाना । **-सूय॰ १-२-२ ।**

(१८) किसी भी साधु-साध्वी या गृहस्थ या किसी के प्रति अशुभ मन, अप्रशस्त संकल्प रखना, अशुभ वचन प्रयोग करना अर्थात् प्रथम महाव्रत की दूसरी, तीसरी भावना को दूषित करना । किसी को गिराने के लिए या किसी की हल्की लगाने रूप प्रवृति करना । **-उत्त॰ २४ गुप्ति ।**

(१९) किसी भी साधु श्रावक आदि के प्रति रंज भाव, अमित्र भाव अथवा शत्रु भाव रखना । **-भग॰श॰ १३, उद्दे॰ ६ अभीचि कुमार ।**





(२०) आचारांग एवं निशीथ सूत्र अर्थ सहित कण्ठस्थ धारण किए बिना **सिंघाड़ा प्रमुख बनना** या जघन्य बहुश्रुत बने बिना ही **आचार्य आदि कोई भी पद** धारण कर लेना । **-व्यव॰ ३ ।**

(२१) आचार्य-उपाध्याय दो पदवीधर के नेतृत्व बिना किसी भी तरुण या नव दीक्षित साधु को या उनसे युक्त गच्छ को, रहना आगम विरुद्ध है । फिर भी बिना दो पदों के विशाल गच्छ को चलाना और आचार्य उपाध्याय तथा प्रवर्तिनी तीन पदवीधरों के नेतृत्व बिना साध्वियों का रहना ।**-व्यव॰ ४**

(२२) फल मेवे आदि के लिए निमंत्रित समय में या गोचरी के अतिरिक्त समय में जाना ।

(२३) तपस्या नहीं करते हुए भी सदा विगय सेवन करना ।**- उत्तरा॰ १७ ।**

(२४) चाय आदि पदार्थ का किसी भी समय के लिए व्यसन होना ।

(२५) प्रतिक्रमण एकाग्रचित से स्फूर्ति युक्त एवं भावपूर्वक नहीं करना, किन्तु निद्रा लेना(ऊँघना) एवं बातें करना । **-अनुयोग द्वार सू॰ २७।**

(२६) योग्य-अयोग्य का विवेक किए बिना सबको एक साथ वाँचनी देना । **-निशीथ- १६ ।**

(२७) अपने पारिवारिक कुलों में बहुश्रुत ही गोचरी जा सकता, अबहुश्रुत साधु-साध्वी आज्ञा से भी नहीं जा सकते । फिर भी अबहुश्रुत को भेजना या जाना । **-व्यव॰ ६ ।**

(२८) उपरोक्त सत्ताइस दूषित आचार वालों को शिथिलाचारी न मानना या इनके साथ रहना एवं वंदन, आहार आदि सम्बन्ध रखना। **-निशी॰ १६।**

***यदि शुद्धाचारी कहे जाने वाले भी इनमें से कई दूषित प्रवृत्तियों को करके प्रायश्चित्त से शुद्धि नहीं करते हैं तो वे भी आगम समाचारी में दोष लगाने वाले होने से उपरोक्त परिभाषाओं के अनुसार "अवसन्न"(ओसन्ना) शिथिलाचारी में समाविष्ट होते है । इस स्थिति में वे भी दूषित आचार वालों की दूसरी श्रेणी में आते हैं ।***

***इन कारणों से उनको भी परस्पर दूसरी तीसरी श्रेणी वालों को गीतार्थ के निर्णय से वंदन आदि करने में प्रायश्चित्त नहीं आता है । (पहेली श्रेणी में यथाच्छंद, दूसरी श्रेणी में पासत्थादि चार, तीसरी श्रेणी में शेष काहिया आदि पाँच)***

सम्भवत: इसी अपेक्षा को लेकर गुजरात की विभिन्न समाचारी वाली संप्रदायों में आज भी वंदन आदि व्यवहार किये जाते हैं । जैन समाज

के प्रेम मय वातावरण के लिये अन्य प्रान्तों वाले श्रमणों को भी इस पर गहरा विचार चिंतन कर कोई उदार निर्णय लेना चाहिए ।

जिससे जैन समाज में फिरका परस्ती, छींटाकसी, ईर्ष्या, द्वेष, निंदा प्रवृति, आपसी बढ़ती हुई दूरियाँ एवं मनोमालिन्य वृद्धि आदि अवगुणों में सुधार हो सके । साथ ही प्रेम, एकता, सहृदयता, भावों की शुद्धि, शांत-सुंदर वातावरण बन कर धर्म साधकों के आत्म गुणों का विकास हो सके ।

भिन्न-भिन्न गच्छ एवं विभिन्न समाचारी वाले आज भी अपनी-अपनी इच्छा होने पर आपस में मैत्री सम्बन्ध और वंदन व्यवहार रख लेते हैं । यह व्यवहार भी उक्त निर्णय को पुष्ट करने वाला है ।

अपने आपको शुद्धाचारी मानने वाले श्रमण किसी प्रकार की कलुषता या अन्य वातावरण के कारण अपनी इच्छा होने मात्र से ही पुनः वंदन व्यवहार बंद कर देते हैं । जब कि आचार तो उन दोनों का पहले पीछे वही होता है ।

इस प्रकार वर्तमान में वंदन व्यवहार का निर्णय आगम आशय की ओट में कषाओं एवं इच्छाओं पर मुख्य रूप से आधारित है । **यथा-** स्वतंत्र संप्रदायों वाले परस्पर समय समय पर वंदन व्यवहार कर लेते हैं और कभी तोड़ भी देते हैं ।

पूज्य श्रमणश्रेष्ठ बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म॰सा॰ श्रमण संघ के आचार्य सम्राट को सविधि वंदन कर लेते हैं एवं श्रुतधर श्री प्रकाशमुनि जी श्रमण संघ के प्रमुख श्रमण को अभिवादन वंदन कर सकते हैं और उन्हीं के श्रमण श्रावक उन्हें अवंदनीय कह देते हैं, यह एक अविचारकता है ।

**सार-** ये उक्त विचित्र व्यवहार मान कषाय और संकीर्ण मानस एवं स्वेच्छाओं के परिणाम है । दिखावा और बहाना आचार का किया जाता है किंतु एक सरीखे आचार वालों में मनमुटाव या गच्छभेद हो जाय तो दोनों का आचार एक होने पर भी वंदन व्यवहार नहीं करते हैं तब उनके आचार सिद्धांत के बहाने की खुले रूप में पोल खुल जाती है कि ये अपने कषाय मात्र के हीनाधिक होने के कारण ही वंदन व्यवहार करते रहते है और छोडते रहते है यथा- ज्ञानगच्छ और समर्थगच्छ आदि आदि गच्छ । निर्ग्रन्थ प्रवचन-जिनाज्ञा की आराधना के लिए तो उक्त समन्वयात्मक सूचनाओं की ही विचारणा करके परिपालना करनी आवश्यक होती है ।





**निबंध-६३**

## एक चर्या : एकल विहार से मुक्ति

**एगत्तमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोखो, न मुसं ति पास ।**
**एस पमोक्खे अमुसे वरे वि, अकोहणे सच्च रए तवसी ॥**

**अर्थ :-** (समूह में आधाकर्म आदि दोषों की शुद्धि न हो सके तो) अकेले रहना भी स्वीकार कर लेना चाहिए । ऐसा करने से भी मोक्ष हो सकता है, इसे मिथ्या मत समझो । ***-सूत्रकृतांग सूत्र अ॰१०गा॰१२।***

साधु को अकेले विचरने का एकांत निषेध किसी भी शास्त्र में नही है । अपितु अकेले विचरने की प्रेरणा वाले अनेक वर्णन आगमों में है । आगम, भाष्य, टीका आदि के अनेकों प्रमाणों का संकलन यहां किया गया है कृपया ध्यान से पढें ।

**तीन विभागों मे एकल विहार के आगम प्रमाण :-**

१०+१५+७=३२

**एकल विहार-**

जैनागमों में एवं व्याख्या ग्रन्थों मे अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न रूप से एकल विहार के सम्बन्ध में वर्णन उपलब्ध है ।यह आगम वर्णित एकल विहार मुख्य दो विभागों में विभाजित किया जा सकता है ।

(१) एकल विहार पडिमा (२) एकल विहार चर्या

अथवा

(१) अपरिस्थितिक एकल विहार (विशिष्ट साधना रूप)

(२) सपरिस्थितिक एकल विहार (कर्म संयोगजन्य)

**(१) अपरिस्थितिक एकल विहार :-** आभ्यतर या बाह्य कोई भी परिस्थिति के न होते हुए केवल विशेष कर्म निर्जरा के लिये जो आगम वर्णित विशिष्ट तप साधना-समाचारी पालन करने के लिये गुरु या गच्छाधिपति की आज्ञा लेकर सन्मान पूर्वक गच्छ निर्गत होकर विचरण करता है वह अपरिस्थितिक एकल विहार करने वाला होता है ।

**अपरिस्थितिक एकल विहार संबंधी आगम स्थल :-**

**१.** दशा.द. ७. में-ग्यारह भिक्षु पडिमा का वर्णन है ।

**२.** व्यव. उ. ५ तथा बृहत्कल्प. उ. ६. में-जिनकल्प का वर्णन है ।

**३.** ठाणांग.ठा. ३ में-एकल विहार के मनोरथ का वर्णन है ।

**४.** ठाणांग.ठा. ८ में-एकल विहार की गुण सम्पन्नता का वर्णन है।
**५.** सूय. श्रु. १ अ. २. उ.२ में-अकेले विचरण एवं स्थान, शय्या, आसन से समाधि में रहने का कथन है ।
**६.** उतरा. अ. २९ में-संभोग पच्चक्खाण से दूसरी सुख समाधि की प्राप्ति का वर्णन है तथा यहीं सहाय पच्चक्खाण करने से संवर, संयम, समाधि की वृद्धि एवं कलह आदि की अल्पता का वर्णन है।
**७.** आचा. श्रु. १ अ. ८ उ. ४-५-६-७ में- वस्त्र सम्बन्धी विशिष्ट अभिग्रहधारी साधु का वर्णन है तथा सेवा करने, कराने या न करने, न कराने सम्बन्धी चौभंगी युक्त वर्णन है ।
**८.** दशा.द. ४. में- शिष्य को एकल विहार समाचारी की शिक्षा सिखाने से आचार्य को शिष्य के ऋण से उऋण होने का वर्णन है ।
**९.** उववाई सूत्र एवं भगवती सूत्र श. २५ उ. ७ में- तप के वर्णन में व्युत्सर्ग नामक आभ्यन्तर तप में गण त्यागना तप कहा है।
**१०.** अनेक आगमों में वर्णित विशिष्ट अभिग्रह एवं मोय-पडिमाएं आदि अकेले रहकर की जाती है ।

ये अपरिस्थितिक एकल विहार सम्बन्धी आगम स्थल है ।

**(२) सपरिस्थितिक एकल विहार :-** गच्छ सम्बन्धी, शरीर सम्बन्धी अथवा आत्म समाधि सम्बन्धी किसी परिस्थिति से गच्छ का त्याग करना पड़े एवं उस परिस्थिति के अनुकूल कोई साथ न मिले तो अपनी परिस्थिति की जानकारी देते हुए गच्छ त्याग कर जो अकेले विचरण करता है वह सपरिस्थितिक एकल विहारी या एकल विहार चर्या वाला भिक्षु होता है।

**सपरिस्थितिक एकल विहार संबंधी आगम स्थल :-**

**१.** ठाणांग ठा. ३. में- आत्म सुरक्षा के तीन स्थान में अन्तिम अवस्था अपने को (गच्छ से) अलग कर लेने की बताई है ।
**२.** उत्तरा. अ. २७ में-शिष्यों से असमाधि ही असमाधि प्राप्त होने पर गर्गाचार्य के एकल विहार एवं मुक्तिगमन का वर्णन है ।
**३.** उत्तरा अ. ३२ में-समाधि के इच्छुक भिक्षु को योग्य साथी न मिले, पुण्याशों की अल्पता के कारण जिन शासन में अनेकों होते हुए भी उसे नहीं मिले, (जैसे कि उपरोक्त गर्गाचार्य को एक भी शिष्य न मिला) तो अकेले विचरण की आज्ञा एवं शिक्षा दी गई है ।





**४.** दशवै॰ चू॰ २ में- पूरे इस अध्ययन का नाम ही विविक्तचर्या रखा गया है, इसकी दसवीं गाथा में योग्य साथी न मिलने से अकेले विचरण की आज्ञा दी गई है तथा अनेक प्रकार की सावधानियाँ रखने की शिक्षा अध्ययन समाप्ति तक दी गई है । चूर्णीकार श्री अगस्त्यसिंह सूरि ने भी कहा है कि इन गाथाओं में एकल विहार में किस तरह रहना, इस विषय में सूत्रकार कहते है । ये चूर्णिकार श्री अगस्त्यसिंह सूरि आज से १३०० वर्ष से भी अधिक प्राचीन है ।

इस प्रकार की परिस्थितिक एकल विहारचर्या को नवपूर्वी के लिए कहना अज्ञान दशा है, नवपूर्वी तो बिना किसी परिस्थिति के केवल तप साधना के लिए ही एकल विहार करते हैं ।
**५.** आचा. श्रु. १ अ. ६ उ. २ में-शुद्ध एषणा एवं सर्वेषणा की अभिरुचि से एकल विचारचर्या में आराधना करने वाले का वर्णन किया गया है।
**६.** सूय. श्रु. १ अ. १० गा. ११-१२ में- आधाकर्म दोषयुक्त आहार की चाहना करने का तथा आधाकर्म दोष सेवी के साथ रहने का निषेध करते हुए शोक रहित होकर कर्म क्षय करने की प्रेरणा के साथ एकलविहार को स्वीकार करने की प्रेरणा की गई है तथा यह भी आश्वासन दिया गया है कि "एकल विहार" से भी मुक्ति हो सकती है, यह विश्वास रखो, झूठ मत समझो, यदि जो एकाकी भिक्षु क्रोधादि कषाय न करे एवं संयम से सत्यनिष्ठ रहे ।
**७.** व्यव. उ. ६. में- कैसे उपाश्रय में एकेले भिक्षु का किस तरह रहना, यह वर्णन है तथा एकल विहारी को बहुश्रुत होने का निर्देश भी है ।
**८.** व्यव. उ. ८ में-सपरिस्थितिक एकल विहारी साधु की वृद्धावस्था युक्त वर्णन है, उसके छत्र, लाठी, चर्म, चर्मच्छेदनक आदि उपकरणों का कथन है । यहाँ यह विधान किया गया है कि वह भिक्षु अपने ये उक्त अतिरिक्त उपकरणों को साथ लेकर भिक्षा आदि में न जा सके तो किसी गृहस्थ को उनकी सुरक्षा का जुम्मा सम्भलाकर जावे एवं पुनः आने पर उसे सूचित करे । जिनकल्पी की यह स्थिति नहीं होती हैं वे तो एकान्त उत्सर्ग विधि से एवं अल्प, अल्पतम उपधि से निर्वाह करते और किसी के सहाय की वांछा भी न करते हुए संयम तप की आराधना करते हैं ।
९. आचा. श्रु. १ अ. ५ उ. १ में-अपनी प्रकृति की खराबी से अनेक दूषित आचरणों युक्त जीवन जीने वाले एकल विहारी का वर्णन है।

**१०.** बृहत्कल्प उ. ४ में- यथायोग्य आगमोक्त प्रायश्चित्त स्वीकार न करने वाले को गच्छ से अलग कर देने का विधान है । तदनुसार अन्य भी अपराध करने या अनुशासन स्वीकार न करने पर गच्छ से निकाल दिया जा सकता है । वह असहाय होकर एकल विहारचर्चा भी धारण कर सकता है ।

व्यव. उ. २ में- किसी भी परिस्थिति में बीमार साधू को निकालने का स्पष्ट निषेध किया गया है, तदनुसार अतिवृद्ध बाल एवं नवदीक्षित आदि अशक्त, असमर्थ साधु को निकालना अर्थात् अकेले छोड़ देना निषिद्ध समझना चाहिए ।

**११.** ठाणा. ठा. ५ में-गण परित्याग करने के अनेक कारण दिये है, जो गच्छ की अव्यवस्था सम्बन्धी एवं संयम विधियों की यथावत अपालना सम्बन्धी है, उन कारणों से गण त्याग करने की आज्ञा दी गई है । तथा- बृहत्कल्प. उ. ४में- संयम गुणों की वृद्धि हो ऐसे गच्छ में मिलने की आज्ञा है किन्तु संयम गुणों की स्वगच्छ की अपेक्षा हानि होती हो तो वैसे गच्छ में जाने का स्पष्ट निषेध है एवं जाने पर उसका **निशीथ- उ. १६** में चौमासी प्रायश्चित्त कहा गया है ।

**१२.** व्यव. उ. १ में-आचार्य, उपाध्याय, गणावछेदक एवं सामान्य साधु परिस्थितिक एकल विहारचर्या त्याग कर पुनः गच्छ में आना चाहे एवं पार्श्वस्थ अवसन्न कुशील आदि भी अपनी उस अवस्था का त्याग कर पुनः गच्छ में आना चाहे तो इन सब को गच्छ में लेने का विधान है । लेने के पूर्व गच्छ व्यवस्था के लिए प्रशस्त या अप्रशस्त सभी एकल विहारचर्या वालों के लिए प्रायश्चित्त तप या छेद देकर लेने का वर्णन है ।

पार्श्वस्थादि के लिए एक शर्त और भी कही है कि यदि उनमें कुछ संयम अवस्था शेष रही हो तो तप या छेद प्रायश्चित्त देकर लेना। इसका तात्पर्य यह है कि संयम शेष न हो तो तप या छेद प्रायश्चित्त देकर भी नहीं लेना अर्थात् उचित लगे तो पुनः दीक्षा देकर भी नहीं लिया जा सकता है उसे नई दीक्षा दी जाती है । किन्तु निकेवल एकल विहारी के लिये यह शर्त नहीं है ।

यहाँ एकल विहारचर्या वालों के लिये **पडिमा** शब्द लगाया गया है किन्तु यह शैली की विचित्रता से ही समझना चाहिए, अपरिस्थितिक एकल विहार पडिमा वाले नहीं समझना । क्योंकि वे तो आज्ञा पूर्वक





अभ्यास एवं परीक्षा पूर्वक पडिमा स्वीकार करते हैं बीच में छोड़ कर आने की इच्छा का वहाँ प्रश्न ही नहीं होता एवं पडिमाओ को पूर्ण करके आने पर आदर पूर्वक गच्छ निर्गत से गच्छ सहगत किया जाता है । उसके लिये छेद या तप प्रायश्चित की भी आवश्यकता नहीं होती । अतः यह विधान भी सपरिस्थितिक एकल विहारचर्या सम्बन्धी है । तथा गच्छ में अव्यवस्था न हो, इसके लिये प्रायश्चित्त है । जो गीतार्थ, अगीतार्थ, प्रशस्तकारणक अप्रशस्तकारणक आदि विकल्पों से तप या छेदयुक्त भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है ।

**१३.** व्यव. उ. १ परिहार तप प्रायश्चित्त वहन करने वाले भिक्षु का अकेले सेवा में जाने का वर्णन है । यह भी साधु का परिस्थितिक एकल विहार है । किन्तु यह गच्छ निर्गत नहीं है अपितु गच्छ सेवा कार्य हेतुक है । इससे अन्य साधुओं का भी सेवा में या गच्छ आज्ञा से कहीं अकेले जाना या रहना समझा जाता है । इस एकल विहार में भिक्षु सैकड़ों मील भी जा सकता है तथा अनेक दिन या महिना भी रह सकता है ।

**१४.** व्यव. उ. १ में सपरिस्थितिक एकल विहारचर्या वाले का ग्रामादि के बाहर अरिहंत सिद्धों की साक्षी से आलोचना करने का वर्णन है ।

गच्छगत साधु के लिये यह स्थिति नहीं होती है । वहाँ तो गुरु, आचार्य, उपाध्याय स्थविर आदि अनेक बहुश्रुत आलोचना सुनने योग्य होते हैं ।

इन सब एकल विहारचर्या के आगम स्थलों का सारांश यह है कि प्रशस्त परिस्थिति में एकल विहारचर्या स्वीकार कर प्रशस्त संयम चर्या में ही विचरण करने वाला पुनः गच्छ में न आना चाहे तो उसे एकल विहारचर्चा का कोई प्रायश्चित्त नहीं है एवं वह संयम की आराधना कर सकता है । गच्छ में आना चाहे तो प्रायश्चित्त लेकर गच्छ में आकर भी आराधना कर सकता है ।

**इन सपरिस्थितिक विहारचर्या के लिये पूर्व ज्ञान या तीन संहनन की प्ररूपणा करना उचित नहीं हो सकती है । किन्तु संयम रुचि, तीन वर्ष की दीक्षा पर्याय, ४०वर्ष की वय का होना तो सूत्र प्रमाण से आवश्यक है ।**

अप्रशस्त कारणों वाला और अप्रशस्त संयम चर्चा वाला एकल विहारी पार्श्वस्थ आदि की कोटि को प्राप्त करता है एवं संयम का विराधक होता है ।

**१५.** ठाणांग ठाणा. ७ में-सात कारण गणापक्रमण के दिए हैं, जिसमें सातवाँ एकल विहार प्रतिज्ञा धारण करने के संकल्प का कहा है । यहाँ गणापत्रक्रमण का कथन होने से यह एकल विहार सपरिस्थितिक है । अपरिस्थितिक एकल विहार रुप प्रतिमा धारण करने को गणापक्रमण नहीं कहा जाता । वे तो आचार्य निश्रा एवं सम्पदा में ही गिने जाते हैं ।

## (३) एकल विहार सम्बन्धी अन्य विधान :-

**१.** आचा. श्रु. १ अ॰ ५ उ. ४ में **अव्यक्त** एवं अशान्त स्वभाव वाले को एकल विहार का निषेध किया है एवं उसका अहित-कारक परिणाम बताया है ।ज्ञान से-बहुश्रुत न हो वह **अव्यक्त** है । वय से-सोलह वर्ष से पूर्व **अव्यक्त** है । संयम पर्याय से-तीन वर्ष के पूर्व **अव्यक्त** है ।

**२.** सुयग. श्रु. १ अ. १४ में- वर्णन है कि पंख आने के पूर्व पक्षी की घोंसले में रहने पर ही सुरक्षा है । उसी तरह उक्त अव्यक्त अवस्था तक गुरुकुल वास ही श्रेयस्कर है, न कि स्वतन्त्र विचरण या एकल विहारचर्या।

**३.** व्यव. उ. ३ में- नव दीक्षित(३ वर्ष), बालक(१६ वर्ष) एवं तरुण (४० वर्ष) वय के भिक्षुओं को आचार्य, उपाध्याय के नेतृत्व बिना रहने का एकांत निषेध है । यहां यह भी कहा गया है कि उक्त तीनों अवस्था के साधु सदा दो के नेतृत्व में ही रहते हैं। अत: इस सूत्र से इन तीन अवस्था वालों को गच्छ मुक्त एकल विहारचर्या धारणा करना स्पष्टत: निषिद्ध है । कोई भी परिस्थिति हो, इस अवस्था तक धैर्य के साथ गच्छवास ही आवश्यक होता है।

यह भी इस सूत्र से स्पष्ट है कि आचार्य उपाध्याय के बिना किसी गच्छ को रहना भी आगमोचित नहीं कहा जा सकता है । क्योंकि इस सूत्र में प्रश्न उठाकर उसका उत्तर दिया गया है कि श्रमण निर्ग्रन्थ सदा दो के नेतृत्व से ही रहते हैं-(१) आचार्य (२) उपाध्याय अर्थात् कम से कम दो पदवीधरों की निश्रा बिना किसी साधु का या किसी गच्छ का रहना सर्वथा अनुचित है एवं आगम विरुद्ध भी है। आपवादिक परिस्थिति से कभी किसी को रहना पड़ जाय तो उसे अल्पकालीन ही समझना चाहिए । **अल्पकालीन अपवाद को सदा के लिए उत्सर्ग मार्ग बना लेना पाप है और उसकी पुष्टी करना महापाप है ।**

विशाल गच्छ के लिए व्यवहार भाष्य उद्दे॰ एक में पाँच पदवीधर होना आवश्यक कहा है यथा- १. आचार्य २. उपाध्याय ३. प्रवर्तक





४. गणावच्छेदक ५. स्थविर । यदि इनमें से कोई भी पदवीधर न हो तो उस गण का त्याग कर देने का वहाँ उल्लेख किया है तथा वहाँ रहने से होने वाली असमाधि की अवस्थाओं का दृष्टांत पूर्वक विस्तृत विवेचन किया है ।

उचित भी यही है कि प्रत्येक गच्छ आचार्य, उपाध्याय युक्त हो, तभी परमेष्ठी मंत्र पूर्ण रहता है । उक्त पदों के लिये शास्त्राज्ञा स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में पदों को हानिप्रद मान कर बिना पद के गच्छ चलाना उचित एवं शास्त्रोक्त नहीं हो सकता अपितु तीर्थकर गणधरों की स्पष्टत: आशातना करना होता है ।

(४) व्यव. उ. ४ तथा ५ में- आचार्य, उपाध्याय एवं प्रवतिनी को अकेले विहार करने का स्पष्ट निषेध है । बृहत्कल्प उ. ५ में-साध्वी के अकेले गोचरी आदि किसी भी कार्य से जाने का स्पष्ट निषेध है।

इन स्थलों में साधु साध्वी दोनों के कल्प, अकल्पों का वर्णन होते हुए भी यहाँ सामान्य साधु के अकेले विहार आदि का निषेध नहीं किया गया है ।

बृहत्कल्प भाष्य गाथा ६६० में-गीतार्थ का स्वरूप बताते हुए आगे कहा गया है कि गीतार्थ का एकाकी विहार हो सकता है अन्य गीतार्थ, अगीतार्थ सभी गीतार्थ आचार्य एवं उपाध्याय के नेतृत्व में ही रहते हैं ।

(६) व्यवहार भाष्य उ. १ में- एकाकी विहारचर्या के कारण बताये हैं यथा- १. रोगांतक(मरीमारी) २. दुर्भिक्ष ३. राजद्वेष ४. अन्य भय ५. ग्लानता-शारीरिक या मानसिक ६. ज्ञान, दर्शन, एवं चारित्र की वृद्धि हेतु ७. साथी के काल गत होने से ८. आज्ञा से भेजने पर ।

(७) ओधनिर्युक्ति में एकलविहारचर्या के दो प्रकार कहे है- १. सकारण २. अकारण ।

(१) गीतार्थ का ज्ञान दर्शन चारित्र की वृद्धि के लिये या आगमोक्त अन्य परिस्थितिओं से किया गया एकल विहार **सकारण** कहा है ।

(२) अनुशासन से घबराकर, स्थान, क्षेत्र आहार, वस्त्र आदि मनोनुकूल प्राप्त करने हेतु एवं अनेक स्थल देखने हेतु किया गया गीतार्थ का एकल विहार भी **अकारण** है तथा सभी अगीतार्थों का एकलविहार तो **अकारण** विहार ही है अर्थात् अगीतार्थों को एकल विहार कल्पता ही नहीं ।

**उपसंहार :-** गीतार्थ एवं बहुश्रुत शब्द एकार्थ में ही प्रयुक्त होते है । जहाँ आगमाकार बहुश्रुत शब्द प्रयोग करते हैं, वहीं व्याख्याकार गीतार्थ शब्द प्रयोग करते हैं । दोनों की जधन्य, मध्यम एवं उत्कृष्ट अवस्था की व्याख्या समान है यथा - (१) आचारांग निशीथ सूत्र एवं अर्थ का धारक (कंठस्थ धारक) जधन्य गीतार्थ एवं बहुश्रुत है । (२) आचारांग सूयगडांग एवं छेदसूत्र के मूल एवं अर्थ का धारी मध्यम गीतार्थ एवं बहुश्रुत है । (३) नौ पूर्व ऊपर के ज्ञानी उत्कृष्ट गीतार्थ एवं बहुश्रुत है ।-***(१) बृहत्कल्प भाष्यपीठिका गा. ६९३ (२) निशीथ चूर्णी पीठिका गा. ४०४ ।***

जो जधन्य गीतार्थ या बहुश्रुत नहीं हो, उसे आचार्य, उपाध्याय पद एवं एकल विहारचर्या निषिद्ध है ।

तथा उसका सिंघाडा प्रमुख बनकर स्वतन्त्र विचरना एवं गवेषणा करना भी निषिद्ध है । एकल विहार के इन आगम प्रमाणों के होते हुए भी एकान्त रूप से एकल विहार को अनागमिक कहना या प्ररूपण करना न्याय युक्त नहीं हो सकता है, उत्सूत्र प्ररूपणा करना ही होता है ।

सुज्ञ पाठक आगम श्रद्धा रखते हुए इन प्रमाणों से सही निर्णय लेकर एकान्त प्ररूपण एवं दूषित विचारों से बचें । साथ ही गच्छ व्यवस्था करने में पदों की आवश्यकता समझें एवं स्वतन्त्र प्रमुख बनकर विचरने वाले की योग्यता का ध्यान भी रखें तथा एकल विहार की अपेक्षा पद रहित गच्छ व्यवस्था को अत्यधिक अहितकर एवं आगम विपरीत समझें ।

एकल विहार के इस सम्पूर्ण प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि-

**(१)** भिक्षु का एकल विहार एक विशिष्ट साधना है एवं किसी शारीरिक या मानसिक परिस्थिति में गुजरने वाले के लिए यह एक अवलम्बन-भूत अवस्था है । जिसकी आगमों में जगह-जगह स्पष्ट रूप से आज्ञा एवं प्रेरणा भी है । यह उक्त प्रमाणों से समझा जा सकता है ।

**(२)** एकल विहार का पूर्ण निषेध आचार्य आदि पदवीधारी भिक्षु के लिए एवं साध्वी के लिए है । साधु के लिए पूर्ण निषेध किसी भी आगम में नहीं है, यह ध्रुव सत्य है, इसे झुठलाना आगम विपरीत प्ररूपणा है ।

**(३)** आगम में अव्यक्त भिक्षु के लिए तथा अनुपशांत या अनात्मार्थी भिक्षु के लिए एकल विहार का निषेध है एवं अपरिपक्व पंख वाले पक्षी के समान कच्चे साधकों के लिए गुरुकुलवास आवश्यक कहा है । इसी





से स्पष्ट होता है कि व्यक्त, उपशान्त, शान्त, आत्मार्थी एवं बहुश्रुत गीतार्थ का एकल विहार निषिद्ध नहीं है ।

अनेक दृष्टिकोणों से युक्त इन आगम वर्णनों के उपलब्ध होते हुए भी जो एकान्त प्ररूपण करते हैं वे सच्चे आगम पक्षकार नहीं हैं। किन्तु वे गतानुगत वृत्ति वाले बनकर आगमों को दोनों आँखों से देखने का प्रयत्न नहीं करने वाले हैं । अपितु एक आंख से देखने की वृत्ति वाले एक चाक्षुस(कांणे) है, ऐसा समझना चाहिये । ऐसे महानुभावों को चाहिये कि वे इस आगम प्रमाण युक्त संकलन का अध्ययन, मनन करें एवं एक चाक्षुस से द्वि चाक्षुस बनें अर्थात् आगम वर्णित उभय पक्ष के दृष्टिकोणों को समझकर अनेकांतिक सिद्धान्त को स्वीकार करें, तभी शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र के आराधक हो सकेंगे ।

**आगम विरुद्ध एकान्त प्ररूपणा करना महापाप है ।**
**अनेकान्त सत्य स्वीकार करना परम धर्म है ।**
**अकल्पनीय एकल विहार करना जिनाज्ञा की चोरी है ।**

▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪▪

## १. विशिष्ट एकल विहार :-

भिक्षु की ग्यारह प्रतिमाएँ, मोयप्रतिमा-चन्द्रप्रतिमा आदि विशिष्ट नियम अभिग्रह एवं रात्रि भर के कायोत्सर्ग आदि युक्त प्रतिमा इत्यादि साधनाएँ विशिष्ट संहनन एवं पूर्वज्ञान वाले ही धारण कर सकते है । जिनका अभी विच्छेद मानना आगम विरुद्ध नहीं है ।

## २. निषिद्ध एकल विहार :-

**(१)** आचा॰ १ अ॰ ५ उ॰ ४ में- अव्यक्त का एकल विहार निषिद्ध है । **(२)** आचा॰ श्रु॰ १ अ॰ ५ उ॰ १ में- क्रोधी, मानी, घूर्त आदि का एकल विहार दूषित है । **(३)**सूय॰ श्रु॰ १ अ॰ १४ में- अल्प दीक्षा पर्याय वाले का स्वतंत्र विहार निषिद्ध है । **(४)** व्यव॰ उ॰ ४, सू॰ ११-१२ में कहे नवदीक्षित का(३वर्ष की दीक्षा पर्याय) एवं चालीस वर्ष तक की उम्र वाले भिक्षु का आचार्य उपाध्याय की निश्रा बिना विचरण करना निषिद्ध है ।

ये विहार आगम में निषिद्ध है । इन विहार चर्याओं के करने वाले योग्य अयोग्य कोई भी भिक्षु हो सकते है किन्तु उन सब की आचरणा आगम विरुद्ध है ।

**३. कल्पनीय एकल विहार :-**

**(१)** दशवै. चू. २ गा. १० तथा उतरा. अ. ३२ गा. ५ में निर्दिशष्ट सपरिस्थितिक एकल विहार चर्या, कल्पनीय है । **(२)** आचा. श्रु. १, अ. ६ उ. २ में निर्दिष्ट शुद्ध गवेषणा और शुद्ध संयम रूचि से धारण की गई एकल विहार चर्या कल्पनीय है । **(३)** सूय. श्रु. १ अ. १० गा. १२ में निर्दिष्ट मोक्ष प्राप्ति के आश्वासन के साथ कही गई एकल विहार चर्या कल्पनीय है ।

ये एकलविहार आगम सम्मत हैं इन्हें तीन वर्ष की दीक्षापर्याय, चालीस वर्ष की उम्र वाला तथा आचारांग निशीथ सूत्र को अर्थ परमार्थ सहित कंठस्थ धारण करनेवाला स्वीकार कर सकता है । इस योग्यता के पूर्व सकारण किया गया एकल विहार भी आगम विरुद्ध है ।

**उपसंहार :-** वर्तमान में अयोग्य एकल विहार चर्या वालों को लक्ष्य में रखकार एकांगी दृष्टि से एकल विहार का सर्वथा निषेध किया जाता है, आगमों के नाम से एकांत अकल्पनीय कहा जाता है और अभी ए कलविहार का विच्छेद है ऐसा माना जाता है यह सब सर्वथा अनुचित कथन है और आगम विपरीत प्ररूपण है ।

अत: इस निबंध में प्रासंगिक आगमोक्त अनेकांत द्रष्टिकोणों को समझ कर एकांत एवं आगम विरुद्ध प्ररूपण को महापाप समझ कर साधु-साध्वी आदि चतुर्विध संघ को विवेक युक्त कथन या लेखन करना चाहिए ।

## कुछ प्रमाणों का स्पष्टीकरण

**(१)** ठाणांग सूत्र तीसरा ठाणा में - साधु के तीन मनोरथ और श्रावक के तीन मनोरथ बताये हैं । साधु के मनोरथ इस प्रकार है- १. जिस समय में जितने आगम उपलब्ध हो उसका अधिक से अधिक अध्ययन करूँ । २. मेरा वह दिन बड़ा कल्याण का होगा जब मैं गच्छ निरपेक्ष होकर एकान्त आध्यात्म साधना के लिए एकलविहार प्रतिज्ञा धारण कर विचरूँगा ३. वह दिन मेरा परम कल्याण का होगा जब मुझे संलेखना संथारायुक्त पंडित मरण प्राप्त होगा ।

श्रावक का दूसरा मनोरथ भी गृहत्याग कर संयम लेने का है वह





भी सभी श्रावकों की नहीं आता है । जिसकी भावना प्रबल हो और योग्यता एवं अवसर हो तो ही उसे संयम प्राप्त होता है । पर मनोरथ है तो कभी किसी को आता भी है विच्छेद नहीं होता । मनोरथ का विच्छेद कहना सर्वथा अनुचित है । वैसे ही साधु के मनोरथ के लिए भी समझना चाहिए ।

**(२)** दशाश्रुत स्कंध सूत्र- आचार्य की संपदा के वर्णन करने के साथ में आचार विनय के भेदों में एकल विहार समाचारी वाले साधु को गच्छ में आचार्य की संपदा रूप गिने हैं । वहाँ कहा है, कि- यदि गुण सम्पन्न साधु एकल विहार को इच्छता हो तो उसे एकल विहार कराये । इसी की चूर्णी के प्रकाशन में लिखा है कि एकलविहार का निषेध करने वाले महापुरुषों को इस उक्त वचन पर विश्वास रखना चाहिए । नहीं तो वह अनंत संसारी होना सम्भव रहता है । कहा भी है **'गीतार्थ एकाकी रहतो, पामे पद निर्वाण(जगबहुमान) । अज्ञानी टोले पण भोले, बोडे(डूबे) पत्थर नाव'**- दशाश्रुतस्कंध निर्युक्ति-चूर्णी प्रस्तावना ।

**(३)** बृहत्कल्प सूत्र उद्देशा ५ में साधु व साध्वी दोनों के अनेक कल्पों के विषय में बताते हुए बीच में बताया कि-साध्वी को अकेली गोचरी, जंगल, विहार आदि कोई भी कार्य करना नहीं कल्पता है और साधु के लिए वहाँ कुछ भी नहीं कहा ।

**(४)** व्यवहार सूत्र उद्देशा ४ में आचार्य उपाध्याय को अकेले विचरने की मनना करी और साधारण साधु के लिये कुछ भी नहीं कहा ।

**(५)** वास्तव में बतीस सूत्र के मूल पाठ में ऐसी कहीं एक लकीर भी नहीं है कि किसी भी साधु को अकेले नहीं रहना और रहे तो प्रायश्चित्त । किन्तु दशवैकालिक और उत्तराध्ययन की मूल गाथा में अमुक परिस्थिति में साधु को अकेले ही विचरना चाहिए ऐसा स्पष्ट प्रेरणात्मक पाठ है।

**(६)** आचारांग सूत्र अध्ययन- ५(१-५-४) में बताया है कि एकल विहार चर्या उसके लिये खराब होती है-'जो अव्यक्त हो' = श्रुतज्ञान से, श्रद्धा से और स्थिरता से तथा जो बात-बात में कषाय करने वाला हो, उसे अनेक बाधाओं को पार करना मुश्किल हो जाता है । हे साधक ! ऐसा तेरे को न होवे इसका सदा विचार करना, यह ज्ञानियों का फरमान है ।

**(७)** आचारांग अध्ययन ५ में (१-५-१) तथा अध्ययन ६ में (१-६-२) एकल विहारी साधु के सम्बन्धी कथन किया गया है । पांचवे अध्ययन

में बताया है कि- इस जिन शासन में कई एकल विहार ऐसे होते हैं । यथा- बहु क्रोधी, बहुमानी, बहु मायी, और बहु लोभी, अति बोलने वाले, स्वांग करने वाले, दोष छिपाने वाले, उत्कृष्टता बताने वाले, जो कि गुप्त पणे कई दोष सेवन करे इत्यादि । इसके विपरीत **छठे अध्ययन में कहा हैं कि** इस जिन शासन में कई एकल विचारचर्या वाले होते हैं वे शुद्ध गवेषणा की द्रष्टि एवं रूचि वाले तथा सर्व शुद्धि से संयम पालने वाले होते है । वे बुद्धिमान विचरण करते हुए लाभ अलाभ कष्ट आदि सब कुछ शान्ति से सहन करते हैं इत्यादि । अब हम सोचें कि क्या इन दोनों को नवपूर्वी या पाडिमाधारी कहा जा सकता है ? या ये साधारण एकलविहारी है ?

**(८)** सूयगडांग सूत्र दूसरे अध्ययन में कहा है कि- **एगेचरे ठाणमासणे, सयणे एगसमाहिये सिया** विशेष साधना के लिये भिक्षु को विचरण, स्थान, सयन, आसन में अकेलेपन से समाधि युक्त रहना चाहिए । इस तरह यहाँ आसन, सयन, स्थान व विचरण के एकत्व की प्रेरणा है ।

**(९)** सूयगडांग सूत्र अध्ययन-१०, गाथा ११-१२ में कहा है कि-भिक्षु आधाकर्मी आहार की चाहना भी नहीं करे । उनके साथ संभोग नहीं रखे किन्तु अपने कर्म क्षय करने में लगा रहे । इसी प्रसंग से अगली गाथा में कहा है कि- **एगत्तमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोक्खो न मुसं ति पास=** अकेले रहना भी स्वीकार कर ले(चाहना कर ले) ऐसा करने से भी मोक्ष (कल्याण) हो सकता है । इसे असत्य नहीं समझना । यहाँ भी गवेषणा दोष के प्रसंग से एकलविहार का निर्देश है और अकेले से मोक्ष नहीं होता, ऐसा भ्रम नहीं रखने का निर्देश है । जिसे कि आचरांग सूत्र के छट्ठे अध्ययन में प्रशस्त कहा है ।

**(१०)** ठाणांग सूत्र आठवें ठाणे में- एकल विहार करने वाले की योग्यता के आठ गुण बताये है । उनमें से ६ गुण तो छट्ठे ठाणे में बताये है कि इन ६ गुणों वाला सिंघाड़ा का मुखिया बन सकता है । इसकी अपेक्षा यहाँ दो गुण विशेष बताये हैं । (१) धैर्यवान और (२) उत्साहवान, इन दो विशेष गुणों का अभिप्राय इतना ही है कि **१.** अकेले में रोगातंक आदि में **धैर्य** रखने की आवश्यकताहोती है । तथा **२.** अकेलेपन से रहने में सदा आनन्द मानने की रुचि तमन्ना रूप **उत्साह** भी आवश्यक है । शेष **६.** विशेषण तो वे ही है जो सिंघाड़े की मुख्यता करके विचरने वाले में





कहे हैं । यथा- १. शुद्ध श्रद्धा संपन्न २. पूर्ण सत्यवादी ३. बुद्धिमान ४. बहुश्रुत ५. शारीरिक शक्ति संपन्न ६. कलह रहित स्वभाव वाला अर्थात् शांत स्वभावी, धैर्यवान एवं गंभीर । ये सिंघाड़ा प्रमुख की योग्यता के लक्षण है । इन गुणों के अभाव मे साधुओं को प्रमुख बनकर विचरण करना या चातुर्मास करना नहीं कल्पता है ।

कुछ ही सैकड़ों वर्षों से एकलविहार के एकान्त रूप से निषेध करने की प्रवृत्ति हो जाने से उन्हीं ६ गुणों का यहाँ अर्थ अलग करके वज्र ऋषभनाराच संहनन और नव पूर्व ज्ञान अवश्य होना चाहिए ऐसा अर्थ कर दिया गया है किन्तु मूल पाठ में तो शीर्फ दो गुण ही ज्यादा कहे उनसे कोई ऐसा अर्थ निकले ही नहीं। कहीं मूल में ९ पूर्वज्ञान और वज्र ऋषभ नाराच संहनन कहा ही नहीं । और यहाँ ६ शब्दों का ऐसा अर्थ करेंगे तो किसी को सिंघाड़ापति-मुखिया बनना भी नहीं कल्पेगा । अत: जिसमें सिंघाड़े का मुखिया बनने की योग्यता है उसमें दो गुण अधिक हो तो वह एकल विहार की योग्यता वाला कहा जाता है ऐसा मूल पाठ से सिद्ध होता है । ९ पूर्व ज्ञान और प्रथम संहनन तो भिक्षु पडिमा आदि के लिये आवश्यक कहा भी जा सकता है क्योकि उसमें विशिष्ट तप, रात भर के काउस्सग आदि अनेक नियम होते हैं । तथापि अंतगड सूत्र में बिना पूर्वों के ज्ञान वाले अनेक साधुओं ने भिक्षुपडिमा धारण की थी ऐसा मूलपाठ में वर्णन है परन्तु उपरोक्त शास्त्रों के प्रमाण वाली यह एकल विहार चर्या एक अन्य ही सपरिस्थितिक साधना है किन्तु पडिमा नहीं है तो भी इसके संबंध में ९ पूर्वज्ञान और संहनन का कथन जबरन जोडा जाता है ।जो आगे दशवैकालिक व उत्तराध्ययन सूत्र का विवेचन देखने से ध्यान में आयेगा कि ९ पूर्व ज्ञान और संहनन का कथन कितना आगमानुकूल है?

**(११)** व्यवहार सूत्र के आठवें उद्देशे मे-ऐसे एकल विहारी स्थविरकल्पी का वर्णन है जिसे डंडा, लाठी, छत्र, चर्म आदि अनेक उपकरण रखने पड रहे हैं और उसे, स्वयं गोचरी जा रहे हों तब क्या करना चाहिए-इस बात का वर्णन है । इसमें वृद्धावस्था, अकेलापन और स्थविरकल्पीपन ये तीनों बातें सोचने योग्य है । विशेष जानकारी के लिए आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के छेद सूत्रों में इसका विवेचन देखें ।

०००००००००

## दशवैकालिक सूत्र :-

**असंकिलिट्ठेहिं समं वसिज्जा, मुणी चरित्तस्स जओ न हाणी ॥ ९ ॥**
**न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।**
**एको वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥१०॥**

**सरलार्थ :-** साधु को उन्ही के साथ रहना उचित है जिनके साथ रहने में कोई भी प्रकार का मानसिक वाचिक शारीरिक संक्लेश न हो और स्वीकृत चारित्र में किसी प्रकार की हानि न पहुँचे ॥९॥ यदि श्रेष्ठ मुनि न मिले तो क्या करना चाहिए ? इसका समाधान शास्त्रकार अगली गाथा में दे रहे है- अपने से गुणाधिक या गुण सम योग्य निपुण (संयम में) सहायक न मिले तो अकेला ही विचरे और ध्यान रखे कि १८पापों के त्याग को बराबर निभावे । इन्द्रिय विषयों में कहीं भी आशक्त न होता हुआ विचरे । इसका भावार्थ यही हुआ कि- ***यदि जिनके साथ रहने में संयम में कोई भी हानि पडे, किसी भी तरह की सक्लेशता रहे तो मुनि को वहां भूल कर भी नहीं रहना चाहिए सहर्ष अकेला विचरण करना चाहिए ।" आत्मारामजी म.सा. ।***

ऐसी स्थिति ९ पूर्वी के लिये नहीं होती है । वे तो विशेष तप, ध्यान, निर्जरा, पडिमा आदि के लिये अनेक उच्च योग्य साधक साथी के होते हुए भी अकेले जाते हैं । अतः सूत्रोक्त यह भाव साधारण साधु की अपेक्षा ही शास्त्रकार ने कहा हे ऐसा स्पष्ट है । **इसके लिये नौ पूर्वी का कथन चाहे कितना भी प्राचीन क्यों न हो आगम आशय के विपरीत ए वं मन कल्पित है ।**

## उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-३२ :-

**आहार मिच्छे मिय मेसणिज्जं, सहाय मिच्छे णिउणत्थ बुद्धिं ।**
**निकेय मिच्छेज्ज विवेग जोगं, समाहि कामे समणे तवस्सी ॥४॥**

**टीका का भावार्थ :-** ज्ञान दर्शन चारित्र के लाभ का इच्छुक साधु ही समाधि का इच्छुक कहलाता है । संयम की प्रवृत्तियों में पुरूषार्थ करने वाला श्रमण कहलाता है । बेला तेला आदि करने वाला तपस्वी कहलाता है । ऐसे श्रमण तपस्वी य समाधि के इच्छुक मुनि यह चाहे अर्थात् इन आगे कहीं जाने वाली चाहनाऐं रखे । जो संयम समाधि के आवश्यक अंग है इनका सदा ध्यान रखे । वे क्या है ? सो आगे कह रहे है- सबसे





पहले एषणीय, दोष रहित आहार की ही चाहना रखे अर्थात् मेरे संयम जीवन में आहार आदि(पानी वस्त्र शय्या) में कोई प्रकार का दोष नहीं लगना चाहिये । मेरी गवेषणाशुद्ध है ? या मुझे लाकर देने वाला शुद्ध गवेषणा करता है ? मेरे शरीर के उपभोग में कोई भी अकल्पनीय वस्तु तो नहीं आ रही है ? इसका पूरा ध्यान रख सतर्कता, सावधानी और विवेक करे । यह पहली चाहना है । सर्व प्रथम यह चाह-खप ख्वाईस साधु को संयम जीवन में होनी ही चाहिये । क्योंकि कहावत है कि 'जैसा खायेगा वैसी डकार आयेगी' अतः पहले आहार शुद्धि का ध्यान हो । इसमें भी यह सतर्कता रहे कि आहार मर्यादित और संयमयात्रा को टिकाने पूरता हो, न कि मन और इन्द्रिय का पोषक और अहितकर हो । **फिर शास्त्रकार अगली बात कहते हैं** कि साथी साधु तत्वज्ञ बुद्धिमान संयम के योगों में पूर्ण समझ और विवेक रखने वाला सुयोग्य हो जिससे कि कोई भी प्रकार की असमाधि का कारण न बने । योग्य साथी समय पर विशेष लाभकारी होता है । जैसे कि शैलक राजर्षि को योग्य शिष्य ने पुनः धर्म में स्थिर कर दिया था । अतः योग्य साथी के साथ रहने का ही सदा ध्यान रखे । और वह समाधि का इच्छुक साधक ठहरने के लिये योग्य व एकान्त शांन्त मकान प्राप्त करने का सदा ध्यान रखे । ॥४॥

**टीका- अथ काल आदि दोष वशात् चेत् पूर्वोक्त गुण सहायः शिष्यः न लभेत तदा कि कर्तव्यं तदाह—**

**न वा लभेज्जा निउणं सहायं, गुणाहियं वा गुणओ समं वा ।**
**एक्को वि पावाइं विवज्जयंतो, विहरेज्ज कामेसु असज्जमाणो ॥५॥**

अब यदि काल आदि दोष वशात् कोई योग्य सहायक साथी न मिले तो क्या करना चाहिये, यह अगली पाँचवी गाथा में कह रहे है ।

**टीका का भावार्थ** - यदि अपने में रहे हुए विनय आदि गुणों में समान या अधिक योग्यता वाला बुद्धिमान, शुद्ध संयम का इच्छुक, सहायक साथी न मिले तब वह साधु अकेला ही शिष्य रहित होकर विचरे,विहार करे और संयम गुण-समिति आदि एवं विनय आदि में कमजोर, अविनीत शिष्य को जबरदस्ती निभाने धकाने की शोशिश न करे । किन्तु चारित्र गुणों में अनुकूल रुचि वाले, असमाधि पैदा नहीं करने वाले, ऐसे विनीत शिष्य के अभाव में अकेला ही विचरे । (यथा-गर्गाचार्य सैकड़ो शिष्यों

को छोड कर अकेले ही विचरे) । अब इस परिस्थिति में अकेला विचरता हुआ साधु क्या सावधानी रखे इसकी भलावण देते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि साधु ने सावध योग का त्याग किया है अतः सदा १८ पाप से बचने का पूरा-पूरा ध्यान रखें यह पहली भलावण है और दूसरी भलावण यह है कि पांच ईन्द्रिय विषय अर्थात् शब्द रूप गंध रस और स्पर्श इन पाँच काम गुणों में आशक्त न होता हुआ इन में मन को प्रतिबंधित नहीं करता हुआ, वैराग्य भाव को उपस्थित रखता हुआ, उदासीन भावों को पुष्ट करता हुआ, विचरे ।- ***उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३२ गाथा ५ ।***

**उपसंहार :-** इस भाव वाली इस गाथा को दो सूत्र में स्थान मिला है। श्रुति परंपरानुसार भगवान् ने मोक्ष जाते समय जो ३६ अध्ययन फरमाये उसके ३२ वें अध्ययन की यह ५वीं गाथा है । और उसी प्रकार अपने पुत्र मनक के लिये अल्प उम्र जानकर १४ पूर्वी स्वयंभवाचार्य ने सूत्रों का सार लेकर जो दशवैकालिक की रचना करी उसकी दूसरी चूलिका में गाथा नं. १० है ।दोनों चूलिकाएँ विशिष्ट विषय पर है ।

**पहली में**- जो साधक संयम में अस्थिर चित्त हो जाय । उसकी स्थिर होने में पूर्ण सहाय रूप शिक्षा का ही कथन है इसलिये इसका नाम है- 'रतिवाक्य' अर्थात् संयम में रुचि उत्पन्न कराने वाली शिक्षा ।

**दूसरी चूलिका** का नाम है 'विविक्त चर्या' इसमें गच्छ मुक्त होकर ए काकी विहार चर्या वालों का कथन है । शुरू की गाथाओं में संयम की कुछ शिक्षाओं का कथन करके आगे की गाथाओं में यह विषय लिया है । दसवीं गाथा में दो भलावण(हितशिक्षा) देने के बाद आगे अन्य अनेक भलावणें दी है । क्योंकि अकेला होने के कारण उसे और तो कोई कहने वाला रहता ही नहीं । अतः खुद ही विशेष ध्यान रखे- उपरोक्त भलावण के बाद साधु इस बात का भी ध्यान रखे कि मास कल्प आदि मर्यादाओं का कभी उल्लंघन नहीं करे । अकेले में इसकी संभावना अधिक रहती है । तथा सदा सूत्र निर्दिष्ट मार्ग को समझ कर उसी अनुसार चलने का ध्यान रखे । सूत्र और उसका अर्थ जो जो आज्ञा दे उसी के अनुसार करे ।

रात्रि में सोते, उठते दोनों ही समय आत्म चिन्तन,धर्म जागरण करे । कितने गुण बढाये ? क्या बढाने हैं ? क्या कर सकते हुए भी नहीं कर रहा हूँ ? क्या-क्या मेरे में दोष है ? क्या मुझे दिखते और क्या दूसरों





को दिखते ? इस तरह सम्यक् चिन्तन कर स्खलनाओं को निकालने में जागरूक रहे । इत्यादि एकलविहारी के लिए बहुत भलावणें(शिक्षाएँ) दी है । इसलिए इसका नाम भी इस मुख्य विषय के कारण "विविक्तचर्या" रखा है ।

इन दो चूलिकाओं का मिलकर सार यह हुआ कि किसी भी दुःख से घबराकर साधु संयम नहीं छोडे और यदि अकेले रहने में समाधि हो सके तो वैसा भी करले पर संयम छोडने का विचार तो नहीं करे । तथा अकेले रहने में अनेक खतरे रहते है अतः अच्छी तरह भलावणों-शिक्षाओं के पालन का ध्यान रखे ।

इसप्रकार की परिस्थितिक-निर्देश वाली, अर्थ वाली एवं भलावण युक्त इस गाथा के विषय(अध्ययन) को आगम विहारी ९ पूर्वी जिनकल्पी आदि के लिये कहना आगम आशय नहीं समझ पाने की स्खलना से होता है या जबरदस्ती ठूंस देने की बुद्धि से हो सकता है । तटस्थ वृति से सोंचे तो समझ में आ सकता है कि ९ पूर्वी तो कोई साथी नहीं मिलने आदि की परिस्थिति से अकेले नहीं जाते हैं अतः उसके लिये ऐसी परिस्थिति के अर्थ वाले और भलावण वाले प्रकरण को फिट करना (जोड़ना) बहुत बड़े ढर्रे रूप भूल है । अतः इस गाथा के लिये और अन्य भी जो उपर अनेक एकल विहारचरिया के प्रसंग आचारांग सूत्र आदि के बताये हैं । उनके लिये ९ पूर्वी आदि का कहते रहना, प्ररूपणा करना, बुद्धिमानों के लिये योग्य नहीं है । और इसे आगमिक भी नहीं कहा जा सकता है । **सूयगडांग सूत्र में** तो आधाकर्मी आदि दोष प्रसंग से स्पष्ट कथन है कि-आधाकर्मी आदि दोष लगे तो- **एकाकीपन की चाहना (अर्थात स्वीकार) करे, परन्तु उस दोष संयुक्त अवस्था में न रहे । इस तरह एकाकीपन से भी मोक्ष हो सकता है, इसमे शंका न करें अर्थात् असत्य नहीं समझे । इस तरह भी मोक्ष होना सत्य है और(अपेक्षा से) अच्छा भी है । अतः कषाय रहित होकर सत्यता पूर्वक संयम में रत रहे ।** यह गाथा-

**एगत्तमेयं अभिपत्थएज्जा, एवं पमोक्खो न मुसं ति पास ।**
**एसप्पमोक्खे अमुसे वरे वि, अक्कोहणे सच्चरए तपस्वी ॥ १२ ॥**

**संपूर्ण प्रमाणों का सारांश :-**

(१) आगम सम्मत विशिष्ट परिस्थिति हो तो एकलविहार कर सके **-ठाणांग और दो भाष्य के आधार से ।**

(२) अन्य कोई अनुकूल योग्य साथी का संयोग न हो तो एकलविहार कर सके -**दशवैकालिक व उत्तराध्ययन के आधार से ।**

(३) जघन्य मध्यम उत्कृष्ट तीन प्रकार में से कोई भी गीतार्थता या बहुश्रुतता हो तो एकलविहार कर सके अन्यथा नही करे **-ठाणांग सूत्र व भाष्य के आधार सें ।**

(४) तीन वर्ष से कम दीक्षा पर्याय न हो ४० वर्ष से कम उम्र न हो तो एकलविहार कर सके अन्यथा नही करे **-व्यव॰ उद्देशा ३ के आधार से ।**

(५) शरीर की बाह्य हर परिस्थिति में धैर्य रहे, अकेले रहने में पूर्ण उत्साह और प्रसन्नता रहे तो एकलविहार कर सके **-ठाणांग ८ के आधार से ।**

(६) कारण की समाप्ति होने पर एकल विहार छोड़ सकता है **-अनेक टीका भाष्य के आधार से ।**

(७) समर्थता न रहे तो एकलविहार छोड़ सकता है **-व्यवहार सूत्र उद्देशा एक के आधार से ।**

(८) साथी अनुकूल योग्य मिल जाय तो एकलविहार छोड़ सकता है **-दशवैकालिक, उत्तराध्ययन के आधार से ।**

(९) अन्यथा वृद्धावस्था व उम्र पर्यन्त भी एकलविहार में रह सकता है **-व्यवहार उद्देशा ८ तथा उत्तराध्ययन अध्य॰ २७ के आधार से ।**

**निबंध-६४**

## विनयधर्म में स्वाद्वाद

**प्रश्न :** सपरिस्थितिक एकलविहार करने में गुरु के प्रति विनयघर्म का पालन कैसे हो सकता है ?

**उत्तर :** अनेक आगम स्थलों को देखने से यह सहज समझा जा सकता है कि स्याद्वाद मय जिनागम व जिनवाणी से एकांतिक रूप से साधु का अकेला विचरना निषिद्ध नहीं है । हालांकि निर्ग्रन्थ रूप यह भगवान् का मार्ग विनय प्रधान धर्म है, फिर भी इसके स्याद्वादमय होने से कभी-कभी सत्य, संयम, समाधि और भगवदाज्ञा का अधिक महत्त्व रहता है । कई पच्चक्खाणों में महत्तरागार(बड़ों का आगार) भी नहीं होता है ।

(१) दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है कि रत्नाधिक के प्रति हमेशा विनय की प्रवृत्ति रखें, फिर भी संयम की हानि न हो इसका भी पूरा ध्यान रखें ।-अ॰८ गा॰ ४० ।





(२) बृहत्कल्प सूत्र में किसी गलती या क्लेश के प्रसंग का आचार्य के पास में आलोचना प्रायश्चित्त करना कहा है । वहाँ यह भी कहा है कि यदि वह प्रायश्चित्त आगमानुसार हो तो लेवे । आगमानुसार न होवे तो नहीं लेवे अर्थात् मना कर दे । ऐसा स्पष्ट मूल पाठ में है । वहाँ इसे कोई अविनय नहीं माना गया है ।

(३) व्यवहार सूत्र में-आचार्य संलेखना संथारे आदि मृत्यु के निकट समय में शिष्यों को कह दे कि मेरे पीछे इसको आचार्य बनाना, इस विषय में आगे शास्त्रकार स्वयं कहते है कि वह योग्य लगे तो उसको आचार्य बनाना, नहीं योग्य लगे और दूसरा योग्य लगे तो उसको बनाना । इतना स्पष्ट मूल पाठ में है । नासमझू तो कह सकते हैं कि आचार्य की आज्ञा नहीं मानी परन्तु अगवद् आज्ञा की सत्ता यह है कि-गलत कार्य करना गुरु आज्ञा से स्वीकार नहीं किया जाता, ऐसा उक्त पाठ से स्पष्ट हो जाता है ।

(४) सूत्रकृतांगसूत्र अध्ययन-१०, गाथा १२ में- गच्छ में गवेषणा के दोष आधाकर्मी आदि की शुद्धि बराबर न होने से भी एकलविहार करना श्रेष्ठ एवं मुक्ति प्राप्त कराने वाला कहा है अतः इस स्थिति मे एकल विहार करना आगमोक्त होता है, उसका निषेध विनयधर्म के नाम से नहीं किया जा सकता ।

(५) ठाणांग सूत्र में अनेक कारण गच्छ छोड़ने के बताये गये है तो क्यों बताये ? गुरु आज्ञा तो नहीं मानना होगा तभी गच्छ छूटेगा । वहाँ बताया है कि -जो संयम ज्ञान की रूचि साधु को है वैसी अनुकूलता गच्छ में न हो । उसे सन्तोष न हो सके तो उस गच्छ को छोड़ सकता है । जहाँ सारणा, वारणा, विनय प्रतिपत्ति की व्यवस्था बराबर न हो, न्याय-अन्याय सब चले, जिसके जो मन में आवे कर गुजरे, ऐसी अव्यवस्था दिखे, आगमानुसार धारणा प्रवृत्ति व्यवहार न हो तो उस गच्छ को छोड़ सकता है । इत्यादि अनेक कारण दिये हैं ।

***इस तरह विनय प्रधान और आज्ञा प्रधान धर्म होते हुए भी यह धर्म एकांतिक न होकर स्याद्वाद मय है। जो इन उपरोक्त ४ आगम स्थलों से अच्छी तरह समझा जा सकता है कि न्याय, सत्य, संयम, समाधि का महत्त्व विनय और गुरु आज्ञा से भी आगे बढ़ जाता है। इनमें भी कोई अविनय आशातना समझले या कह दे तो यही जानना चाहिए कि उसे अभी "निर्ग्रन्थ प्रवचन विनय प्रधान होते हुए भी न्याय मार्ग है" यह समझना शेष है ।***

आगम निरपेक्ष या आगम विपरीत गुरु आज्ञा और व्यक्ति महत्त्व को जिन शासन में स्थान नहीं है । गौतम स्वामी का कथन और समझ भी गलत हो सकता है और प्रायश्चित्त किया जाता है । इसलिए जिस विषय में शास्त्र प्रमाण स्पष्ट हो तो कोई भी बड़े से बड़े छदमस्थ गुरु आचार्यादि का और परम्परा का उससे ज्यादा महत्त्व नहीं हो सकता । आगम तो सर्वोपरि है ही छोटे बड़े सबके लिये । गुरु आज्ञा और परम्परा को उससे उतार ही समझना चाहिए।

**बहुश्रुत की परिभाषा :-** निशीथ भाष्य के पीठिका की अंतिम गाथा में गीतार्थ के समान ही बहुश्रुत के तीन भेद और कंठस्थ श्रुत ज्ञान का कथन किया है अर्थात् इन दोनों की परिभाषा सरीखी की गई है ।यथा- १. जघन्य बहुश्रुत-आचारांग, निशीथसूत्र कंठस्थ अर्थ सहित । २. मध्यम बहुश्रुत- छेदसूत्रों का कंठस्थ अर्थ सहित ज्ञान । ३. उत्कृष्ट बहुश्रुत- पूर्वों का धारक( नौ पूर्व से अधिक ) ।

**निबंध-६५**

## भिक्षु की स्वतंत्र गोचरी

अनेकांत मूलक इस जिन शासन के किसी भी विधान को एकान्त के आग्रह में नहीं डालना चाहिये । तदनुसार अनेक आगम विधानों तथा वर्णनों से यह स्पष्ट है कि समूह में रहते हुये भी सामूहिक अथवा असामूहिक रूप से गोचरी लाना, खाना साधु कर सकता है ।

**दशवैकालिक सूत्र अध्ययन ५ उद्देशा एक में** वर्णित आहार करने की विधि भी स्वतंत्र गोचरी की प्रमुखता से कही गई है ।

**आचारांग सूत्र के** अनेक विधानों से भी स्वतन्त्र गोचरी की पद्धति सिद्ध होती है ।

आगमों में वर्णित अनेक प्रकार के अभिग्रहों से एवं दत्ति परिमाण से की जाने वाली तपस्याओं से भी स्वतंत्र गोचरी की स्पष्टता होती है ।

साध्वियों द्वारा आचरित सत्तसत्तमिया आदि भिक्षुप्रतिमाएँ स्वतंत्र गौचरी की स्पष्टत: सिद्धि करने वाली है । स्वतंत्र गौचरी के बिना वे प्रतिमायें नहीं हो सकती । इस प्रकार अन्तगड सूत्र से साध्वियों की स्वतंत्र व्यक्तिगत गोचरी भी सिद्ध है । तो साधु के लिये तो निषेध होने का प्रश्न ही नहीं है ।





**उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २९ में** कहे गए **संभोग पच्चखाण** और **सहाय पच्चखाण** के वर्णन स्वतन्त्र गोचरी को एक विशिष्ट लाभकारी आनन्दकारी प्रवृति बताते हैं ।

संसार मार्ग से स्याद्वाद के त्याग मार्ग में भिन्नता है । यहाँ समय पर सेवा का भी महत्व है, तो समय पर आहार सम्बन्ध अलग करना और सहायता लेने देने का त्याग करना भी एक महत्वशाली आचरण बताया गया है । अन्यत्र आगम में भी ऐसी प्रतिज्ञा है । चौभंगी भी आती है कि-कोई साधु खुद का काम करावे भी खुद भी करे, कोई दूसरों से करावे(अर्थात् सेवा ले) पर करे नहीं । कोई सेवा करे पर सेवा करावें नहीं और कोई सेवा करने कराने का सम्पूर्ण त्याग कर लेवे । **आचा. २ अ. ७ उ. २ और आचा. १ अ. ८ उ. ५,७** -तीन जगह ऐसी चौभंगी है ।

आचारांग सूत्र अध्ययन ८ में सूचित चौभंगियें तो स्वतंत्र गोचरी की स्पष्टत: प्रेरक है ।

धर्मरुचि अणगार, गौतमस्वामी, अर्जुनमाली के गोचरी के वर्णन तो स्वतंत्र गोचरी के क्रियात्मक(प्रेक्टीकल) उदाहरण है ।

छ सगे भाईओं में दो-दो की स्वतंत्र गोचरी का उदाहरण भी अन्तगड सूत्र में अत्यंत प्रेरक ढंग से है ।

आज परम्परा के नाम मे स्वतन्त्र गोचरी का निषेध किया जाता है और उसे अनुचित समझा जाता है । वह आगम विपरीत एवं एकान्त द्रष्टि वाला प्ररूपण है । उससे अनेक अभिग्रह आदि के लाभ से साधकों को वंचित रखा जाता है ।

जिस पद्धति या परम्परा के आग्रह से आगमिक साधनाओं का विच्छेद होता हो तो उनका एकान्त आग्रह करना अनुचित भी होता है ।

३२ आगमों में सामुहिक और स्वतन्त्र दोनों प्रकार की गोचरी का वर्णन है । ओघ निर्युक्ति में इसी बात का समर्थक वर्णन है । वहां यह बताया गया है कि कारण से ही माण्डलिक(सामुहिक) आहार किया जाता है किन्तु पूर्ण योग्य और कारणाभाव वाले संत स्वतंन्त्र गोचरी करते है । कारण इस प्रकार कहे है -

बाल, ग्लान, वृद्ध, पदवीधर, नए आगन्तुक साधु और तपस्वी आदि की सामुहिक गोचरी होती है । इन कारणों के अभाव में योग्य साधना प्रिय साधक स्वतंत्र एक-एक या दो-दो से गोचरी करते हैं ।

इस प्रकार वहाँ विस्तृत वर्णन में सामुहिक गोचरी को आपवादिक व्यवस्था कही है और योग्यता सम्पन्न साधको के लिए स्वतन्त्र गोचरी को विधि मार्ग बताया गया है जो आगम वर्णनों से भी अविरुद्ध है ।

तात्पर्य यह है कि सेवा आदि कारणों के अतिरिक्त योग्य साधकों को अकेले या दो से स्वतंत्र गोचरी लाना धामना खाना अभिग्रह तप करना यह आगमिक विधि मार्ग है, ध्रुव मार्ग है तथा संयमोन्नति एवं एषणा शुद्धि का मार्ग है ।

इसमें साधकों को आत्म सन्तुष्ठी, संयमोन्नति, अभिग्रह पालन, तप वृद्धि, समय का बचाव, मौन साधना, समाधि साधना आदि साधनाओं का लाभ होता है । आगम कालीन पद्धति का पालन एवं पुनरुद्धार होता है । जिससे गच्छ में होने वाली छिन्न भिन्नता, टकराव, मनमुटाव, स्वच्छन्द अकल्पनीय एकल विहार की स्थितिएँ, सन्तों के अन्तर मानस में गच्छीय साधना में असन्तुष्टता आदि दोषों का निराकरण होता है ।

**आगम वर्णन अनुसार-** (१) गौतम स्वामी अपने बेले का पारणा लेने स्वयं अकेले जाने एवं खाने में कोई अपमान या अव्यवहारिकता नहीं समझते । (२) धर्म रूचि अणगार गुरु के साथ रहे हुए मास खमण का पारणा स्वयं लावे तो भी आत्म कल्याण रुकता नहीं है । (३) नवदीक्षित अर्जुनमाली का बेले के पारणे में स्वयं जाना एवं महान् कर्मों की निर्जरा करना भी एक अनुपम आदर्श हैं । (४) कृष्ण के ६ भाई, मुनि के अलग-अलग गोचरी जाने का वर्णन यह सिद्ध करता है कि -

जिसे आज का मानव या संसार-व्यवहार अवगुण रूप में देखना चाहता है उसे ही आगम में साधु के लिए विशिष्ट साधना माना गया है।

संसार व्यवहार में सामुहिकता आदर्श गिनी जाती है तो साधना जीवन में असामुहिकता आदर्श कही गई है । साधु का दूसरा मनोरथ ही एकल विहार चर्या रूप बताया गया है । तथा यत्र तत्र आगमों में आत्मा को एकत्व सें भावित करने की प्रेरणा की गई है । सामुहिक गोचरी में और उसमें भी ज्यादा समूह इकट्ठे होने में आहार एवं पानी में अनेक सूक्ष्म या स्थूल दोष लगने की संभावना रहती है ।

जब कि **स्वतन्त्र गोचरी** और स्वतन्त्र एकलविहार का एकान्त निषेध अपना लिया जाता है तो गुणवर्धक एकलविहार और स्वतन्त्र गोचरी का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और अवगुण रूप स्वच्छन्दों का मार्ग





तो विरोध करने पर भी नहीं रुकता है । इसी के फलस्वरूप जिनशासन में स्वच्छन्द विहार की वृद्धि होती रहती है ।

यदि पहले से ही सुन्दर विधि विधानों के साथ आगम चिन्तनपूर्वक आगम सम्मत स्वतन्त्र विहार एवं स्वतन्त्र गोचरी को अवरुद्ध न करके साधकों को अवसर दिया जाए तो दूषित तत्वों का मार्ग अवरूद्ध होगा और योग्य का आज्ञापूर्वक मार्ग खुलेगा जिससे जिन शासन में शुद्ध तत्वों की संख्या बढ़ेगी और अशुद्ध तत्वों की संख्या रुकेगी ।

प्रत्येक प्रावधान या व्यवस्थाओं में लाभ और हानि दोनों अलग-अलग अंश में निहित होते हैं । अपेक्षित हानि या लाभ के बिना कोई भी प्रवृति नहीं होती है । तब किसी भी आगम सम्मत समाधिकारक साधना को विकसित करने वाली चित्त समाधि की प्रवृत्तियों का हानि के नाम से एकान्त निषेध करना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता ।

**स्वतंत्र गौचरी और स्वतंत्र विहार की योग्यता :-** (१) तीन वर्ष की दीक्षा हो । (२) आचारांग निशीथ का धारक अर्थात गीतार्थ या बहुश्रुत हो । (३) धैर्यवान, गंभीर, शांत स्वाभावी हो। (४) प्रियभाषी और मर्यादित भाषी हो । (५) गवेषणा की परीक्षा में उतीर्ण हो । (६) किसी भी पदार्थ में प्रतिबद्ध न हो, आशक्ति न हो, कोई भी व्यसन न हो । (७) सदा कोई अभिग्रह धारण करके गोचरी जावे । (८) दूसरों के लिए तिरस्कार पूर्ण व्यवहार एवं भाषा का प्रयोग नहीं करने वाला हो । (९) छेदसूत्र के विवेचन का कम से कम दो बार वांचन किया हो । (१०) नियमित स्वाध्याय करे, बेकार समय व्यतीत न करे । (११) सेवा की आवश्यकता होने पर आज्ञा प्राप्त होते ही तत्पर रहने वाला हो। (१२) श्रद्धा प्ररूपणा में आगम निरपेक्ष बुद्धि न हो । (१३) गृहस्थों एवं अन्य संप्रदाय के साधुओं के प्रति सद्भावना एवं सहायता हो । (१४) उत्सर्ग अपवाद का विवेकपूर्वक निर्णय कर सकने वाला हो । (१५) आगम सम्मत प्रायश्चित्त स्वीकार करने की सरलता हो । (१६) ब्रह्मचर्य की सुरक्षा के सभी नियम उपनियमों में उत्तीर्ण हो । (१७) महिने में कम से कम चार दिन तपस्या करे(आयम्बिल या निवी या उपवास) । (१८) औषध सेवन नहीं करे, सदा विशेष विगय(धारविगय) सेवन नहीं करे। विशेष कारण बिना मक्खन, शहद न लेवे और सकारण ले तो मर्यादा (१-२ तोला) से अधिक न ले । (१९) स्वास्थ्य सम्बन्धी नियम उपनियम

आहार विहार का अनुभवी हो । (२०) विनय सहित अर्ज कर स्वतंत्र गोचरी की आज्ञा प्राप्त करना । (२१) आपवादिक परिस्थिति में अल्प योग्यता वाला भी गीतार्थ की आज्ञा से एक चर्या धारण कर सकता है।

**निबंध-६६**

## सामायिक प्रतिक्रमण के विशेष प्रश्नोत्तर

**पंच परमेष्ठी ज्ञान-विज्ञान :-**

**प्रश्न :** नमस्कार मंत्र में किनको नमस्कार किया गया है ?

**उत्तर :** अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु इन पाँच पदों को नमस्कार किया गया है ।

**प्रश्न :** पद किसे कहते है ?

**उत्तर :** योग्यता गुण वृद्धि से प्राप्त हुए पूज्य स्थान को पद कहते हैं एवं कार्य क्षमता की योग्यता से दिये गये पूज्य स्थान को पद कहते है ।

**प्रश्न :** प्रथम अरिहंत पद में किनको नमस्कार किया गया है ?

**उत्तर :** ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय मोहनीय और अंतराय इन चार घाती कर्मों को नष्ट करके, केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त कर मनुष्य लोक में विचरण करने वाले तीर्थंकर भगवान को प्रथम अरिहंत पद में नमस्कार किया गया है ।

**प्रश्न :** सिद्ध किसे कहते है ?

**उत्तर :** जिन्होंने आठ कर्मों को नष्ट कर सम्पूर्ण आत्म-कल्याण साध लिया है जो मोक्ष में चले गये है वे सिद्ध भगवान कहलाते हैं ।

**प्रश्न :** आचार्य किसे कहते हैं?

**उत्तर :** जो साधु संघ के नायक है स्वयं आचार पालते है और साधु संघ से पलवाते हैं उन्हें आचार्य कहते हैं ।

**प्रश्न :** उपाध्याय किसे कहते है ?

**उत्तर :** जो शास्त्रों के जानकार हों और शिष्यों को शास्त्र का अध्ययन कराते हों उन्हें उपाध्याय कहते हैं ।

**प्रश्न :** साधु किसे कहते है ।

**उत्तर :** जो पाँच महाव्रत पाँच समिति तीन गुप्ति का पालन करते हैं, तथा शास्त्र के अनुसार आचरण करते हैं, उन्हें साधु कहते हैं ।

**प्रश्न :** ये पद स्वतः प्राप्त होते हैं या किसी के देने से ?





**उत्तर :** अरिहंत और सिद्ध ये दो पद संयम आराधना से स्वतः प्राप्त होते हैं । तथा भाव पूर्वक संयम ग्रहण करने पर साधु पद प्राप्त होता है । सम्पूर्ण संघ को संभालने की योग्यता हो ऐसे विद्वान साधु को आचार्य पद दिया जाता है । शिष्यों को पढाने में कुशल हो ऐसे विद्वान साधु को उपाध्याय पद दिया जाता है । इस प्रकार तीन पद गुणों से स्वयं प्राप्त होते है और दो पद दिये जाने पर प्राप्त होते है ।

**प्रश्न :** पाँच पदों मे देव कितने है ? और गुरु कितने है ?

**उत्तर :** अरिहंत और सिद्ध ये दो हमारे आराध्य देव है और आचार्य, उपाध्याय, साधु ये तीन हमारे पूज्य गुरु भगवंत है ।

**प्रश्न :** गुरु एक होते है या अनेक ?

**उत्तर :** लोक में जितने भी आचार्य उपाध्याय और साधु हैं जो भगवान की आज्ञानुसार विचरण करते है वे सभी साधु-साध्वी गुरु पद मे गिने जाते हैं ।

**प्रश्न :** शास्त्र में ऐसा कहाँ बताया है ?

**उत्तर : अरिहंतो मह देवो, जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो** इस पाठ में बताया है ।

**प्रश्न :** साधु को ये गुरु एक होते है ?

**उत्तर :** साधु जिनके पास दीक्षा ग्रहण करता है वे दीक्षा देने वाले उसके धर्म गुरु धर्माचार्य कहलाते है । यह अलग अपेक्षा है। इस अपेक्षा से तो तीर्थंकर अरिहंत देव भी गौतमस्वामी आदि श्रमणों के धर्म गुरु धर्माचार्य दीक्षा गुरु ही होते है । किंतु सम्यक्त्व प्रतिज्ञा में सभी अरिहंत सिद्ध भगवंत आराध्य देव कहे जाते हैं। सभी श्रमण श्रमणी गुरु पद में होते हैं।

**प्रश्न :** धर्म गुरु धर्माचार्य किसे कहते है ?

**उत्तर :** जिसने अधर्मी से धर्मी बनाया । धर्म विमुख को धर्म सन्मुख किया ऐसे अपने प्रथम उपकारी को धर्म गुरु धर्माचार्य कहा जाता है तथा दीक्षा दाता गुरु को भी धर्म गुरु धर्माचार्य कहा जाता है । क्यों कि वे तो परमोपकारी होते ही है ।

अतः तीर्थंकर या आचार्य या साधारण साधु या श्रावक किसी भी प्रथम उपकारी को धर्म गुरु धर्माचार्य कहा जा सकता है।

**प्रश्न :** अरिहंत भगवान बडे है या सिद्ध भगवान ?

**उत्तर :** सिद्ध भगवान बडे हैं । अरिहंत भी उन्हें नमस्कार करते हैं।

**प्रश्न :** नमस्कार मंत्र में पहले अरिहंतों को नमस्कार क्यों किया गया है ?

**उत्तर :** सिद्ध भगवान निराकार स्वरूप है उनकी पहिचान भी अरिहंत कराते हैं, वे ही धर्म का मार्ग प्रकट करते है, अत: अधिक उपकारी होने से उन्हें प्रथम पद में नमस्कार किया है ।

**प्रश्न :** आचार्य, पाँचवें पद वाले साधुओं को नमस्कार करते हैं ?

**उत्तर :** प्रथम पद वाले अरिहंत अपने से बडे दूसरे पद वाले सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हैं । उसी तरह संयम पर्याय में अपने से बडे साधुओं को और अपने गुरु को आचार्य भी वंदना करते हैं । देश का प्रधानमंत्री या चक्रवर्ती आदि भी अपने माता पिता बड़े भाई को प्रणाम करते ही हैं।

**प्रश्न :** सिद्ध भगवान में गुण कितने होते है ?

**उत्तर :** सिद्ध भगवान आत्मा के सर्व गुणों से सम्पन्न होते हैं तथा आठ कर्म के क्षय होने से उनमें तत्संबंधी मुख्य ३१ गुण होते हैं ।

**प्रश्न :** साधुजी में कितने गुण होते हैं ?

**उत्तर :** साधुजी में हजारों गुण होते है । जिन्हें १८ हजार गुण भी कहे हैं। तथा मुख्य गुण २७ कहे गये हैं। अरिहंत आचार्य उपाध्याय ये भी साधु ही होते है अत: इनमें भी ये २७ गुण तो होते ही हैं तथा अन्य अनेक विशेष गुण होने से वे आचार्य, उपाध्याय और अरिहंत पद में कहे जाते हैं ।

**प्रश्न :** वे २७ गुण कौन से है ?

**उत्तर :** ५ महाव्रत पालन करे, ५ ईन्द्रियों को वश में रखे, ४ कषाय नहीं करे, भाव सत्य, करण सत्य, योग सत्य, क्षमावंत, वैराग्य वंत, पवित्र मन, मधुर वचन, काया की सम्यग् प्रवृत्ति, ज्ञान सम्पन्न, दर्शन सम्पन्न, चारित्र सम्पन्न, वेदना में सहनशील और मरण संकट को सहने वाले ।

**प्रश्न :** अरिहंतों में विशेष गुण कौन से होते हैं ?

**उत्तर :** ३४ अतिशय, ३५ वाणी के गुण, ८ महाप्रातिहार्य तथा वे शरीर के १००८ लक्षणों से सम्पन्न होते हैं ।

**प्रश्न :** आचार्य के विशिष्ट गुण कौन से होते हैं ?

**उत्तर :** आचार्य के आठ प्रकार की संपदा होती है (१) आचार संपदा (२) ज्ञान संपदा (३) शरीर संपदा (४) वचन संपदा (५) वाचना संपदा (६) मति संपदा (७) तर्क शक्ति की संपदा (८) संग्रह परिज्ञा संपदा । आचार्य शरीर से सुंदर, सुडोल, जातिसम्पन्न, बुद्धिमान, विचक्षण, आगमों के ज्ञाता, बहुश्रुत, संयमनिष्ठ और प्रभावशाली ऐश्वर्य सम्पन्न होते है ।





**प्रश्न :** उपाध्याय के विशेष गुण कौन से हैं ?

**उत्तर :** शिष्यों को पढाने में, सूत्र कण्ठस्थ कराने में वे कुशल होते हैं । स्वयं शास्त्र ज्ञान में बहुश्रुत होते हैं ।पढने पढाने की तीव्र रुचि वाले होते है तथा आचार्य के अनेक गुणों से भी सम्पन्न होते हैं । अन्य गण से पढने के लिये आने वाले साधुओं को अध्ययन कराते हैं । आचार्य तो सकल गण के नायक शिरोमणि होते ही है । उनके बाद संघ में दूसरा पूज्य पद उपाध्याय का होता है ।

**प्रश्न :** अरिहंत कब कहाँ और कितने होते है ?

**उत्तर :** अरिहंत मनुष्य क्षेत्र में १५ कर्म भूमि क्षेत्रों में होते हैं । भरत एरवत क्षेत्र में तीसरे चौथे आरे में होते हैं । महाविदेह क्षेत्र में सदा शास्वत होते हैं । भरत क्षेत्र में एक समय में एक होते हैं और एक उत्सर्पिणी या एक अवसर्पिणी काल में तीसरे चौथे आरे में कुल मिलाकर २४-२४ होते हैं । ५ महाविदेह क्षेत्रों में १६० विजय है, उनमें एक एक हो सकते हैं ।अत: उत्कृष्ट १६० अरिहंत (तीर्थंकर) वहाँ हो सकते है तथा कम से कम २० तीर्थंकर तो सदा रहते हैं । इससे कम संख्या कभी नहीं होती है ।

संपूर्ण लोक में कुल मिलाकर उत्कृष्ट १७० तीर्थंकर हो सकते हैं । भरत के ५, एरावत के ५, और महाविदेह की १६० विजय के १६० अर्थात् ५+५+१६०=१७० हो सकते हैं । और जघन्य २० तो सदा होते हैं । अभी भरत क्षेत्र में कोई अरिहंत नहीं है । पाँच महाविदेह क्षेत्र में २० तीर्थंकर अभी विचरण कर रहे हैं ।

**प्रश्न :** सिद्ध भगवान कब कहाँ कितने होते हैं ?

**उत्तर :** सिद्ध भगवान अनंत है । सदा अनंत रहते हैं । ऊँचे लोक में देवलोकों से उपर लोक के आखिरी किनारे शिद्ध शिला है उससे भी उपर लोकाग्र भाग में विराजमान है । उनके जन्म मरण नहीं होने से वे आत्म स्वरूप में सदा के लिये वहाँ स्थिर है । मनुष्य ही कर्मों को सम्पूर्ण नष्ट कर सिद्ध बनते हैं । अभी हमारे भरत क्षेत्र में से कोई सिद्ध नहीं हो सकता है । महाविदेह क्षेत्र से अभी भी मनुष्य कर्म क्षय कर सिद्ध बनते हैं ।

**प्रश्न :** आचार्य उपाध्याय साधु कहाँ कब कितने होते ?

**उत्तर :** मनुष्य क्षेत्र के १५ कर्म भूमि में होते हैं । जब जहाँ अनेकों साधु साध्वी होते हैं तब वहाँ उनके आचार्य उपाध्याय भी होते है । एक गच्छ

में एक ही आचार्य होते है । गच्छ अत्यन्त विशाल हो तो व्यवस्था संभालने के लिये प्रवर्तक, स्थविर, गणधर, गणी, गणावछेदक आदि बनाये जा सकते हैं । उपाध्याय एक या अनेक भी आवश्यकतानुसार हो सकते हैं । भरत क्षेत्र में तीसरे चौथे या अभी पाँचवें आरे में आचार्य उपाध्याय साधु होते हैं और महाविदेह क्षेत्र में सदा शास्वत रहते हैं । साधुओं की संख्या सर्वत्र मिलाकर कम से कम भी अनेक हजार करोड होती है और अधिक से अधिक भी अनेक हजार करोड होती है । तदनुसार आचार्य उपाध्याय भी अनुमान से हजारों लाखों समझ लेना।

**प्रश्न :** शुद्ध संयम पालन करने वालों की संख्या अधिक होती है या संयम में दोष लगाने वालों की संख्या अधिक होती है ?

**उत्तर :** संपूर्ण लोक की अपेक्षा शुद्ध संयम पालने वालों की संख्या अधिक होती है अर्थात् लोक में शुद्ध संयम पालन करने वालों की संख्या अनेक हजार करोड होती है और दोष लगाने वालों की संख्या अनेक सो करोड होती है । मूल गुण और उत्तर गुण में दोष लगाने वाले साधु भी महाविदेह क्षेत्र में सदा शास्वत अनेक सो करोड तो होते ही हैं । भरत क्षेत्र में तो कभी साधु होते हैं और कभी नहीं होते हैं कभी १००-५० भी होते है कभी लाखों भी होते है । कभी दोष लगाने वाले ज्यादा हो जाते हैं तो कभी शुद्ध संयम पालन करने वाले ज्यादा हो जाते हैं ।

**प्रश्न :** दोष लगाने वाले अनेक सो करोड साधु पाँचवें पद में रहते है, उन्हे वंदना की जाती है ?

**उत्तर :** यह अनेक सो करोड की संख्या पाँचवें साधु पद में गिने जाने वालों की बताई गई है । ये कारण-परिस्थिति से दोष सेवन करके भी अंत:करण में उसका खेद रखते हैं उसे अपना दोष समझते हैं और यथावसर उस प्रवृति को छोड कर प्रायश्चित ग्रहण करते है । अत: ये पाँचवे पद में होते है और वंदनीय भी होते है । ये अपने दोष की पुष्टी व परूपणा नहीं करते हैं किन्तु अपनी कमजोरी समझते हैं । और उस कमजोरी के सिवाय तप संयम और ज्ञान ध्यान में लीन रहते हैं । शुद्ध श्रद्धा पूर्वक शुद्ध प्ररूपणा करते हैं । शुद्ध संयम पालन करने वाले साधुओं के प्रति ह्रदय में आदरभाव रखते हैं ।

इसके अतिरिक्त संयम, नियम व भगवदाज्ञा के प्रति लापरवाही रखनेवाले या अशुद्ध श्रद्धा प्ररूपणा वाले साधु-साध्वी इस संख्या में





समाविष्ट नहीं है । अत: वे पाँचवें पद में भी समाविष्ट नहीं है । अत: वे भाव वंदनीय भी नहीं होते हैं । द्रव्य लिंग व समाज से ग्रहित होने के कारण वे मात्र व्यवहार से वंदनीय होते है ।

एक गच्छ में भी अनेक तरह के साधक होते हैं । उनमें भी कई भाव वंदनीय नहीं होते हैं फिर भी वे गच्छ ग्रहित हो तब तक व्यवहार वंदनीय रहते ही है ।

**प्रश्न :** नमस्कर मंत्र कब गिनना चाहिए ?

**उत्तर :** सोते समय, उठते समय, घर से बाहर जाते समय या कष्ट आपत्ति के समय या मृत्यु समय में नमस्कार मंत्र अवश्य गिनना चाहिये ।

**प्रश्न :** नमस्कार मंत्र कब कहाँ नहीं गिनना चाहिये ?

**उत्तर :** नमस्कार मंत्र के लिये कोई स्थान या किसी समय की मनाई नहीं है । जब जहाँ समय हो, इच्छा हो, आवश्यक लगे वहाँ गिना जा सकता है । शौचगृह में भी यदि कष्ट, संकट या मृत्यु समय निकट लगे तो वहाँ भी नमस्कार मंत्र का स्मरण किया जा सकता है ।

**प्रश्न :** पाँचों पद में कुल कितने गुण हैं ?

**उत्तर :** पाँच पद में एक पद सिद्ध भगवान का है और चार पद साधु अवस्था के हैं । इसलिये इन दो पदों की अपेक्षा शास्त्र में सिद्धों के मुख्य ३१ गुण कहे हैं और साधुओं के मुख्य २७ गुण कहे हैं । शेष तीन पद के गुणों की संख्या शास्त्र में नहीं कही है। किन्तु आचार्यों ने अन्य अपेक्षा से अरिहंत के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के-३६, उपाध्याय के-२५ और साधु के २७ इस तरह कुल १०८ गुण पंच परमेष्टी पद के बताये हैं ।

**वंदन-नमस्कार ज्ञान-विज्ञान :-**

**प्रश्न :** आगम में वंदन के पाठ कौन से है ?

**उत्तर :** तिक्खुत्तो, णमोत्थुणं और खमासमणो ।

**प्रश्न :** मार्ग में चलते हुए मुनिराज को वंदन कैसे करना ?

**उत्तर :** दर्शन होने पर कुछ दूरी से हाथ जोड़ कर तथा मस्तक झुकाकर **मत्थएण वंदामि** बोलते हुए वंदन करना चाहिए ।

**प्रश्न :** अरिहंत तीर्थंकर या साधु साध्वी के स्थान पर प्रत्यक्ष दर्शन होने पर किस पाठ से वंदन करना ?

**उत्तर :** अरिहंत एवं साधु साध्वी के स्थान पर प्रत्यक्ष दर्शन होने पर तिक्खुत्तो के पाठ से तीन बार आवर्तन करते हुए वंदन करना चाहिये ।

**प्रश्न :** नौ आवर्तन करते हुए तीन बार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना उपयुक्त है ?

**उत्तर :** ऐसा करना आगम सम्मत नहीं है । अनेक आगमों में तीन आवर्तन के साथ एक बार वंदन करने का ही उल्लेख मिलता है । तीन बार उठ बैठ करने की परम्परा चल पडी है उसके लिये आगम का कोई आधार नहीं है । हाँ तीन बार मत्थएण वंदामि बोलते हुए मस्तक भूमि पर लगाया जा सकता है ।

**प्रश्न :** अरिंहत सिद्ध और साधु को परोक्ष वंदन किस पाठ से करना ?

**उत्तर :** अरिहंत सिद्धों को परोक्ष वंदन णमोत्थुणं के पूरे पाठ से उच्चारण करके करना चाहिये । साधु साध्वी को भी परोक्ष में संक्षिप्त णमोत्थुणं के पाठ से ही वंदन करना चाहिये, यही आगम सम्मत है । परोक्ष में किसी को भी तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना आगम सम्मत नहीं है, वह केवल चल पड़ी अशुद्ध परंपरा है ।

**प्रश्न :** खमासमणो के पाठ से वंदन कब किया जाता है ?

**उत्तर :** प्रतिक्रमण के बीच में तीन जगह खमासमणो के पाठ से वंदन किया जाता है । अन्य किसी भी समय इस पाठ से वंदन करना आगम सम्मत नहीं है । क्योंकि इस पाठ का सम्बन्ध प्रतिक्रमण से है । अन्य समय में प्रत्यक्ष तिक्खुत्तो के पाठ से और परोक्ष वंदन णमोत्थुणं के पाठ से किया जाता है और चलते हुए श्रमणों को 'मत्थएण वंदामि' कह कर दूर से संक्षिप्त वंदन ही करना चाहिये ।

**प्रश्न :** इन पाठों मे क्या विषय है ?

**उत्तर :** १. तिक्खुत्तो के पाठ में वंदन विधि एवं वचन सन्मान है । २. णमोत्थुणं के पाठ में नमस्कार के साथ गुणानुवाद है । ३. खमासमणो के पाठ में वंदन भक्ति एवं त्रुटियों का प्रतिक्रमण तथा क्षमायाचना है ।

**प्रश्न :** लोगस्स और णमोत्थुणं के विषय में क्या अंतर है ?

**उत्तर :** लोगस्स के पाठ में वर्तमान चौवीस तीर्थंकरों का गुणानुवाद है साथ ही वचन द्वारा भाव वंदन प्रकट किया जाता है । णमोत्थुणं के पाठ में तीर्थंकर सिद्ध होने वाले सिद्ध भगवंतो के गुणग्राम है साथ ही नमस्कार भी किया गया है ।

**प्रश्न :** णमोत्थुणं के पाठ से गुणाग्राम नमस्कार कितनी बार करना ?

**उत्तर :** १. सिद्धों की मुख्यता हो तो केवल एक बार ।२. अरिहंतो की





मुख्यता हो तो प्रथम सिद्धों को फिर अरिहंतों को यों दो बार । ३. धर्म गुरु धर्माचार्य की मुख्यता हो तो कभी दो बार और कभी तीन बार अर्थात् भरत क्षेत्र में अरिहंत भगवान विचरण करते हो तो सिद्ध, अरिहंत और गुरु को यों तीन बार णमोत्थुणं से वंदन करना और यदि अरिहंत भगवान भरत क्षेत्र में नहीं विचरते हो तो सिद्ध और गुरु को यों दो बार णमोत्थुणं से वंदन करना ।

**प्रश्न :** इन उपरोक्त वंदन सम्बन्धी ज्ञान का आधार प्रमाण क्या है?

**उत्तर :** राजप्रश्नीय सूत्र, भगवती सूत्र, औपपातिक सूत्र आदि के वंदन प्रकरणों के आगम पाठ ही उक्त वंदन ज्ञान के मुख्य आधार है उन्हीं के आशय आधार से ये समाधान दिये गये हैं ।

**प्रश्न :** एक बार में एक साथ दो वंदन पाठों से वंदना की जा सकती है?

**उत्तर :** नहीं ! एक प्रसंग में उक्त समाधानों के अनुसार किसी भी एक पाठ से वंदन किया जाना चाहिये ।

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण में तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करके फिर उसी के साथ खमासमणो के पाठ से वंदन किया जाता है न ?

**उत्तर :** वह गलत परंपरा है । प्रतिक्रमण के बीच में तीन जगह खमासमणो के पाठ से वंदन करना उपयुक्त है उसके अतिरिक्त बीच बीच में बारंबार तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करना या खमासमणो के वंदन के पहले तिक्खुत्तो से वंदन करना, यह अनुपयुक्त है एवं गलत समझ से चल पडी परंपरा मात्र है ।

प्रतिक्रमण प्रारम्भ करने की आज्ञा प्रत्यक्ष में गुरु या रत्नाधिक को तिक्खुत्तो के पाठ से प्रत्यक्ष वंदन करके ली जाती है और प्रतिक्रमण के अंत मे प्रत्यक्ष गुरु वंदन तिक्खुतो के पाठ से करके क्षमायाचना एवं प्रायश्चित ग्रहण किया जाता है एवं सभी रत्नाधिकों को प्रत्यक्ष वंदन तिक्खुत्तो के पाठ से किया जाता है ।

प्रतिक्रमण के बीच में व्रत अतिचारों के प्रतिक्रमण करने से पहले, प्रायश्चित शुद्धि कायोत्सर्ग के पूर्व एवं पच्चक्खाण करने के पूर्व, यों तीन जगह खमासमणो के पाठ से वंदन किया जाता है ।

मध्यम वंदना एक बार कीजाती है। तीर्थंकर भगवान के लिये श्रावक श्राविकाओं द्वारा तीन आवर्तन कर एक बार वंदन करके बैठ जाने का वर्णन अनेक आगमों में उपलब्ध है । केवल उत्कृष्ट वंदन

प्रतिक्रमण में तीन जगह दो-दो बार किया जाता है। तीन बार मध्यम वंदन की परंपरा का कोई आगम आधार नहीं है । साधु हजारों गुणों का धारक होता है और मुख्य रूप से २७ गुण का धारक होता है तो, क्या प्रत्येक गुण की वंदना की जायेगी ? नहीं ।

ज्ञान दर्शन चारित्र की तीन वंदना करने का रिवाज है किन्तु साधुओं को तीन बार करने के साथ सिद्धों को भी तीन बार वंदना की जाती है जबकि उनमें ज्ञान दर्शन दो ही है, चारित्र नहीं ।

अनेक श्रावकों के द्वारा भगवान को वंदन करने का वर्णन आगमों में देखने से यही स्पष्ट होता है कि तीन आवर्तन और एक बार वंदन करना ही आगम सम्मत वंदन विधि है ।

**इरियावहि पाठ ज्ञान-विज्ञान :-**

**प्रश्न :** गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण का पाठ दो तरह से देखने को मिलता है उसमें सही कौनसा है ?

**उत्तर : इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए** इस तरह प्रारम्भ होने वाला पाठ शुद्ध है और 'इच्छाकारेणं संदिसह भगवं इरियावहियं पडिक्कमामि इच्छं' । इतना पाठ बाद में बनकर जुड गया है ऐसा प्राचीन प्रतियों को देखने से ज्ञान होता है ।

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण करने की विधि में कोई पाठ कितनी बार आता है ?

**उत्तर :** प्रतिक्रमण विधि में अलग अलग जगह एक पाठ तीन बार आ सकता है उससे अधिक आना अशुद्ध चली हुई परंपरा है । उसका कोई आधार भी नहीं है । तीन से अधिक बार बोलना अनावश्यक भी है ।

**कायोत्सर्ग संबंधी ज्ञान-विज्ञान :-**

**प्रश्न :** कायोत्सर्ग खड़े खड़े करना या बैठ कर ?

**उत्तर :** शारीरिक बाधा का कारण न हो तो कायोत्सर्ग खड़े होकर ही करना चाहिये । कारण परिस्थिति होने पर सुखासन से बैठकर भी कायोत्सर्ग किया जा सकता है ।

**प्रश्न :** कायोत्सर्ग पारने के समय पूरा नमस्कार मंत्र बोलना चाहिये या केवल एक पद ही बोलना ?

**उत्तर :** केवल 'णमो अरिहंताणं' इतना ही एक पद ही बोलना चाहिये। तस्स उत्तरी के पाठ से भी यही साबित होता है । पूरा नमस्कार मंत्र बोलना चल पडी परम्परा मात्र है ।





**प्रश्न :** कायोत्सर्ग शुद्धि का सही पाठ क्या है ?

**उत्तर :** यह पाठ आगम में नहीं मिलता है अत: इसमें २ ध्यान और ४ ध्यान के नाम बोलने में मतभेद है अपेक्षा से दो ध्यान बोलना ही विशेष उपयुक्त लगता है ।

**लोगस्स संबंधी ज्ञान-विज्ञान :-**

**प्रश्न :** लोगस्स का पाठ कब बोला जाता है ।

**उत्तर :** किसी भी प्रकार का आगमोक्त कायोत्सर्ग करने के बाद प्रकट में लोगस्स का पाठ किया जाता है । प्रतिक्रमण में भी कायोत्सर्ग के बाद लोगस्स के पाठ का उच्चारण किया जाता है । लोगस्स का पाठ तीर्थंकर का उत्कीर्तन है, गुणग्राम है । कीर्तन और गुणग्राम मन में करने का या मौन से करने का नहीं होता है । वह तो प्रकट में बोल कर किया जाता है तभी उसका "कीर्तन" नाम सार्थक होता है । आगम दशवैकालिक सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, आवश्यक सूत्र में भी कार्योत्सर्ग के बाद लोगस्स का पाठ बोलने का विधान है। कार्योत्सर्ग के अंदर लोगस्स का पाठ करने का विधान किसी भी मूल आगम में नही है किन्तु बाद में बोलने का अवश्य है । तथापि पूर्वाचार्यों ने सामान्य लोगों की दृष्टि से कायोत्सर्ग में भी आलंबन हेतु लोगस्स का पाठ गिनने की परम्परा चलाई है ।

वास्तव में तो कायोत्सर्ग आत्म चिंतन, अतिचार दोष चिंतन के लिये किया जाता है । गुण कीर्तन के लिये कायोत्सर्ग करने की आवश्यकता नहीं होती । वह तो प्रगट उच्चारण से करने की वस्तु है । तभी उसे कीर्तन कहा जा सकता है ।

**सामायिक पारने के पाठ की विचारणा :-**

**प्रश्न :** सामायिक पारने का पाठ कितना है ?

**उत्तर :** सामायिक व्रत के पाँच अतिचार का पाठ, समाइयं सम्मं काए णं..... इत्यादि पाठ और ३२ दोषों का पाठ ये तीन पाठ मुख्य रूप से है। शेष हिन्दी के पाठ, ४ संज्ञा, ४ विकथा आदि पाठ स्पष्टीकरण के लिये जोड़े गये है । जिसका समावेश ३२ दोषों में हो जाता है ।

**प्रश्न :** सामायिक लेने पारने की विधि में फर्क क्यों आता हैं ?

**उत्तर :** सही दृष्टि से समझने के लिये निम्न तत्व विचारणीय है - सामायिक लेते समय इरियावहि प्रतिक्रमण हेतु **इच्छाकारेणं** के पाठ का ध्यान करना उपयुक्त है । सामायिक पारने के समय सामायिक में किये

गये १८ पापों के त्याग रूप व्रत में लगे अतिचारों का चिंतन करने हेतु १८ पापस्थान के पाठ का ध्यान करना उपयुक्त होता है। लोगस्स का पाठ और कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ तो प्रत्येक कायोत्सर्ग के बाद में बोला ही जाता है । कायोत्सर्ग और लोगस्स के पाठ के बाद सामायिक की प्रतिज्ञा **करेमि भंते** के पाठ से विनय पूर्वक ली जाती है ।

तस्स उत्तरी का पाठ प्रत्येक कायोत्सर्ग करने के पहले बोला ही जाता है क्योंकि वह काउसग्ग करने का प्रतिज्ञा पाठ है ।

विधि के आदि मंगल के लिये नमस्कार मंत्र और मंगल पाठ गिनना चाहिये और प्रतिक्रमण की समाप्ति में जिस प्रकार सिद्ध स्तुति णमोत्थुणं के पाठ से की जाती है वैसे ही सामायिक लेने की विधि के अंत मे एवं पारने की विधि के अंत में णमोत्थुणं का पाठ गिनना चाहिये ।

सामायिक पारने का अतिचार शुद्धि का पाठ भी अंत में बोलना आवश्यक है और अंतिम मंगल की अपेक्षा सामायिक समाप्त करने के वक्त नमस्कार मंत्र गिनना भी उपयुक्त है ।

कायोत्सर्ग में इच्छाकारेणं का पाठ गिनना ही है तो कायोत्सर्ग के पहले उसका गिनना अनुपयुक्त होता है । लोगस्स का पाठ कायोत्सर्ग बाद गिनना ही है अत: कायोत्सर्ग में लोगस्स गिनना भी अनुपयुक्त होता है । ये आवश्यक तत्व सामायिक की विधि निर्णय के लिये ज्ञातव्य है ।

**प्रतिक्रमण के समय की तथा अन्य विचारणा :-**

**प्रश्न :** रात्रिक और देवसिक प्रतिक्रमण का समय कौन सा है ?

**उत्तर :** प्रतिक्रमण करने का समय उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ से सूर्यास्त के बाद एवं सूर्योदय के पूर्व करने का स्पष्ट होता है । सूर्यास्त के बाद देवसिक प्रतिक्रमण और सूर्योदय पूर्व रात्रिक प्रतिक्रमण करना चाहिये ।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ में सूर्यास्त के समय स्थंडिल प्रतिलेखन का कार्य बताया गया है । दशाश्रुत स्कंध सूत्र में सूर्यास्त के पूर्व समय तक चलना, विहार करना बताया गया है । वृहत्कल्प सूत्र में सूर्यास्त पूर्व समय तक खाने वाले साधु के भी आराधना बताई गई है । इस प्रकार सूर्यास्त के निकट पूर्व समय में प्रतिलेखन, विहार एवं आहारविधि के आगम निर्देश होने से उस काल को प्रतिक्रमण का काल निश्चित नहीं किया जा सकता ।





अत: सूर्यास्त के पूर्व प्रतिक्रमण का काल मानना आगम विपरीत होता है आगम सम्मत नहीं होता है । प्रात: सूर्योदय के बाद के समय में आगम में प्रतिलेखन, विहार एवं आहार का कथन है । अत: सूर्योदय के पूर्व ही प्रतिक्रमण का काल मानना उपयुक्त है ।

इस प्रकार आगम सम्मत तत्व यही है कि सूर्यास्त बाद देवसिक प्रतिक्रमण और सूर्योदय पूर्व रात्रिक प्रतिक्रमण करना चाहिये।

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण में ४८ मिनट का समय लगना चाहिये ?

**उत्तर :** आगमों में ऐसे कोई निश्चित समय का उल्लेख नहीं है फिर भी एक रूपता एवं व्यवस्थितता की दृष्टि से ऐसा कहा जाता है कि ४८ मिनट या एक घंटे में प्रतिक्रमण हो जाना चाहिये ।

वास्तव में नये पुराने सीखे व्यक्ति या अभ्यस्त अनभ्यस्त व्यक्ति की अपेक्षा हीनाधिक समय लग सकता है ।

विशेष परिस्थिति में एवं नये सीखे हुए साधक को उक्त समय से अधिक समय भी लग सकता है अर्थात किसी को घंटा, डेढ घंटा तक भी लग सकता है और किसी को २०-२५ मिनट में भी पूर्ण हो सकता है । लाल दिशा सम्बन्धी(यूपक काल) अस्वाध्याय काल भी कभी ३०, ४०, ५० मिनिट एवं कभी घटा से भी अधिक समय का हो सकता है ।

सार तत्व यह है कि प्रतिक्रमण प्रमाद रहित होकर करना एवं परस्पर वार्ताएँ नहीं करना चाहिये । फिर भले किसी को ३०, ४०, ५० मिनट या घंटा भी लग जाय तो भी कोई आगम विरूद्ध नहीं होता है ।

वास्तव में जो मूल आगम कालीन प्रतिक्रमण है वह तो अत्यन्त छोटा ही है उसके लिये तो आधा घंटा भी पर्याप्त है किन्तु वर्तमान में कई पाठ दोहे सवैये भजन स्तुति प्रतिक्रमण में प्रविष्ट हो गये हैं ।

मूल आवश्यक सूत्र तो आज भी १००-२०० श्लोक का ही माना जाता है फिर भी किया जाने वाला विधि युक्त प्रतिक्रमण करीब एक हजार से पाँच हजार श्लोक प्रमाण बडा भी किया जाता है ।

इस प्रकार प्रतिक्रमण के परिमाण की समानता नहीं है, व्यक्तिगत उच्चारण गति में भी मंदता तीव्रता होती है अत: समय भी हीनाधिक लगता है । जिसके लिये शास्त्र में कोई स्पष्टोल्लेख नहीं है । उत्तराध्ययन सूत्र में कुछ संकेत है तदनुसार प्रतिक्रमण का समय आधा घंटा से लेकर सवा घंटा भी हो सकता है ।

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के बाद बीच में प्रत्येक आवश्यक की आज्ञा लेनी चाहिये ?

**उत्तर :** छः आवश्यक तो आवश्यक सूत्र के अध्ययन रूप विभाजन है । उन अध्ययनों मे आये पाठों को आगे पीछे एक या अनेक बार जोडने से पूर्ण विधि युक्त प्रतिक्रमण होता है । इसके बीच बीच में आवश्यक लगाना और बार बार आज्ञा लेना उपयुक्त नहीं है ।

यथा आवश्यक सूत्र में लोगस्स दूसरे आवश्यक अध्याय में है, खमासमणो तीसरे आवश्यक अध्याय में है जबकि विधि युक्त प्रतिक्रमण में लोगस्स दो बार खमासमणो तीन बार बोला जाता है तो दूसरा आवश्यक दो बार और तीसरा आवश्यक तीन बार कहना पडेगा। इसी प्रकार करेमि भंते का पाठ आवश्यक सूत्र में तो प्रथम आवश्यक में है । जो कि विधि युक्त प्रतिक्रमण में तीन बार बोला जाता है । तो क्या 'प्रथम आवश्यक की आज्ञा है' ऐसा तीन बार बोला जायेगा ? नहीं,क्योंकि ऐसा संभव नहीं है । अतः एक बार पूर्ण प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के बाद बार बार आज्ञा लेना अनावश्यक एवं असंगत है ।

**प्रश्न :** जो अतिचार चिंतन के पाठ कायोत्सर्ग में अतिचार चिंतन रूप में गिनते है, क्या उन्हें पहले ही बोलकर मिच्छामि दुक्कडं दे देना उपयुक्त है ?

**उत्तर :** विधि संकलना का विस्तृत आगमाधार नहीं होने से कई पाठों की क्रम परंपरा पुनः विचारणीय है । यथा गमनागमन अतिचार प्रतिक्रमण (इच्छाकारेणं), संक्षिप्त अतिचार प्रतिक्रमण(इच्छामि ठामि) के पाठ कायोत्सर्ग के पहले भी बोले जाते है और कायोत्सर्ग में भी गिने जाते है, वह उपयुक्त नहीं है ।

उत्तराध्यन सूत्र में प्रतिक्रमण की संक्षिप्त विधि बताई गई है किन्तु क्रम पूर्वक पाठों की विस्तृत विधि किसी आगम में उपलब्ध नहीं होने से प्रचलित क्रम कुछ विचारणीय एवं संशोधनीय अवश्य प्रतीत होता है ।

विचारणा से यह निर्णय आता है कि कायोत्सर्ग के पूर्व आदिमंगल सामायिक प्रतिज्ञा एवं कार्योत्सर्ग प्रतिज्ञा पाठ होना ही पर्याप्त होता है ।

**प्रश्न :** नमस्कार मंत्र कौन से आवश्यक का पाठ है ?

**उत्तर :** छः आवश्यकों में नमस्कार मंत्र का पाठ नहीं है इसे आदि मंगल पाठ रूप में माना गया है । भगवती सूत्र के प्रारम्भ में नमस्कार मंत्र का





पाठ है अन्य सूत्रों के प्रारम्भ में नहीं है । इसी प्रकार णमोत्थुणं का पाठ भी छः आवश्यक में नहीं है । उसे अंतिम मंगल रूप में माना गया है । अन्य अनेक आगमों में णमोत्थुणं का पाठ मिलता है ।

**प्रश्न :** आगमे तिविहे और अरिहंतो महदेवो का पाठ किस शास्त्र में है ?

**उत्तर :** ये दोनों पाठ छः आवश्यक में नहीं है । इन्हें बाद में आचार्यों ने संपादित करके बनाये है । अतः इनमें हिन्दी प्राकृत मिक्स भाषा है । अरिहंतो महदेवो आवश्यक निर्युक्ति के आधार से एवं आगमे तिविहे का पाठ चौथे आवश्यक के तेतीस बोल के पाठ से लेकर ज्ञानातिचार और दर्शनातिचार की आवश्यकता के लिये उपयोगी समझकर संपादित किया गया है ।

**प्रश्न :** श्रावक प्रतिक्रमण के पाठ किस आवश्यक में है ?

**उत्तर :** आवश्यक सूत्र के ६ आवश्यकों में साधु प्रतिक्रमण के पाठों का ही उल्लेख है । श्रावक योग्य पाठ करेमि भंते, इच्छामि ठामि आदि श्रमण प्रतिक्रमण के पाठ से संशोधित संपादित किये गये है । और अन्य पाठ अनेक आगमों से भी लिये गये है यों कुल मिलाकर पूरा श्रावक प्रतिक्रमण यथोचित रूप से संकलित करके संपादित किया गया है । श्रावक प्रतिक्रमण भी आवश्यक होने से इसका संपादन उपयोगी ही है ।

उपलब्ध छः आवश्यक में तो केवल २३ पाठ है और दो आदि अंत मंगल पाठ माने गये हैं । यों कुल २५ पाठ से श्रमण प्रतिक्रमण पूर्ण किया गया है । छट्ठे आवश्यक के बाद चूलिका रूप में श्रावक प्रतिक्रमण संक्षेप में व्याख्याकार ने स्वीकार किया है । उसी के आधार से विस्तृत रूप में पूर्ण श्रावक प्रतिक्रमण प्रचलित है। जिसमें कालांतर से कई स्तुतियाँ, भजन, दोहे भी प्रविष्ट हो गये है।

**प्रश्न :** खमासमणा के पाठ से उत्कृष्ट वंदन की विधि कहाँ आई है ?

**उत्तर :** समवायांग सूत्र के १२ वें समवाय से इसकी विधि सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है । उसी के आधार से दो बार खमासणा, ४ बार मस्तक झुकाना, १२ बार आवर्तन करना, प्रवेश, निष्क्रमण, उकडु आसन आदि किये जाते है । इनका स्पष्टीकरण समवायांग टीका एवं आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति टीका में उपलब्ध है ।

**प्रश्न :** कायोत्सर्ग में बोले जाने वाले ९९ अतिचार आदि पाठों को दुबारा प्रकट क्यों बोला जाता है ?

**उत्तर :** कायोत्सर्ग में मौन पूर्वक व्रतों के अतिचार दोषों का चिंतन, आत्मानुप्रेक्षण किया जाता है और फिर प्रकट में बोलकर उसका आलोचना प्रतिक्रमण मिथ्यादुष्कृत किया जाता है ।

**प्रश्न :** दो बार बोलना ठीक है तो तीन बार अतिचारों को क्यों बोला जाता है ?

**उत्तर :** उत्तराध्ययन सूत्र के आधार से ही प्रतिक्रमण की विधि स्पष्ट होती है तदनुसार तो दो बार गिनना ही स्पष्ट होता है अर्थात् कायोत्सर्ग में चिंतन करके फिर प्रकट में व्रत अचित्तारों का प्रतिक्रमण संलग्न कर लेना चाहिये और फिर प्रायश्चित शुद्धि के लिये पुनः कायोत्सर्ग कर लेना चाहिये विशेष जानकारी के लिये उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ देखना चाहिये ।

**प्रश्न :** संकलित संपादित पाठ कितने और कौन से हैं ?

**उत्तर :** यों तो श्रावक प्रतिक्रमण संपूर्ण ही संकलित संपादित है और श्रमण प्रतिक्रमण में कुछेक पाठ संकलित संपादित बोले जाते हैं । इन पाठों की स्पष्ट जनकारी के लिये सारांश पुष्प नं. ३२ के परिशिष्ट नं. २ और ३ का अध्ययन करना चाहिये । वहाँ अन्य आगमों से संकलित पाठ तथा आगमातिरिक्त संकलित संपादित पाठों का संग्रह दिया गया है ।

सामान्य रूप से यह समझा जा सकता है कि जितने भी पाठ हिन्दी गुजराती भाषा में या मिक्स भाषा में है, वे सब नये संपादित है । और २५ मित्यात्व, १४ सम्मुर्च्छिम, महाव्रत, समिति, गुप्ति, अणुव्रत, संलेखना, पाँच पद की वंदना, आयरिय उवज्झाए, तस्स सव्वस्स आदि पाठ भी संग्रहित संपादित है । श्रावक प्रतिक्रमण के करेमि भंते और इच्छामि ठामि का पाठ भी संपादित संशोधित है ।

**प्रश्न :** श्रावक के ९९ अतिचार और साधु के १२५ अतिचार का कथन संकेत कहाँ है ?

**उत्तर :** ऐसी संख्या का संकेत किसी भी आगम में नहीं है । और भी ऐसी संख्याओं की गिनती परंपरा में चल जाती है जिसका कि आगमों में कोई निर्देश नहीं होता है । जैसे कि- २१ प्रकार का धोवण । १०८ पंच परमेष्टी के गुण । ३६ आचार्यों के गुण । २५ उपाध्याय के गुण । ५६३ जीव के भेद इत्यादि । ये सभी अपेक्षा से संकलित करके बनाये गये है । जो कोई तो आगम सम्मत भी होते है और कोई असंगत भी हो जाते है ।





**प्रश्न :** संलेखना तो जीवन के अंत समय में होती है उसके अतिचारों की हमेशा के कायोत्सर्ग में चिंतन की क्या आवश्यकता है ?

**उत्तर :** यह तप के अतिचारों की अपेक्षा संकलित पाठ है अतः इसमें संलेखना के स्थान पर तप के अतिचार कहने चाहिये और साथ ही तप स्वरूप भी बोलना चाहिये । 'तप स्वरूप और उसके अतिचार' नाम से पाठ अन्य निबंध में दिया गया है ।

**प्रश्न :** १२ अणुव्रतों में करण-योग का पाठ एक समान क्यों नहीं है ?

**उत्तर :** श्रावक के अणुव्रत तीन करण-तीन योग के ४९ भंगो में से किसी भी भंग से लिये जा सकते है ऐसा भगवती सूत्र में बताया गया है ।

प्रत्येक व्रत में श्रावक की परिस्थिति अलग-अलग होती है अतः करण-योग समान नहीं हो सकते । अतः ये व्रत मध्यम दर्जे के साधक श्रावकों की योग्यता को लक्ष्य में रख कर संपादित है । जो एक प्रकार की सामुहिक व्यवस्था की दृष्टि से उपयुक्त भी है । आगम से कोई विरोध भी नहीं है, कितने भी करण योग कहे जा सकते है । अतः इन पाठों के सही आशय को विवेक बुद्धि से समझ लेना चाहिये ।

इन अणुव्रतों के मूल पाठों में आगार(छूट), व्रत स्वरूप और उसके अतिचारों की संघटना बहुत अनुभव पूर्ण है । इस संरचना से युक्त इन व्रतों को गरीब-अमीर, युवा या वृद्ध, स्त्री-पुरूष एवं राजा-नौकर या सेठ-मुनीम कोई भी धारण करना चाहे तो कर सकता है ।

प्रथम के तीन व्रत एवं आठवाँ नौवाँ ग्यारहवाँ व्रत २ करण ३ योग से होना उपयुक्त एवं संभव है । किन्तु पाँचवाँ छट्ठा सातवाँ दसवाँ व्रत एक करण तीन योग से लेना सुगम होता है । जब कि चौथा व्रत तो एक करण एक योग से ही पालन होना सुगम होता है। इस प्रकार सभी व्रतों के करण योग समझ लेना । बारहवें व्रत में करण योग के खोलने की आवश्यकता भी नहीं रही है । उसमें तो सुपात्र दान देने का नियम है जो तीन करण तीन योगों की संपूर्ति के साथ दिया जाना चाहिये तभी श्रेष्ठ दान होता है ।

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण में ५ पदों की भाव वंदना कैसे और क्यों ?

**उत्तर :** प्रतिक्रमण का (मुख्य) उद्देश्य तो व्रत प्रत्याख्यानों की शुद्धि करना है । लगे अतिचार दोषों का चिंतन, स्वदोष दर्शन एवं उनका परिशोधन करना है । आत्मा के कषाय परिणामों का परिवर्तन समभावों में करना

है । इस मुख्य उद्देश्य से ही मौलिक प्रतिक्रमण के पाठ आवश्यक सूत्र में उपलब्ध है । उन्हीं से प्रतिक्रमण का पूर्ण प्रयोजन सिद्ध हो जाता है । फिर भी उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन एवं २६ वें अध्ययन में प्रतिक्रमण पूर्ण हो जाने पर अर्थात पच्चक्खाण हो जाने के बाद 'स्तव स्तुति मंगल' करने का भी निर्देश है एवं उसका भी महत्व प्रतिक्रमण के साथ जोडा गया है ।

उन दोनों सूत्र स्थलों के निर्देशानुसार पाँच पदो की भाव वंदना आदि गुणग्राम पच्चक्खाण के बाद होना उपयुक्त है । किन्तु परम्परा में प्रतिक्रमण के बीच में इन स्तुति गुणग्राम के पाठों ने स्थान ले लिया है, यह आगम सम्मत नहीं है । ये अतिरिक्त सभी स्तुति गुणग्राम पच्चक्खाण के बाद होना ही आगम सम्मत है किन्तु बीच में प्रवेश पा जाने से प्रतिक्रमण का अधिक समय इनमें लगा दिया जाता है और मौलिक अतिचार चिंतन, स्वदोष दर्शन, आत्म शुद्धि का उपक्रम, कम कर दिया जाता है, गौण कर दिया जाता है, उसमें रस कम लिया जाता है । स्तुति भक्ति के रस में ही अधिकतम प्रतिक्रमण का समय व्यतीत कर दिया जाता है ।

जब कि प्रतिक्रमण का मुख्य उद्देश्य भक्ति रस का आनन्द लेने का नहीं होकर स्वदोष दर्शन एवं आत्म परिणाम विशुद्धिकरण का, कषायोपशांतिकरण का है ।

अतः इन स्तुति गुणग्राम रूप पाँच पदों की भाव वंदना के निषेध करने की अपेक्षा उनका स्थान परिवर्तन होकर आगम सम्मत स्थल में अर्थात् पतिक्रमण के पच्चक्खाण कार्य के बाद में होना चाहिये ।

**प्रश्न :** महाव्रत समिति गुप्ति के हिन्दी पाठ आगम सम्मत है ?

**उत्तर :** प्रचलित श्रमण प्रतिक्रमण में हिन्दी के सम्पादित महाव्रत समिति गुप्ति के पाठ है उनमें भी कोई-कोई स्थल संशोधन योग्य है अर्थात् आगम संगति से कुछ अन्यथा भी है । इसके लिये आचारांग सूत्र और प्रश्न व्याकरण सूत्र गत महाव्रत समिति गुप्ति एवं २५ भावनाओं का अध्ययन करना चाहिये । सारांश के ३२ वें पुष्प में उन हिन्दी पाठों को संशोधन करके प्रस्तुत किया गया है । विद्वान पाठक ध्यान रखने पर समझ सकते हैं । उत्तराध्ययन सूत्र २४ में भी पाँच समिति तीन गुप्ति का वर्णन है ।





**प्रश्न :** 'इच्छामि णं भंते', प्रतिक्रमण का प्रथम पाठ है यह मौलिक आवश्यक सूत्र में है ?

**उत्तर :** यह पाठ प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने की विधि रूप है और संपादित किया गया पाठ है । मूल में नहीं है ।

**जाणियव्वा न समायरियव्वा का महत्त्व :-**

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण में अतिचार के पाठों के साथ आने वाले **जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है,** इन शब्दों का क्या आशय है ? क्या उनका आचरण करने वाला श्रावक या साधु की कोटी में नहीं गिना जायेगा ?

**उत्तर :** प्रतिक्रमण में प्रयुक्त उपरोक्त शब्द आदर्श शिक्षा रूप है । इन्हें एकांकित आग्रह में नहीं लेने चाहिये अर्थात् व्रतधारियों के व्रतों की शोभा या पुष्टि के लिये ये सावधानियाँ, शिक्षाएँ, प्रेरणाएँ है । इनका यथावत ध्यान रखने से व्रत पुष्ट होते हैं एवं व्रतधारी आदर्श स्थान को प्राप्त करते हैं ।

इन शिक्षाओं का पालन न होने से व्रतों की परिपुष्टि में कमी होती है साधक आदर्शता से सामान्यता में पहुँचता है एवं उनके व्रतों में किंचित अतिचरण भी होता है । इस प्रकार इन वाक्यों का आशय समझना चाहिये । किन्तु उन्हें साधकता से अर्थात् श्रावकपन से रहित नहीं कहा जा सकता ।

यथा- पंद्रह कर्मादान व्यापार धन्धे छोडने योग्य है, फिर भी आगमोक्त कई श्रमणोपासकों के वह व्यापार धन्धा नहीं छूट सका था । बंध और वध प्रथम व्रत में आचरण करने योग्य नहीं है फिर भी कई श्रमणोपासक राजा आदि युद्ध में शस्त्र प्रयोग करते ही थे ।

इसी प्रकार संयम साधक के विषय में भी आदर्श गुणों के लिये समझ लेना चाहिये । साधु को २२ परिषह जीतने की ध्रुव आज्ञा आदेश प्रेरणा है फिर भी रोग परीषह सहन न होने से औषध उपचार करने कराने वाले को शास्त्र में असाधु नहीं माना गया है ।

उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २ में औषध उपचार नहीं लेने को ही सच्चा साधुत्व कहा है फिर भी यह आदर्श शिक्षा वाक्य है इसे एकांत में नहीं लिया जा सकता कि जो औषध उपचार का सेवन करे उनका साधुत्व सच्चा नहीं है तो खोटा साधुत्व है, ऐसा नहीं कहा जा सकता ।

मैल परीषह आजीवन सहन करने का सूत्र में आदेश होते हुए भी प्रक्षालन प्रवृत्ति करने वाले को बकुश निर्ग्रन्थ के दर्जे में भगवती सूत्र में माना गया है और दशवैकालिक अध्ययन ४ में प्रक्षालन प्रवृति में पडने वालों की सद्गति होना ही दुर्लभ-कठिन बताया है । इस तरह आगम वाक्यों को अपेक्षा भरा समझना चाहिये, एकांतिक नहीं समझना चाहिये।

**पौषध एवं सामायिक का ज्ञान विज्ञान :-**

**प्रश्न :** दसवाँ व्रत और ग्यारहवाँ व्रत में क्या अंतर है और दसवाँ पौषध और ग्यारहवाँ पौषध क्या है ?

**उत्तर :** पौषध का व्रत ग्यारहवाँ है उसके दसवाँ ग्यारहवाँ दो भेद करना आगम सापेक्ष नहीं है । सभी प्रकार के पौषध ग्यारहवें व्रत में ही समझने चाहिये । क्योंकि पौषध का व्रत एक ही है ग्यारहवाँ ही है ।

कोई भी व्रत जधन्य मध्यम उत्कृष्ट दर्जे का धारण किया जा सकता है किंतु उसको उसी व्रत में ही गिना जायेगा, अन्य व्रत में नहीं। यथा स्व स्त्री की मर्यादा में एक स्त्री की मर्यादा करने वाला या आठ अथवा ५० स्त्रियों की मर्यादा करने वाला भी चतुर्थ व्रत में समाविष्ट होगा । उसे चौथे से उतार कर तीसरे व्रत में कहना अनुपयुक्त होगा और स्वस्त्री सेवन का त्याग करके पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करने वाले को चौथे व्रत से बढाकर पाँचवें व्रत वाला नहीं कहा जायेगा ।

उसी तरह १८ पापों के त्याग रूप संवर प्रवृत्ति के हीनाधिक होने पर, आहार त्याग या आहार सेवन होने पर भी अथवा २४ घंटे का २० या १६ घंटे होने पर भी उस संवर प्रवृत्ति(सावध त्याग प्रवृत्ति) को ग्यारहवें व्रत से उतार कर दसवें व्रत में डालना या दसवाँ पौषध संज्ञा देना, नामकरण करना उपयुक्त नहीं है और आगम सम्मत भी नहीं है । विशेष विचारणा के लिये भगवती के शंख पुष्कली श्रावक के प्रकरण रूप निबंध का अध्ययन करना चाहिये । वहाँ भगवान के प्रमुख श्रावकों का आहार युक्त पौषध ग्यारहवें व्रत में गिना गया है । क्यों कि पक्खी का प्रतिपूर्ण पौषध करने का उन श्रावकों के आजीवन का नियम था ।

**प्रश्न :** पौषध में सामायिक ली जा सकती है ?

**उत्तर :** पौषध में सामायिक लेने का वास्तव में कोई प्रयोजन नहीं होता है । क्योंकि पौषध का ही स्वत: अप्रमाद भाव से आचरण होता है उसमें रात दिन आत्मा को धर्म जागरणा में लगाया जाता है । किन्तु प्रवाह रूप





में सामान्य साधकों को व्यर्थ के प्रमाद प्रवृति से बचाने के लिये सामायिक के प्रेरणा की प्रवृति चल गई है कि इस निमित से साधक सोने का आलस्य प्रमाद नहीं करेगा ।

वास्तव में यह तो पौषध के स्वरूप को नहीं समझने या भुलाने वाले सामान्य साधकों को सामायिक के महत्त्व से प्रमाद से अटकाने का एक उपाय है। वास्तव में तो पौषध का महत्व सामायिक से भी अधिक अप्रमत्तता का है । अत: विज्ञ साधकों को पौषध में सामायिक लेना या गिनना कोई जरूरी नहीं है । फिर भी सामान्य प्रवाह के साथ सभी को चलने में एक रूपता रहे अत: सामायिक लेना और गिनना किया जाय तो कोई नुकशान नहीं समझना चाहिये और सामायिक लेने या न लेने का एकांतिक आग्रह भी नहीं करना चाहिये । यह हानि लाभ के विचार से सामान्य साधकों की अपेक्षा चलाई गई प्रवृत्ति है ऐसा समझ लेना चाहिये।

**प्रश्न :** सामायिक में पिछले काल की सामायिक मिलाकर आगे की सामायिक ली जा सकती है ?

**उत्तर :** पूर्व समाधान के आशय के समान ही इस प्रश्न का समाधान है। सामायिक रूप नवमा व्रत यथावसर अधिकतम समय के लिये प्रतिदिन करते रहना चाहिए, यह श्रावक का शिक्षाव्रत है । इसकी संख्या की गिनती लगाना भी सामान्य साधकों के प्रेरणा हेतु है, ऐसा समझना चाहिये ।आगम में श्रावकों के ६ पौषध की गिनती तो बताई गई है किन्तु सामायिक की गिनती किसी भी श्रावक के वर्णन मे नहीं बताई है ।

परम्परा में ४८ मिनिट की एक सामायिक के परिमाण से सामायिक की गिनती करने से साधकों में प्रेरणा की वृद्धि होती है और उत्साह वृद्धि होती रहती है । इस अपेक्षा से हानि लाभ के विचार से सामायिक का हिसाब रखना गिनती करना लाभप्रद है। इसी प्रसंग से एक साथ अनेक सामायिक करके उनके गिनती करने की प्रवृति की जाती है । उस प्रवृत्ति की व्यवस्था में कभी एक सामायिक लेने के बाद उसमें अनेक सामायिक जोडी जाती है जो ४८ मिनट के हिसाब से गिनती की जाती है ।

इस प्रवृति की व्यवस्था में अगली सामायिक कभी भी ली जा सकती है ।यथा - एक समायिक ली और ज्ञान ध्यान आदि में २-३ घन्टे हो गये तो याद आने पर आगे की सामायिक ली जा सकती है ।

व्यवहारिक विवेक के लिये इतना ध्यान तो अवश्य रखना चाहिये कि अगली सामायिक पच्चक्खाण लेते ही सामायिक पारना प्रारम्भ नहीं कर देना चाहिये अर्थात् समय पूर्ण हो भी गया हो तो नये पच्चक्खाण के बाद ५-१० मिनट और धर्म ध्यान में समय व्यतीत करके फिर ही सामायिक पारना चाहिये ।

**प्रतिक्रमण उपसंहार पाठ ज्ञान विज्ञान :-**

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण समाप्ति का जो उपसंहार पाठ पच्चक्खाण के बाद बोला जाता है वह पूर्ण उपयुक्त एवं आगमोक्त है ?

**उत्तर :** यह पाठ मूल आवश्यक आगम में नहीं है और व्याख्या में भी नहीं है । बहुत बाद का संकलित संपादित है । इसमें अनावश्यक और असंगत होने जैसा भी आभाष होता है । अत: जितना आवश्यक हो उतना ही विचार करके बोलना चाहिये । साथ ही अनुयोग द्वार सूत्र में भाव आवश्यक विचारणा में दिये गये पाठ का यहाँ संकलन संपादन करना आवश्यक है, वह नहीं बोला जाता है उसे बोलना बहुत ही उपयुक्त है । सारांश पुष्प ३२ में इस विचारणा युक्त पाठ का संपादन प्रस्तुत किया गया है । पाठ यथास्थान देखें ।

**प्रत्याख्यान पाठ ज्ञान विज्ञान :-**

**प्रश्न :** 'गंठिसहियं' पच्चक्खाण का पाठ भी आवश्यक सूत्र में कहाँ है?

**उत्तर :** आवश्यक सूत्र में नमुक्कार सहियं आदि दस पच्चक्खाण के पाठ है । किन्तु यह पाठ आवश्यक सूत्र में नहीं है । यह संकलित संपादित पाठ है । इसमें गंठिसहियं मुट्ठिसहियं दो शब्द व्याख्या ग्रन्थों से लेकर जोड़े गये है । जो नमुक्कार सहियं की सदृशता वाले हैं । ये तीनों संकेत पच्चक्खाण गिने जाते है अर्थात् १. गांठ नहीं खोले तब तक अथवा अंगुठी नहीं निकाले तब तक पच्चक्खाण, २. मुट्ठि नहीं खोले तब तक पच्चक्खाण ३. नमस्कार मंत्र नहीं गिने तब तक पच्चक्खाण ।

संकेतिक पच्चक्खाण होने से इनमें सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार नहीं है । क्योंकि निर्दिष्ट संकेत से जब चाहे तक पच्चक्खाण समाप्त किया सकता है । इसलिये सर्व समाधि प्रत्ययिक आगर की आवश्यकता नहीं होती है ।

सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार अद्धा प्रत्याख्यान में आवश्यक होता है क्योंकि उसमें पच्चक्खाण के साथ काल मर्यादा होती है और





उस काल समाप्ति के पहले ही कोई विकट शारीरिक स्थिति खड़ी हो जाय तब सर्व समाधि प्रत्ययिक आगार के आधार से उस प्रत्याख्यान को समय से पूर्व ही समाप्त किया जा सकता है, पार लिया जा सकता है ।

वर्तमान में नमुक्कार सहित पच्चक्खाण को भी ४८ मिनट के समय निर्धारण के साथ अद्धा प्रत्याख्यान कर दिया गया है किन्तु उसके पच्चक्खाण के पाठ में परिवर्तन नहीं किया गया है । यह सही स्थिति नहीं है । प्रचलित परंपरा से संगत ही पच्चक्खाण का पाठ होना चाहिये।

प्रश्न गत **गंठि सहियं** पाठ की अपेक्षा आगमिक 'नमुक्कार सहियं' आदि के पाठ से पच्चक्खाण करना विशेष उपयुक्त एवं शास्त्र संगत है । क्योकि ऐसे मिक्स पाठ से आगारों का सही उच्चारण नहीं हो सकता है । इसलिये अधिकतम जैन श्रमणों में आज भी नमुक्कार सहियं के पाठ से पच्चक्खाण कराया जाता है । तदनुसार सभी श्रमण श्रमणोपासकों को भी सामुहिक रूप में नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण ही करना एवं धारणा चाहिये ।

कई साधु श्रावक इस **गंठिसहियं** के पाठ से पच्चक्खाण की परंपरा पालते हुए भी कुछ भी पच्चक्खाण नहीं धारते और नहीं करते हैं । केवल पाठ का उच्चारण श्रवण ही करके संतोष कर लेते है । इस प्रकार की उपेक्षा बहुत ही अनुचित है । ऐसी उपेक्षा करने वालों को स्वत: अपना सुधार करना चाहिये और कम से कम नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण तो अवश्य करना चाहिये ।

**प्रश्न :** दोनों समय प्रतिक्रमण में नमुक्कार सहियं का पच्चखाण करने से एक ही पच्चक्खाण दो बार करना हो जायेगा ?

**उत्तर :** आगमिक अर्थ वाले नमुक्कार सहियं का पच्चक्खाण करना हो तो शाम को नमुक्कारसहियं पच्चक्खाण ४८ मिनट की अपेक्षा करना और फिर सुबह के पच्चक्खाण में उससे ५-१० मिनट उपरांत का पच्चक्खाण करना चाहिये । इस प्रकार करने से दोनों वक्त नया पच्चक्खाण हो जायेगा और ऐसा करने से एक ही पच्चक्खाण को दुबारा करना नहीं होगा । इसी उलझन के कारण कई संत शाम को पच्चक्खाण नहीं करके सुबह ही पच्चक्खाण करते हैं ।

**काउस्सग्ग में लोगस्स विचारणा :-**

**प्रश्न :** कायोत्सर्ग में कितने लोगस्स गिनने चाहिये ?

**उत्तर :** सर्व प्रथम यह स्मरण रखना चाहिये कि लोगस्स का पाठ कायोत्सर्ग में गिनना ही संगत नहीं है । इस विषय में पूर्व प्रश्नोत्तरों में कुछ समझाया गया है ।

प्राचीन परंपरा से दैवसिक प्रतिक्रमण में ४ रात्रि में २, पक्खी में १२, चौमासी में २०, संवत्सरी में ४० लोगस्स, गिनने का उल्लेख मिलता है । वर्तमान परम्परा में क्रमशः ४,२,८,१२,२० लोगस्स करने की प्रवृति भी चालू है । इसके अतिरिक्त अन्य संख्या भी है । गुजरात में कायोत्सर्ग में लोगस्स नहीं गिनने की परंपरा भी व्याप्त है ।

वास्वत में २४ वें भगवान के शासन में जहाँ दोनों समय प्रतिक्रमण करना जरूरी होता है वहाँ इतने ढेर सारे लोगस्स गिनना साधुओं के लिये कदापि उपयुक्त नहीं है । उन्हें तो दैवसिक प्रतिक्रमण में क्षमाभाव चिंतन एवं रात्रिक प्रतिक्रमण में तप चिंतन करना सदा आवश्यक समझना चाहिये । प्रतिक्रमण के कायोत्सर्ग में अतिचार चिंतन और क्षमापना भाव चिंतन ही मुख्य पहलू है, लोगस्स गिनना तो जिनसे उक्त चिंतन संभव न हो उनके लिये चलाई गई अवलंबन रूप परंपरा है ।

यों कायोत्सर्ग में सम्पूर्ण योगों का व्युत्सर्जन किया जाता है केवल श्वासोश्वास की गिनती समय परिमाण के लिये की जाती है। आवश्यक सूत्र की प्राचीन व्याख्या में पहला विकल्प श्वासोश्वास गिनती का है । दूसरा विकल्प लोगस्स का कहा है किन्तु उसे खेंचतान कर बैठाना पडता है सहज नहीं जमता है ।

संवत्सरी पक्खी चौमासी के दिन भी लोगस्स गिनने की अपेक्षा समभाव क्षमापना भाव को पुष्ट करने का चिंतन करना, इसे प्रतिक्रमण का मुख्य पहलू ध्यान में रख कर उसी का चिंतन करना चाहिये । यही नूतन विकास का माध्यम अनुभव पूर्ण ध्यान में आता है एवं केवल परंपरा निर्वाह के लिये उक्त लोगस्स गिनते रहना चाहिये ।

कायोत्सर्ग में लोगस्स गिनने का आगम में कहीं विधान नहीं है किन्तु कायोत्सर्ग पूर्ण करने के बाद कीर्तन करने के लिये इसका विधान आवश्यक सूत्र के दूसरे आवश्यक रूप से है और पाँचवे आवश्यक रूप





कार्योत्सर्ग के बाद भी कीर्तन रूप में लोगस्स प्रकट बोलने का उत्तराध्ययन सूत्र में विधान है । अतः कायोत्सर्ग में लोगस्स गिनने में आगम के मूल पाठ का आधार नहीं है किन्तु प्रगट गिनने के प्रमाण स्पष्ट है ।

**कायोत्सर्ग के बाद लोगस्स गिनने का प्रमाण :-** (१) उत्तरा. अ. २६ (२) दशवै. अ. ५ उ. १ (३) आवश्यक सूत्र, दोनों काउसग्ग के बाद ।

**प्रश्न :** पक्खी चौमासी संवत्सरी पर्व दिनों में दो प्रतिक्रमण करने चाहिये ?

**उत्तर :** २४ वें तीर्थंकर के शासन के साधु साध्वी सदा दोनों समय प्रतिक्रमण करते हैं । उनके लिये यह दो प्रतिक्रमण करने की बात व्यर्थ एवं आगम विपरीत है । मध्यम २२ तीर्थंकर के शासन के साधु साध्वी सदा प्रतिक्रमण आवश्यक रूप से नहीं करते । उन्हें पर्व दिनों में प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है । तब वे पहले देवसिक प्रतिक्रमण करते हैं और दूसरा उस पर्व दिन का प्रतिक्रमण करते हैं। एक जगह की बात को दूसरी जगह फिट कर देना बुद्धि का भ्रम है ऐसा नहीं करना चाहिये । इस विषय की विशेष जानकारी अन्य निबंध में देखेंगे ।

**प्रतिक्रमण महत्त्व ज्ञान-विज्ञान :-**

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण में सामायिक करना आवश्यक है ?

**उत्तर :** सामान्यतया सामायिक युक्त ही प्रतिक्रमण करना आगम आशय युक्त है । विशेष परिस्थिति में बिना सामायिक के भी प्रतिक्रमण कर लेना चाहिये अर्थात् सामायिक करने जितना समय या प्रसंग न हो तो।

**प्रश्न :** बारह व्रत धारी श्रावकों को ही प्रतिक्रमण करना चाहिये ?

**उत्तर :** एक व्रत धारी या १२ व्रत धारी किसी भी श्रावक को प्रतिक्रमण करने में कोई आपत्ति नहीं है । हाँ १२ व्रत धारी को यथासमय प्रतिक्रमण करना आवश्यक होता है ।

प्रतिक्रमण के स्वरूप का ज्ञान कराते हुए उसकी व्याख्या में तीन वैद्यों का द्रष्टांत दिया गया है । **प्रथम वैद्य की दवा-** रोग हो तो ठीक करे अन्यथा नया रोग खडा करे। **दूसरे वैद्य की दवा-** रोग हो तो ठीक करे अन्यथा कुछ नहीं करे । **तीसरे वैद्य की दवा-** रोग हो तो ठीक करे अन्यथा शरीर को पुष्ट करे।

प्रतिक्रमण को तीसरे वैद्य की दवा के समान बताया है । अतः व्रत हो या न हो अतिचार लगे हो या न लगे हो, प्रतिक्रमण करने में सुनने में लाभ ही है हानि नहीं है ।

एक बात और ध्यान रखने की है जिस श्रावक के जो जो फुटकर त्याग प्रत्याख्यान लिये होते है उन छोटे बडे सभी नियमों की एक लिस्ट बनाकर रखनी चाहिये और उनका वांचन-चिंतन करना चाहिये कि मेरे ये सभी व्रत प्रत्याख्यान शुद्ध पालन हो रहे है ? यदि संभव हो तो प्रतिक्रमण के समय कायोत्सर्ग में भी उनका स्मरण अवलोकन किया जा सकता है । वृहदालोयणा की जगह उसका वांचन पर्व दिनों में अवश्य करना चाहिये ।

**प्रश्न :** प्रतिक्रमण क्या हैं ?

**उत्तर :** व्रत शुद्धि की, स्वदोष दर्शन की, दोषावलोकन की, भाव विशुद्धि एवं समभाव वृद्धि करने की प्रक्रिया है । आत्मा को व्रतों के संस्कार से भावित करने की प्रक्रिया है । छद्मस्थावस्था में सूक्ष्म स्थूल भूले होना शक्य है उसके परिमार्जन-अवलोकन की यह प्रशस्त प्रक्रिया है । ऐसे प्रतिक्रमण करने वालों के साथ बैठकर ध्यान पूर्वक सुनना, श्रद्धा को और व्रत रूचि को बढाने वाला है । यह श्रवण आत्मा को संस्कारित करने का माध्यम भी हो सकता है । इससे व्रत धारण की प्रेरणा भी प्राप्त होती है। कभी कईयों का संक्षिप्त रूचि से भी कल्याण हो जाता है ।

**यथा-** भगवती सूत्र में 'वरूण नाग नतुए' के मित्र का दृष्टांत है उसने मृत्यु समय में इतना ही किया कि "मेरे धर्मी मित्र ने जो धर्म स्वीकार किया उसे मैं भी स्वीकार करता हूँ ।" इतने मात्र से वह दो भव से मुक्त होने योग्य बन गया । अतः किसी भी धार्मिक प्रवृत्ति को बेकार या व्यर्थ होना नहीं कहना चाहिये । कब किसके लिये कौनसी छोटी भी धर्म प्रक्रिया जीवन में महत्त्वशील मोड देने वाली हो सकती है। अतः प्रतिक्रमण करना या सुनना लाभकारी ही समझना चाहिये, व्रत धारण किये हों या नहीं किये हों ।

ध्यान यह रहे कि एकाग्रचित से भाव पूर्वक प्रतिक्रमण सुनना एवं करना चाहिये और व्रत न लिये हों उन्हें लेने के लिये आत्मा में प्रेरणा प्राप्त करनी चाहिये ।

**वंदनक्रम ज्ञान विज्ञान :-**

**प्रश्न :** गुरु वंदन छोटे बडे के क्रम से करना चाहिये और ज्यादा संत हो अथवा शरीर में कोई रूग्णता हो तो सही वंदन किस तरह करना चाहिये।

**उत्तर :** संभव हो तो छोटे बडे के क्रम से वंदन करना ही राज मार्ग है ।





वंदन करने की जो सही विधि सिखाई जाती है तदनुसार ही तीन आर्वतन, पंचांग नमन युक्त वंदन, शांति से और भक्ति युक्त करना चाहिये । राजवेस्ट या बेगारी की तरह या असभ्यता युक्त वंदन करना दोष है । वंदन की सही विधि की उपेक्षा करना श्रद्धा भक्ति और विवेक की कमी है । ऐसा कभी भी नहीं करना चाहिये।

यदि समयाभाव हो या सामान्य शारीरिक कारण हो तो भी शांति पूर्वक तीन आवर्तन, पंचांग नमन तो आवश्यक रूप से करने ही चाहिये। चाहे तीन बार उठना बैठना न भी हो तो भी केवल बैठे बैठे या खड़े खड़े जैसी भी शारीरिक परिस्थिति हो विवेक पूर्वक भक्ति युक्त वंदन करना चाहिये । बिना कारण ढर्रे रूप में लापरवाही से बेगारी की तरह वंदन करना अनुचित है । ऐसी नकल भी करना अनुचित है । विनय के लिये निर्जरा के लिये किया जाने वाला वंदन भावयुक्त भक्ति युक्त एवं विधि सहित ही होना चाहिये । जिसमें तीन आवर्तन एवं पंचांग नमन आवश्यक है और अंत में मत्थएण वंदामि बोलते समय मस्तक भूमि तक अवश्य झुकाना चाहिये ।

वंदना के ३२ दोष कहे गये हैं जिसकी जानकारी निबंधमाला भाग-४ के अंतिम निबंध से करके सही वंदन करना चाहिये ।

**प्रतिक्रमण में पुनःपुनः आज्ञा विचारणा :-**

**प्रश्न :** पहला आवश्यक पूरा हुआ दूसरे आवश्यक की आज्ञा है, इसी प्रकार फिर दूसरा आवश्यक पूरा हुआ तीसरे आवश्यक की आज्ञा है, इत्यादि बोलना चाहिये ?

**उत्तर :** आवश्यक सूत्र के अध्ययन ६ है उनके नाम 'सामायिक' आदि है । प्रतिक्रमण करने की विधि में उन अध्ययनों के नाम बोलने की कोई आवश्यकता नहीं है । अध्ययनों में आये पाठ और उनका क्रम अलग है प्रतिक्रमण की विधि में उनको भिन्न क्रम से एक या अनेक बार बोला जाता है । अतः अमुक आवश्यक पूरा हुआ अमुक की आज्ञा ऐसा बोलना योग्य नहीं है । ऐसा बोलने का कोई प्राचीन प्रमाण भी नहीं है।

प्रथम आवश्यक अध्ययन में 'सामायिक' का पाठ है जो तीन बार बोला जाता है । द्वितीय आवश्यक अध्ययन में लोगस्स का पाठ है वह प्रत्येक कायोत्सर्ग के बाद बोला जाता है । तृतीय आवश्यक अध्ययन में 'इच्छामि खमासमणो' का पाठ है वह भी कुल ६ बार और तीन स्थल

पर बोला जाता है । चौथा आवश्यक में व्रत आदि व अतिचारों के पाठ है उन्हे 'लोगस्स' इच्छामि खमासमणो' रूप दूसरे तीसरे आवश्यक के पूर्व ही कार्योत्सर्ग में तथा उनके बाद प्रकट में बोला जाता है । 'गमनागमन अतिचार' और समुच्चय अतिचार का पाठ 'इच्छामि ठामि' भी चौथे आवश्यक अध्ययन में होते हुये भी कायोत्सर्ग पूर्व व बाद में तीन बार बोला जाता है । अत: आवश्यक सूत्र के अध्ययनों का नाम या क्रम प्रतिक्रमण विधि में बोलना उपयुक्त नहीं है और इसलिये प्रतिक्रमण की आज्ञा लेने के बाद पुन: पुन: आज्ञा लेना भी उपयुक्त नहीं है । विधि के बीच में विनय की आवश्यकता में 'इच्छामि खमासमणो' उत्कृष्ट गुरु वंदन का पाठ दो-दो बार तीन स्थल पर बोला ही जाता है । अत: उसके सिवाय अन्य वंदन और आज्ञा निष्प्रयोजन होते हैं । प्रतिक्रमण के प्रारम्भ में शासनपति की आज्ञा और अंत मे समुच्चय वंदन पर्याप्त होता है ।

**व्रतों के अतिचारों का ज्ञान विज्ञान :-**

**प्रश्न :** तीसरे व्रत के अतिचार कैसे समझना ?

**उत्तर :** चोरी की वस्तु खरीदने में बडी चोरी की वस्तु समझना अर्थात् सेंध लगाकर, ताला तोड कर आदि पाँच प्रकार की बडी चोरी की वस्तु मालुम पड़ने पर कम कीमत में खरीदना तीसरे व्रत का अतिचार है । बिना मालुम पूरे भाव में खरीदने पर अतिचार नहीं लगता है ।

**प्रश्न :** पाँचवें व्रत के अतिचार कैसे लगते हैं ?

**उत्तर :** पाँचवें व्रत में ध्यान नहीं रखने से, हिसाब नहीं मिलाने से, मर्यादा उल्लंघन हो जाय या गडा-पडा आदि धन मिल जाने से मर्यादा उल्लंघन हो जाय फिर उसे शीघ्र समय की मर्यादा करके उतने समय में सीमित कर लेने पर यह इस व्रत का अतिचार होता है और जानकर लोभ लापरवाही से मर्यादा उल्लंघन करना इस व्रत का अनाचार होता है ।

**प्रश्न :** छट्ठे व्रत के अतिचार कैसे समझना ?

**उत्तर :** छट्ठे व्रत में शारिरिक आदि परिस्थितियों से या भूल से दिशा परिणाम का उल्लंघन हो तो वह अतिचार कहा जाता है ।

**प्रश्न :** सातवें व्रत के अतिचार कैसे हैं ?

**उत्तर :** त्याग नहीं होते हुए भी सचित्त वस्तुओं का सेवन, अभक्ष्य अनंतकाय भक्षण और १५ कर्मादान का व्यापार ये श्रावक के लिये सातवें व्रत के अतिचार है । यथा - किसी को मारने पीटने आदि का





प्रत्याख्यान न भी हो तो भी **बंधे वहे छविच्छेए अइभारे भत्तपाण वुच्छेए** प्रथम व्रत के अतिचार है अर्थात् त्रस जीव की संकल्प पूर्वक हिंसा करने का त्याग मात्र होते हुए भी गुस्से में किसी को निर्दयता से मारपीट करना आदि तथा अधिक भार भरना आदि, वैसे ही चोरी की वस्तु खरीदना आदि अतिचार कहे गये हैं । वैसे ही ये सातवें व्रत के अतिचार त्याग न होते हुए भी श्रावक के आचरण योग्य नहीं होने से अतिचार तो है ही ऐसा समझ कर यथा शक्य शीघ्र त्याग करना चाहिये ।

गन्ना आदि तुच्छ वस्तु नहीं है । बहु उज्जित धर्म वाला है। किन्तु मद्य मांस अंडे मछली आदि अभक्ष्य बीडी, सिगरेट, तंबाखू आदि ये तुच्छ हेय पदार्थ है। तथा अधिक पाप के कारण कर्मादान हेय है । वैसे ही कंदमूल अनंतकाल के पदार्थ भी हेय तुच्छ वस्तु है, ये श्रावक को त्यागने योग्य है ।

सातवें व्रत में मुख्य नये २० अतिचार का कथन किया गया है शेष अपने मर्यादित पदार्थो में व व्यापारों में कोई दोष लगे उसका अतिचार स्वयं समझ लेना चाहिये । और जानकर स्वयं भंग करे तो उसे अनाचार समझ कर अलग से आलोचना कर प्रायश्चित्त ग्रहण करना चाहिये ।

**अभक्ष्य :-** बीडी, सिगरेट, चिलम, तम्बाखू, अंडे, मांस, मछली, शराब, भांग, अफीम, गांजा आदि ।

**प्रश्न :** दसवें व्रत के अतिचारों का क्या आशय है ?

**उत्तर :** दसवें व्रत में दिशा की मर्यादा का दो करण, तीन योग से त्याग किया जाता है । इसलिये आगे से (१) समान मंगवाना । (२) भिजवाना (३) दूसरे को बोलकर संकेत करना । (४) लिखकर या चहेरे से, ईशारे से संकेत करना । (५) फोन, चिट्ठी, तार आदि देना अतिचार है ।

**प्रश्न-** अतिचारों और पापों के प्रतिक्रमण में क्या अंतर है ?

**उत्तर-** व्रतों में लगे अतिचारों का प्रतिक्रमण में मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है। जो व्रत जानकर भंग किये गये हों उसका प्रतिक्रमण करने के सिवाय गुरु आदि के समक्ष स्वतंत्र आलोचना प्रायश्चित्त और किया जाता है तब शुद्धि होती है । तथा जिन पापों का त्याग नहीं है उनका प्रतिक्रमण और प्रायश्चित न होकर खेद पश्चात्ताप या त्याग का मनोरथ

या भावना रखी जाती है । अर्थात् व्रत प्रत्याख्यान के अतिचारों की शुद्धि प्रतिक्रमण से होती है शेष अव्रत या पापों के लिये प्रतिक्रमण से ज्ञान, श्रद्धान, त्याग की भावना व खेद पश्चाताप होता है ।

**प्रश्न :** उत्कृष्ट वंदन पाठ में 'जवणिज्जं' शब्द को तोडकर बोलना उपयुक्त है ?

**उत्तर : जवणिज्जं** एक शब्द है अत: आवर्तन में उसे न तोडते हुए एक आवर्तन करना उपयुक्त है अगला आवर्तन 'च भे' दो अक्षर से पूर्ण किया जा सकता है । यथा- 'अ हो' में भी दो अक्षर से आवर्तन पूर्ण किया ही जाता है अत: 'च भे' से आवर्तन पूर्ण करने में कोई दोष नहीं है । **जवणिज्जं** का अर्थ होता है यापनीय=मन तथा इन्द्रिय निग्रह।

**क्षमापना का महत्व :-**

**प्रश्न :** क्षमापना भाव नहीं करने से क्या होता है ?

**उत्तर :** क्षमापना भाव न करने से समकित व्रत में अतिचार लगता है। मुख्य अतिचार में कथन नहीं होते हुए परिशेष अतिचारों में इसे समझना। तथा नाराजी रोष भाव अधिक समय रखने पर और क्षमा भाव लंबे समय तक न करने पर समकित व्रत ही नष्ट हो जाता है अर्थात् उसे समकित छूट कर मिथ्यात्व आ जाता है । उसके शेष त्याग नियम का भी कोई महत्व नहीं रहता है, आराधना नहीं होती है । कितना ही तप नियम और संथारा करले किन्तु समस्त प्राणियों के प्रति क्षमापना न करे किसी को भी शत्रु माने या रंज रखे तो धर्मी व समद्रष्टि की गिनती में भी वह नहीं आता है तथा सम्यगद्रष्टि की गति को प्राप्त नहीं करता है । मिथ्यात्वी की गति को प्राप्त करता है । अत: किसी भी व्यक्ति से रंज भाव लम्बे समय तक नहीं रखना चाहिये । शीघ्र क्षमाभाव धारण कर लेना चाहिये ।

एक दिन से अधिक रंजभाव कषाय रखे तो साधुत्व नहीं रहता है । १५ दिन से अधिक रखे तो श्रावक पन नहीं रहता है और एक वर्ष से अधिक रखे तो समकित या धर्मीपन भी नहीं रहता है । विशेष समझ के लिये निबंधमाला भाग-४ का प्रथम निबंध देखना चाहिए ।





# अपनी बात

## (स्वास्थ्य सुधार एवं प्रायश्चित्त)

*आगम मनीषी मुनिराज श्री के विचित्र कर्मोदय से २०११ के ५ जनवरी को अचानक औपद्रविक पेट में तीव्र वेदना होने से एवं ६ महिनों में कोई उपचार नहीं लगने से तथा १५ किलो वजन घट जाने से, जिससे संयम के आवश्यक कार्य हेतु चलना आदि भी दु:शक्य हो जाने से १२ जुलाई २०११ को श्रावक जीवन स्वीकार करना पडा । पुन: ५ जनवरी २०१३ को १६ घंटे तक विचित्र उल्टीयें एवं दस्ते होकर उपद्रविक रोग पूर्ण शांत हो गया। दो महिने में कमजोरी भी कवर हो गई । धीरे-धीरे २०१४ जनवरी तक स्वास्थ्य एवं वजन पूर्ववत् हो जाने से एवं पूरी हिंमत आ जाने से आगम संबंधी प्रकाशन का कार्य जो अवशेष था उसे पूरा करते हुए अब आगे २०१६के जनवरी से प्रायश्चित्त रूप में (प्रायश्चित्त पूर्ण स्वस्थ होने पर ही किया जा सकता है इसलिये) एक वर्ष की निवृत्ति युक्त संलेखना तथा –*

### *मंगलवार ३१ जनवरी २०१७ में*

*दीक्षा तथा संथारा ग्रहण कर आत्मशुद्धि एवं साधना आराधना का प्रावधान रखा है । संलेखना के एक वर्ष के काल में चार खंध पालन, राजकोट से बाहर जाने का त्याग, प्राय: विगय त्याग या आयंबिल उपवास आदि, मोबाइल त्याग आदि नियम स्वीकार । अंत में जिन संतों के पास जिस क्षेत्र में दीक्षा लेना होगा वहाँ वाहन द्वारा पहुँच कर पाँच उपवास के साथ दीक्षा संथारा ग्रहण किया जायेगा ।*

*व्याधि :- पेट में कालजे की थोडी सी जगह में हाईपावर अे.सी.डी.टी, सांस और हार्ट (धडकन) ये तीन रोग एक साथ थे, असह्य वेदना सप्टेम्बर-२०११ तक अर्थात् ९ महिना रही थी ।*

*निवेदक :*

*डी.एल.रामानुज, मो.९८९८० ३७९९६*

# संथारा-दीक्षा तारीख का रहस्य

आगम निबंधमाला भाग-१ में आगम मनीषी श्री का स्वास्थ्य सुधार और प्रायश्चित्तकरण का स्पष्टीकरण एवं संथारा तारीख कवर पृष्ठ-४ पर पढकर मुंबई (कल्याण)से **आचार्य श्री विजय पूर्णचन्द्र सूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य श्री मुक्तिश्रमणविजयजी म.सा.**की पत्र द्वारा जिज्ञासा आने पर उसका समाधान प्रेषित किया गया, उस जिज्ञासा एवं समाधान का विवरण इस प्रकार है-

**जिज्ञासा :-** जैनागम नवनीत, आगम निबंधमाला भाग-१ पुस्तक मेरा हाथ देखिए मैं ७० वर्ष की उम्र में समाधि लेने वाला हूँ । उसने हाथ देखकर बता दिया कि आपका जीवन एक अलौकिक महान पुरुष का जीवन है और उम्र आपकी ७४ वर्ष के करीब है, आप क्रमिक सात्विक जीवन से चलें तो । अन्यथा २-४ वर्ष उम्र कम भी हो सकती है । आपका प्रावधान योग्य है किन्तु मेरी अपनी सज्जनता की सलाह यह है कि मानव जीवन से आप सत्कार्य करते हैं, संत-संतियों को इस उम्र में बिना वेतन के पढाने की सेवा देते हैं, तो मानव जीवन को टूंकाना नहीं चाहिये । इस जीवन से समाज सेवा जितनी हो सके उतनी करनी चाहिये।

मैने पूछा- फिर भी मेरी भावना अपने क्षयोपशमिक ज्ञान के अनुसार ऐसी निश्चित की है इसमें कुछ गलत तो नहीं है ? तो कहा आप तो खुद एक अलौकिक ज्ञानी पुरुष हो आपके निर्णय को गलत कहने जैसा कुछ भी नहीं है । मैं जय जिनेन्द्र, धन्यवाद कह कर उठ गया। उसने कोई फीस भी नहीं मांगी । बाहर अनेक लोग बैठे थे मैं घर आ गया ।





पुस्तक में इस विचारों को छपाने का निर्णय कर लिया । बोम्बे के राजस्थानी एक श्रध्धालु श्रावक को फोन से फिर समझाया । उसे नहीं जँचने पर वह प्रत्यक्ष अहमदाबाद आ कर मिला। घंटा भर चर्चा हुई, तब उसके समज में आ गया । श्रध्धा से मेरी हिम्मत की प्रशस्ति करी और खाता नंबर लिया मुंबई जाकर ११०००/- खाते मे डाल दिया।

आगम ज्ञान से सोपक्रमी आयुष्य, १/३ भाग उम्र बचने पर टूट सकता है । आगम आयुष्य गणित से ७० वर्ष की हमारी उम्र में १४ महीने बढने के और ९ महिने गर्भ के जोडने पर २३ महिने अर्थात् करीब २ वर्ष होते हे अत: ७०+२=७२ वर्ष मेरी कुंडली में लिखा वाला हो जाता है ।

उपरोक्त सभी अपेक्षा अनुभवों से और अकेले का जीवन होने से समय के पहले सावधानी के साथ स्वस्थ हालत में संथारा प्राप्त करना श्रेष्ठ समझ में आता है । फिर भी निश्चित करी अवधि के पूर्व भी बीच में कभी कोई उपक्रम का आभास लगे तो कभी भी सावधान सतर्क रहने का अभ्यास कायम होने से संथारा किया जा सकता है । निश्चित तिथी तो अंतिम लेटेष्ट आवश्यकीय तिथि समझना चाहिये ।

मुझे मेरे दीक्षागुरु-दादागुरु ने दिवंगत होने के १२ दिन बाद विहार में छोटे से गांव में रात्रि ४ बजे स्वप्न में दर्शन (साधुवेश में) दिये । ५-१० मिनिट वार्ता प्रश्नोतर के साथ मेरे से शारीरिक सेवा भी ली थी और कहा था कि तुम जिन नाम कर्म बांधोगे । उम्र का मेरे द्वारा पूछने पर इसारे से जो दिखाया था उसका मतलब अनुभवियों ने बताया था वह

भी ७० वर्ष के उपर ही जाता था । फिर नींद खुल जाने से मैंने स्वाध्याय आदि में समय पूर्ण किया किन्तु सोया नहीं।

मैंने मेरे जीवन में उत्कृष्ट रसायण से सदा श्रुत ज्ञान की अधिकाधिक आराधना विभिन्न तरह से करी है । अभी मुझे यह भी आभास श्रुतज्ञान से होने लगा कि मैं प्रथम देवलोक का एक भव करके महाविदेह की अन्यतर विजय में गुरु कथित जिन रूप से जन्म धारण कर आत्म कल्याण करुँगा ।

इसीलिए मैंने १-२ महिने के संथारे की हिम्मत से निर्णय किया है । जीवन में भी सदा तपस्या का (अभ्यास संथारे का मनोरथ नित्य रखने से) क्रमिक वार्षिक-मासिक तप करते रहा हूँ। अनेक पर्युषण एक साथ अठाई (८ उपवास)करके सफल किए हैं । और २०१४ के पर्युषण मैं भी अठाई करने का निर्णय रखा है। यह सब पत्र द्वारा प्राप्त आपकी जिज्ञासा को संतुष्ठ करने के लिए मैने आपका पत्र आया उसी दिन रात्रि १० से ११ बजे में उत्तर लिखा है। प्रथम बार ही मैने कई आतंरिक बातें व्यक्त की है। आशा है आपको संतोष एवं समाधान प्राप्त होगा, प्रत्युत्तर की प्रतिक्षा में---

**समाधान की पहुँच :-** तमारो पत्र समयसर मली गयो हतो। जीवन ना प्रत्येक पडाव पर तमे जे सावधानी सावचेतीपूर्वक आगल वधी रह्या छो ते एक आदर्श कही शकाय छे । शरीरनुं भेदज्ञान थया पछी आ सहज शक्य बने छे । तमे पहेलीवार आ रीते विस्तृतमां बधी विगत जणावी तेथी खूब आनंद थयो । मारा मननी उत्कंठा-जिज्ञासा संतोषाई गई । संथारा दीक्षा समये आवी पडनारी मानसिक





विडंबनाओथी समाधि क्यांय पण खंडित न बने ते ज खूब महत्वनुं छे । तमारु मनोबल दृढ ज नहि सुदृढ छे, एटले वांधो नहि आवे । आगम विषयक अढलक साहित्य तमारी कलमें लखायुं छे अे आनंदनी वात छे... । तमारी शुभ भावनानी अनुमोदना ।-***दः मुक्तिश्रमण विजय ।***

**प्रश्न : अपना भावि दीक्षा-संथारे का इस तरह प्रकाशन क्यों ?**

**उत्तर-** संयम और श्रावकव्रत समझदारी से लेने वाले प्रायः सभी साधक धर्म के रंग में रंग जाते हैं, सिद्धात्मा बनने की प्रबल उत्कंठा जिन्हें जागृत हो जाती है धर्म उनकी रग-रग में समाविष्ट हो जाता है तभी उन्हें देशविरति-अणुव्रत अथवा सर्वविरति-संयम ग्रहण करने की, जिनशासन में व्रताराधना कर शीघ्रातिशीघ्र संसार से मुक्त होने के परम लक्ष्य की एवं आत्मपरिणाम और आत्मार्थीपना तथा साधक जीवन की प्राप्ति होती है ।

ऐसी आत्माओं के लिये आगम में तीन-तीन मनोरथ जीवन में प्रतिदिन अंतर्मन से, रसायन पूर्वक, जिंदगीभर करने की प्रबल प्रेरणा और उसका प्रकृष्ट फल ठाणांग सूत्र में दर्शाया है तथा रोग, आतंक आदि आ जाने पर साधक आहार त्याग करे ऐसा संदेश है, न कि अस्पतालों के चक्कर खाकर, सूइयाँ शरीर में खुबा खुबाकर, खून, ग्लुकोझ नसों में भर भर कर कुमोत से मरे ।

मेरे इस प्रकाशन का अंतर्मन का भाव और उद्देश्य यही है कि प्रत्येक साधक हमेशा तीसरा मनोरथ भी पाँच मिनट भावपूर्वक रोज करे और मन में संथारे का निश्चित करता

जावे तो उसे एक दिन अपने आयुष्य का अनुभव जरूर हो सकता है । ऐसा श्रुतज्ञानी अनुमान, उसे अपने ज्ञानावरणीय कर्म की महान निर्जरा से, अपनी सांसारिक कुडली देखने से, हस्तरेखा के अनुभव से, निमित्त ज्ञानी ज्योतिषी व्यक्तियों के संयोग से किसी भी तरह हो जाता है । उसका स्वयं का आगम अनुसारी लक्ष्य भी बन जाता है कि दो तिहाई आयु बीतने के बाद फिर कभी भी सोपक्रमी आयु टूट सकता है तो मुझे उस एक तिहाई अवशेष अवधि में, अमुक उम्र में, अमुक समय संथारा कर लेना है । उसके पहले सभी प्रवृत्तिओं की यथासमय निवृति करके संलेखना एक दो वर्ष यावत् १२ वर्ष करने का द्रढ भाव बना लेना है । यदि आयुष्य अपनी उस सोच से १-२-४-१० वर्ष अधिक हो तो भी संथारे के परम त्याग तप से ५-१० दिन या महीने, दो महीने, तीन महीने में उदीरणा होकर पूर्ण होना ही है । मुझे मृत्युंजय बन कर परम शांति और सुख का रस्ता लेना ही है। वृद्धावस्था और मरण के विचित्र दुखों में नहीं झूलना है । ऐसी स्थितियाँ दिखते ही आगम आज्ञा(तप करने की) स्वीकार कर लेनी है । अस्पतालों के चक्कर कभी काटना नहीं है, यही मेरा जिनशासन का ज्ञान मिलने के परम सौभाग्य का सच्चा फल होगा। इसके लिये मुझे जीवन में तप का अभ्यास और उसका आनंद जरूर लेते रहना है, अनाहारीपन का अभ्यास-अनुभव करते रहना है ।

बस, इसी प्रेरणा को सभी साधक पावें, परम वैराग्य शूरवीरता में झूमे, ऐसा मेरा उक्त प्रगटीकरण का उद्देश्य है; साथ ही ऐसा करने में मेरी खुद की द्रढता, हिम्मत भी





दिन-दुगुनी, रात चौगुनी द्रढ-सुद्रढ बने, फल स्वरूप में आराधक बनूँ ।

मेरे इस प्रगटीकरण से (निबंधमाला के दो भागों में) अनेकों की आत्मा को परम आनंद और निजात्म प्रेरणा मिली भी है । एक श्वे॰मू॰पूजक संत ने भी २-४ वर्ष बाद के लिये अर्थात् २०१८ के लिये मुझे भी ऐसा ही करना, द्रढ संकल्पित मन बनाया है । और कई श्रावक भी ऐसी स्टेज हमको भी पाना जरूरी है, जीवन का श्रेय और अनुपम लाभ यही है, हमें भी ऐसा ही करना है, ऐसी सोच बनाने लगे हैं, समझने लगे है । तथा जो साधक लोग बुढापा और मृत्यु के समय (अनेक वर्षों की साधना में भी असावधान दशा के कारण) भक्तों की भक्ति में कुमरण से मरते है और बाहर लोग शांति का दिखावा करते हैं, हमे ऐसा नहीं जीना है, नहीं करना है, ऐसा मनोसंकल्प करने लगे हैं

**॥ इति शुभम् सर्व साधकानाम् ॥**

## -: सूचना-संदेश :-

**(१)** जिन संघों को जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर का १० पुस्तकों का संपूर्ण सेट मुफ्त मंगवाना हो तो १००/- व्यवस्था खर्च रूप में खाते में जमा करके अपनी बुकिंग कर लें जून-२०१५ तक ।

**(२)** पर्युषण में सेवा देने वाले स्वाध्यायी को उपरोक्त सेट मुफ्त चाहिए तो उन्हें २००/- व्यवस्था आदि(कर्मचारी-पोष्ट-पेकिंग)खर्च हेतु खाते में जमा करवा कर बुकिंग करें जून-२०१५ तक ।

**(३)** हमारे पास १०० सेट स्टोक में हैं । वह स्टोक समाप्त हो जाने पर जिन्हें सेट नहीं भेज सकेंगे उनके १०० या २०० रूपये वापिस पहुँचा दिया जायेगा। अत: बुकिंग शीघ्र कराने का ध्यान रखें ।

**(४)** खाता नंबर व्यवस्थित ढंगसे पुस्तक के आद्य पृष्ठों में(पृष्ट-४) देखें ।

**(५)** मनीओर्डर भी स्वीकार्य होगा ।

**(६)** अपना अेड्रेस पिन कोड सहित अमारे मोबाईल में या पोष्टकार्ड आदि में जरूर भेजना ।

**(७)** संलेखना संथारा संबंधी **अपनी बात** का मेटर इस पुस्तक के पृष्ट-२६४ में है । **विशेष:** संथारा-दीक्षा तारीख में परिवर्तन किया गया है यथा- मंगलवार ३१ जनवरी २०१७ ।

**(८)** जिनको आगम ज्ञान चर्चा आदि का लाभ लेना हों, वे संत-सती श्रावक आदि संवत २०१५के डिसेम्बर तक लाभ ले सकते हैं । २०१६में मौन व्रत चालु होंगा १२ महिने का ।

**(९)** जो कोई भी आगम जिज्ञासु अपने गाँव में बुलाकर ज्ञान लाभ दो-चार दिन का लेना चाहेगें उन्हें पहले सारांश, प्रश्नोत्तर एवं निबंध की कुल २३ पुस्तकें(८+१०+५) पढकर प्रश्न संकलन करने होंगे तभी बुलाना और स्वीकृती संयोग हो सकेगा । निमंत्रक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका कोई भी हो सकेंगे ।

**(१०)** संलेखना, संथारा तारीख का रहस्य जानना हो तो इसी पुस्तक के पृष्ठ- २६४ पर पढें ।

**(११)** ऐच्छिक सहयोग कोई भी भेज सकते हैं इसमें आग्रह प्रतिबंध नहीं है । मोबाईल नंबर का उपयोग २०१५ के डिसेम्बरके बाद नहीं किया जा सकेगा । पत्र संपर्क चालु रहेगा । लिखित प्रश्नोत्तर भी दिये जायेंगे ।

**निवेदक : आगम मनीषी त्रिलोकचंद जैन**

# अपनी बात

## (स्वास्थ्य सुधार एवं प्रायश्चित्त)

*आगम मनीषी मुनिराज श्री के विचित्र कर्मोदय से २०११ के ५ जनवरी को अचानक औपद्रविक पेट में तीव्र वेदना होने से एवं ६ महिनों में कोई उपचार नहीं लगने से तथा १५ किलो वजन घट जाने से, जिससे संयम के आवश्यक कार्य हेतु चलना आदि भी दुःशक्य हो जाने से १२ जुलाई २०११ को श्रावक जीवन स्वीकार करना पडा । पुनः ५ जनवरी २०१३ को १६ घंटे तक विचित्र उल्टीयें एवं दस्ते होकर उपद्रविक रोग पूर्ण शांत हो गया। दो महिने में कमजोरी भी कवर हो गई । धीरे–धीरे २०१४ जनवरी तक स्वास्थ्य एवं वजन पूर्ववत् हो जाने से एवं पूरी हिंमत आ जाने से आगम संबंधी प्रकाशन का कार्य जो अवशेष था उसे पूरा करते हुए अब आगे २०१६के जनवरी से प्रायश्चित्त रूप में (प्रायश्चित्त पूर्ण स्वस्थ होने पर ही किया जा सकता है इसलिये) एक वर्ष की निवृत्ति युक्त संलेखना तथा दिसंबर २०१६में दीक्षा तथा संथारा ग्रहण कर आत्मशुद्धि एवं साधना आराधना का प्रावधान रखा है । संलेखना के एक वर्ष के काल में चार खंध पालन, राजकोट से बाहर जाने का त्याग, प्रायः विगय त्याग या आयंबिल उपवास आदि, मोबाइल त्याग आदि नियम स्वीकार । अंत में जिन संतों के पास जिस क्षेत्र में दीक्षा लेना होगा वहाँ वाहन द्वारा पहुँच कर पाँच उपवास के साथ दीक्षा संथारा ग्रहण किया जायेगा ।*

*व्याधि :– पेट में कालजे की थोडी सी जगह में हाईपावर अे.सी.डी.टी, सांस और हार्ट (धडकन) ये तीन रोग एक साथ थे, असह्य वेदना सप्टेम्बर–२०११ तक अर्थात् ९ महिना रही थी ।*

*निवेदक :*

*डी.एल.रामानुज, मो.९८९८० ३७९९६*

आगम निबंधमाला : भाग–५

आगम निबंधमाला : भाग–५

आगम निबंधमाला : भाग–५

## निबंध-६६

### मात्र जिनकल्प ही एकलविहार नहीं

***इस विषय में जिनकल्पी विशिष्ट साधकों के नाम से एका तिक निरूपण किया जाना यथार्थ और परिपूर्ण नहीं होता है किंतु अयथार्थ और अपरिपूर्ण(अधूरा) कथन होता है। क्यों कि आगमों में सपरिस्थिक अल्प पुण्या शों वाले एकाकी विहारचर्या वालों का भी वर्णन किया गया है। जो इस प्रकार है —***

(१) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-२७ में गर्गाचार्य के ५०० शिष्यों में से एक भी अनुकूल नहीं रहा। तब दुःखी होकर सब को छोडकर एकाकी विचरना म जूर किया। यहाँ कोई भी जिनकल्प आदि या गुरु आज्ञा वगैरह की कोई बात नहीं है। मात्र पापकर्मों के या अनादेय नाम कर्म के कारण अकेले रह कर भगवान महावीर के शासन में मोक्षगामी हुए, ऐसा स स्कृत टीका एव हिंदी व्याख्याओं में स्पष्टीकरण मिलता है।

(२) उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन-३२, गाथा ४-५ में ऐसे सपरिस्थितिक अर्थात् खुद के पुण्या शों की कमी से कोई समाधिकारक निपुण सहायक नहीं मिले तो साधु अपनी समाधि कायम रखने के लिये **एक्को वि पावाइ विवज्जय तो विहरेज्ज-** पापों से बचता हुआ अकेला भी विचरण कर सकता है। यह भी परिस्थितिक, स योगिक एकलविहार की शास्त्राज्ञा है।

(३) दशवैकालिक सूत्र की चूलिका-१, गाथा-१० में भी इसी प्रकार के कर्मों के कारण अकेला रहने की सपरिस्थितिक आज्ञा सूत्र में दी गई है। विक्रम की आठवीं शताब्दी में हुए आचार्य अगस्त्य सि ह सूरि ने इसकी चूर्णि-टीका करते हुए लिखा कि अब आगे की गाथा-११,१२ आदि में शास्त्रकार श्री स्वय भवाचार्य ने अकेले सकारण रहने वाले साधु को क्या क्या सावधानियाँ रखनी चाहिये, उन बातों का वर्णन किया है। वास्तव में वहाँ गाथा-११ से १६ तक सपरिस्थितिक अकेले रहना पडे ऐसे श्रमण के लिये अनेक सावधानियाँ सूचित की है। यह भी वर्णन जिनकल्पी आदि का नहीं है।

(४) सूत्रकृता ग सूत्र अध्ययन-१०, गाथा ११-१२ में भी सपरिस्थितिक एकलविहार का वर्णन है। वहाँ आधाकर्मी आहारपानी करने वालों के साथ रहने का(निषेध) वर्जन बताते हुए **आखिर वैसी परिस्थिति में स यम शुद्धि हेतु अकेला रहना भी स्वीकार करले, ऐसा करने से भी मोक्ष हो सकता है, इसमें स देह करने की जरूरत नहीं है,** ऐसा कहा है, यथा- **एगत्तमेय अभिपत्थएज्जा=**परिस्थितिवश साधु अकेला रहना भी **अभिपत्थए ज्जा=**स्वीकार कर ले। **एव पमोक्खो=**ऐसा करने से भी मोक्ष हो सकता है। **ण मुस ति पास=**इसे असत्य मत समझो अर्थात् स यम शुद्धि, आत्मसमाधि के लिये अकेले रहकर भी साधना की जा सकती है। **एसप्पमोक्खे, अमुसे, वरे वि=**इस प्रकार मोक्ष होना मृषा नहीं है और श्रेष्ठ भी है। यह उपरोक्त दो गाथाओं का अर्थ शब्दार्थ है। इस प्रकार यहाँ भी स यम शुद्धि के लक्ष्य से ए व पुण्या शों की कमी वाले को अच्छा स योगाभाव में अकेले रहने की एव कल्याण करने की पूरी प्रेरणा की गई है।

(५) ज्ञातासूत्र में-२०६ साध्वियों का अकेले रहने का शास्त्रकार ने वर्णन भी किया और उन सभी को एक भव करके देवगति के बाद मोक्ष जाने का भी बता दिया है। जिससे एकलविहार को अन त कर्मस सार बढाने वाला कहने वाले विद्वान लेखक लोग स्पष्ट ही उत्सूत्र प्ररूपक होते हक्त। जब कि साधु के प्रकरण में व्यवहार सूत्र में आचार्य उपाध्याय को अकेले रहने की मनाई है। सामान्य साधु को अकेले की मनाई वहाँ नहीं है। और वहाँ व्यवहारसूत्र में साध्वी को अकेले रहने, विचरने, गोचरी जाने आदि की अनेक सूत्रों से मनाई की है किंतु अकेले साधु की मनाई का वहाँ एक सूत्र भी नहीं है। वहीं पर मात्र आचार्य उपाध्याय पदवीधरों को अकेले विचरने की स्पष्ट मनाई है। यहाँ ज्ञातासूत्र में भी साध्वियों के वर्णन से स्थविरकल्पी के एकलविहार को, सकारणता या प्रकृतिवश के एकल विहार को बताया है न कि जिनकल्प को। क्यों कि साध्वियाँ जिनकल्पी होती नहीं है फिर भी उन २०६ सभी अकेली साध्वियों को एक भव से मोक्ष होना भी सूत्र में बता दिया है। जब कि साध्वी को अकेले नहीं रहने का स्पष्ट विधान **मूलपाठ व्यवहार सूत्र में** है तो भी यहाँ ज्ञातासूत्र में २०६ में से एक भी साध्वी के लिये सूत्रकार ने अन त स सार भ्रमण का कथानक नहीं कहा है। जब कि वहाँ व्यवहारसूत्र में साधु के अकेले रहने के निषेध नहीं है तो भी आज के विद्वान निब धकार लोग एका त रूप से अन त कर्मस सार बढाना कहते हक्त, मानो वे ही सर्वज्ञ बन गये हैं और मासिक, धार्मिक पत्रिकाओं पर उन्होंने ही अधिकार जमा रखा हो। मासिकपत्र वाले भी मानो उनके ही खरीदे हुए गुलाम जैसे बने रहते हक्त। वे सच्चे आगमिक निब ध छापने से

आगम निबंधमाला : भाग-५

मुँह छिपाते रहते हक्त ।

(६) युवाचार्यश्री मधुकरमुनि म.सा. के नेतृत्व वाली आगम बत्तीसी के व्यवहार सूत्र उद्देशक-८, सूत्र-५ का मूलपाठ अर्थ और विवेचन पृष्ट-४०६ से यहाँ अक्षरशः उद्धृत किया जा रहा है-

***सूत्र :- थेराण थेरभूमिपत्ताण कप्पइ द डए वा भ डए वा छत्तए वा मत्तए वा लट्ठिया वा भिसे वा चेले वा चेलचिलिमिलिं वा चम्मे वा चम्मकोसे वा चम्मपलिच्छेयणए वा अविरहिए ओवासे ठवेत्ता गाहावकुल पिंडवाय पडियाए पविसित्तए वा णिक्खमित्तए वा। कप्पइ ण सण्णियट्टचारीण दोच्च पि उग्गह अणुण्णवेत्ता परिहरित्तए ।***

**सूत्रार्थ-** स्थविरत्व प्राप्त(एकाकी) स्थविरों को दड, भाड, छत्र, मात्रक, लाठी, काष्ठ का आसन, वस्त्र, वस्त्र की चिलमिलिका, चर्म, चर्मकोष और चर्मपरिच्छेदनक इत्यादि कोई भी उपकरण अविरहित स्थान में रखकर अर्थात् किसी को स भलाकर गोचरी के लिये जाना-आना कल्पता है। भिक्षाचर्या करके पुनः लौटने पर जिसकी देखरेख में द डादि रखे गये हक्त, उससे दूसरी बार आज्ञा लेकर अपने ही उन उपकरणों को ग्रहण करना कल्पता है ।

**विवेचन-** इस सूत्र में ऐसे एकाकी विचरण करने वाले भिक्षु का वर्णन है जो आचा.श्रु.१, अ.६ उ.२, सूय.श्रु.१ अ.१०, उत्तरा. अ.३२ गा. ५ तथा दशवै.चू.२ गा.१० में निर्दिष्ट सपरिस्थितिक एकलविहारी है। साथ ही शरीर की अपेक्षा वृद्ध या अतिवृद्ध है, **स्थविरकल्पी** सामान्य भिक्षु है और कर्मस योग से वृद्धावस्था तक भी वह अकेला रहकर यथाशक्ति स यम पालन कर रहा है।

शारीरिक कारणों से उसे अनेक औपग्रहिक उपकरण रखने पड रहे हैं। उन सभी उपकरणों को साथ लेकर गोचरी आदि के लिये वह नहीं जा सकता है। उसे असुरक्षित स्थान रहने को मिला हो तो वहाँ उन उपकरणों को छोडकर जाने पर बच्चे या कुत्ते उन्हें तोडफोड दें या लेकर चले जाएँ अथवा चोर चुरा ले इत्यादि कारणों से सूत्र में यह विधान किया गया है कि वह वृद्ध भिक्षु अपने उपकरणों की सुरक्षा के लिये किसी को नियुक्त करके जाए या पास ही कोई बैठा हो तो उसे सूचित करके जाए और



पुनः आने पर उसे सूचित कर दे कि मैं आ गया हूँ, उसके बाद ही उन उपकरणों को ग्रहण करे। शारीरिक स्थितियों से विवश अकेले वृद्ध भिक्षु के लिए भी इस सूत्र में जो अपवादों का विधान किया गया है, इससे यह स्पष्ट होता है कि सूत्रकार की या जिनशासन की एकलविहारी श्रमणों के प्रति अत्य त उदार एव अनेका त दृष्टि है।

सूत्रोक्त वृद्ध भिक्षु चलते समय सहारे के लिये दड या लाठी रखता है, गर्मी आदि से रक्षा के लिये छत्र रखता है, मल-मूत्र-कफ आदि विकारों के कारण अनेक मात्रक रखता है, मिट्टी के घडे आदि भाड भी रखता, अतिरिक्त वस्त्र-पात्र रखता है, मच्छर आदि के कारण मच्छरदानी भी रखता है, बैठने में सहारे के लिये भृसिका-काष्ठ आसन रखता है, चर्मख ड, चर्म-कोष (उपानह-जूता आदि)या चर्मछेदनक भी रखता है अर्थात् इनमें से अपने आवश्यक उपयोगी कोई भी उपकरण रखता है। उनमें से जिन उपकरणों की गोचरी जाने के समय आवश्यकता न हो उनके लिये सूत्र में यह विधान किया गया है। विशिष्ट साधना वाले पडिमाधारी या जिनकल्पी भिक्षु औपग्रहिक उपकरण रखने आदि के अपवादों का सेवन नहीं करते हक्त और गच्छगत भिक्षु की ऐसी सूत्रोक्त परिस्थिति होना स भव भी नहीं है, क्यों कि गच्छ में अनेक वैयावृत्य करने वाले साधु होते हक्तअतः परिस्थितिवश स्थविरकल्प वाले सामान्य बहुश्रुत भिक्षु भी जीवनपर्यंत एकाकी रहकर यथाशक्ति स यममर्यादा का पालन करते हुए विचरण कर सकता है, यह इस सूत्र के मूल पाठ से स्पष्ट होता है। खासियत यह है कि ऐसे अपवाद सेवन रूप उपकरणों को रखने वाले अकेले साधु के लिये भी शास्त्रकारों ने विधान रूप में सूत्र में स्थान दिया है। तो भी हमारे विद्वान गिने जाने वाले निष्ठुर बनकर उत्सूत्र प्ररूपणा कर के स तोष मानते है।

(७) व्यवहारसूत्र, उद्दे.-६, सूत्र-६, ७ में अकेले भिक्षु को कैसे उपाश्रय में नहीं रहना और कैसे उपाश्रय में रहना हो तो किस विधि से रहना इस बात का खुलाशा किया गया है। यह विधान भी सपरिस्थितिक अकेले साधु की अपेक्षा है। इसमें अल्पज्ञ और बहुश्रुत दोनों के लिये विधि और निषेध के सूचन है। अतः ये दोनों सूत्र भी जिनकल्पी पडिमाधारी की अपेक्षा नहीं है और इन सूत्रों में अकेले साधु का उल्लेख स्पष्ट है। देखने के लिये आगम समिति ब्यावर से(मधुकर मुनि का) छपा व्यवहारसूत्र पृष्ट-३८०, ३८१

पूरा देखा जा सकता है ।

इस प्रकार के अनेक आगम प्रमाणों की उपेक्षा करके आज के विद्वान कहे जाने वाले श्रमण अधिकतम कथाओं की बातें लेकर और सूत्र की एकपक्षीय बातों से मनचाहा उत्सूत्र प्ररूपण करते हक्त एव उसे आगम ज्ञान के अनभिज्ञ स पादक छाप भी देते हैं । यही पूरे समाज के पत्रकारों की दशा है । कम से कम आगम के नाम की बातें छापने में स पादकों को बहुत सतर्क होना चाहिये । लेखक लोग भगवान और आगम के नाम से मात्र पर परावादी उत्सूत्री और एका तवादी लेखन करते हक्त । जब कि शास्त्रकार ने एकलविहार के स ब ध में कितनी उदारता वर्ती है यह उपर बताये गये आगम प्रमाणों से सूज्ञ विद्वान समझना चाहे तो समझ सकते है । तदुपरा त पर परा को लेकर बैठने वाले एव तोतारट त करने वालों को कुछ भी समझ में नहीं आ सकता । क्यों कि कवि के शब्दों में कहा गया है-

**ज्यों कीडी मुख लवण ग्रही ने, शक्कर ढिग पर जावे ।**
**लवण त्याग किया बिन कीडी, शक्कर स्वाद न पावे ॥१॥**

इसी तरह खोटी पकडी पर परा, आगम विपरीत धारणा आदि के त्याग का लक्ष्य जब तक नहीं होगा तब तक आगम के और भी पचासों दृष्टा त दे दिये जाय तो भी दुराग्रह का त्याग किये बिना वे जँच नहीं सकते । इस प्रकार स्थविरकल्पी में अनेकों प्रकार के एकलविहारी आगम प्रमाणों से सिद्ध है फिर भी बडे-बडे विद्वान कहे जाने वाले भी उत्सूत्र प्ररूपणा कर एकलविहारी स तों के प्रति अपनी निर्दयता और आक्रोश भरी दृष्टि से समय-समय पर बरसते रहते हक्त ।

वास्तव में एकलविहारी स त अपनी परिस्थितिक लाचारी को स्वीकार करते हुए सही श्रद्धा प्ररूपणा, तप-स यम, ज्ञान-ध्यान से ज्ञातासूत्र की साध्वियों के समान कल्याण कर भी सकते हक्त किन्तु उनके नाम से खोटी और एका तिक प्ररूपणा करने वालों को खुद ही सोचने समझने का प्रयत्न करके अपने मानस को तथा अह को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिये ।

चातुर्मास सूची २००९ में १४ एकल विहारी आचार्य शिवमुनि की आज्ञा में छपे है और गुजरात की एक स प्रदाय में १७ मुनिराज के १३ चातुर्मास छपे हक्त जिसमें गच्छाधिपति सहित नौ अकेले स तों के चातुर्मास होतेहक्त । वे भी सभी स प्रदाय की आज्ञा में हक्त । अकेले स त और अकेले



दुकेली साध्वी अपने कर्मों के किसी भी उदय विचित्रता से जिन शासन में सदा से होते आये हक्त। शास्त्रकारों ने उनके साथ उदारता वर्ती है अर्थात् अकेली साध्वियों को भी आगम अ गसूत्र में स्थान दिया है और एक भव करके मोक्ष जाना भी कह दिया है। आज के एका तवादी पडितों की बुद्धि में तो एकलविहारी के लिये आगम में ऐसा मोक्ष होना, मिलना ईर्ष्या का फलदायी होगा ।

विचित्र कर्मों से ५०० साधुओं को छोडकर अकेले रहने वाले गर्गाचार्य को भी शास्त्रकार ने तिरस्कृत और नरकगामी नहीं बताया है । व्यवहारसूत्र आचार्य भद्रबाहुस्वामी १४ पूर्वी का बनाया हुआ हक्त उसमें अकेले अति वृद्ध स त का कितना अनुग्रह भरा वर्णन है कि वे सकारण अकेले तो है तथापि शरीर की परिस्थिति से अनेक आश्चर्य उपजावें वैसे उपकरण भी उनके पास हो सकते हक्त- छत्र आदि, तो भी शास्त्रकार ने उनका तिरस्कार युक्त वर्णन या निंदात्मक वर्णन न करके विधानात्मक वर्णन अनुक पा भरा किया है कि अपना सामान किसी के स रक्षण में रखकर गोचरी जावे ।

आज समाज में कितने ही आज्ञा में एकलविहारी है उदार गुरुओं के कारण तथा अनुदार गुरुओं के कारण अनाज्ञा में एकलविहारी है । किंतु है सभी अपनी अशुभ कर्मदशा, अ तरायकर्म, अनादेय नामकर्म या प्रकृति दोष आदि किसी भी अशुभ कर्मता के कारण है । दशवैकालिक सूत्र में दो चूलिका है दूसरी चूलिका में ऐसे अ तराय आदि कर्म वालों को अकेले रहने की प्रेरणा एव सावधानी कही गई है और पहली चूलिका में किसी भी परेशानी में स यम छोडने की स्पष्ट मनाई हिदायत करी है। दोनों चूलिकाओं का मिलकर तात्पर्य यह होता है कि कैसे भी कर्म स योग है, स यम नहीं छोडकर अकेले रहकर कर्मों को निभा लेना बहेतर है। ऐसे अपने अशुभ कर्मों को पाटने वाले, साधुपने में रहने वाले सभी एकाकी श्रमण अनुक पा पात्र है । अतः विद्वान कहे जाने वालों को अनेका तिक विधानों से भरे आगम के नाम से आये दिन एका तवादी अशुद्ध प्ररूपणा करके अपनी विद्वत्ता का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये ।

आगम निबंधमाला : भाग–५

आगम निबंधमाला : भाग–५

आगम निबंधमाला : भाग-५

# अपनी बात

## (स्वास्थ्य सुधार एवं प्रायश्चित्त)

***आगम मनीषी मुनिराज श्री के विचित्र कर्मोदय से २०११ के ५ जनवरी को अचानक औपद्रविक पेट में तीव्र वेदना होने से एवं ६ महिनों में कोई उपचार नहीं लगने से तथा १५ किलो वजन घट जाने से, जिससे संयम के आवश्यक कार्य हेतु चलना आदि भी दुःशक्य हो जाने से १२ जुलाई २०११ को श्रावक जीवन स्वीकार करना पडा । पुनः ५ जनवरी २०१३ को १६ घंटे तक विचित्र उल्टीयें एवं दस्ते होकर उपद्रविक रोग पूर्ण शांत हो गया। दो महिने में कमजोरी भी कवर हो गई । धीरे-धीरे २०१४ जनवरी तक स्वास्थ्य एवं वजन पूर्ववत् हो जाने से एवं पूरी हिंमत आ जाने से आगम संबंधी प्रकाशन का कार्य जो अवशेष था उसे पूरा करते हुए अब आगे २०१६के जनवरी से प्रायश्चित्त रूप में (प्रायश्चित्त पूर्ण स्वस्थ होने पर ही किया जा सकता है इसलिये) एक वर्ष की निवृत्ति युक्त संलेखना तथा दिसंबर २०१६में दीक्षा*** (कदाच १-२ महिना आगे-पीछे) ***तथा संथारा ग्रहण कर आत्मशुद्धि एवं साधना आराधना का प्रावधान रखा है । संलेखना के एक वर्ष के काल में चार खंध पालन, राजकोट से बाहर जाने का त्याग, प्रायः विगय त्याग या आयंबिल उपवास आदि, मोबाइल त्याग, मौन आदि नियम स्वीकार । अंत में जिन संतों के पास जिस क्षेत्र में दीक्षा लेना होगा वहाँ वाहन द्वारा पहुँच कर पाँच उपवास के साथ दीक्षा संथारा ग्रहण किया जायेगा ।***

***व्याधि :- पेट में कालजे की थोडी सी जगह में हाईपावर अे.सी.डी.टी, सांस और हार्ट (धडकन) ये तीन रोग एक साथ थे, असह्य वेदना सप्टेम्बर-२०११ तक अर्थात् ९ महिना रही थी ।***

***: निवेदक :***

***डी.एल.रामानुज, मो.९८९८० ३७९९६***

आगम निबंधमाला : भाग–५

आगम निबंधमाला : भाग–५

आगम निबंधमाला : भाग–५